मार्कण्डेय पुराण ।

[द्वितीय खण्ड]

श्रीः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

——:०*०:——

[द्वितीय खण्ड]

——:०:——

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक
पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी
हुई 'रहस्योद्घाटिनी' टीका सहित ।

——:०:——

सम्पादकः—
विद्यारञ्जन
पण्डित रमेशदत्त पाण्डेय, बी० ए०,
भूतपूर्व शिक्षामंत्री काश्मीर-राज्य ।

——:०:——

प्रकाशकः—
आर्य्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्,
बनारस ।

द्वितीय संस्करण] सन् १९३२ [मूल्य एक रुपया

निवेदन ।

—०❀०—

पूर्व सङ्कल्पके अनुसार "आर्य्यमहिला" मासिक पत्रिकामें क्रमशः "मार्कण्डेय पुराण" का विशुद्ध अनुवाद "रहस्योद्घाटिनी" टीका सहित प्रकाशित हो रहा है। प्रथम खण्डके लिये जितना आवश्यक था, उतना अंश उक्त पत्रिकामें प्रकाशित होते ही गत श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके सुमुहूर्तपर उसका हमने पुस्तकाकार द्वितीय संस्करण निकाला था। अब द्वितीय खण्डके लिये जितना आवश्यक है, उतना अंश पत्रिकामें निकल जानेके कारण ठीक एक वर्षके बाद यह द्वितीय खण्ड पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, प्रथम खण्डको तरह यह खण्ड भी पुराणप्रिय सज्जनोंको रुचिकर प्रतीत होगा। अब इस पुराणका एक तिहाई अंश शेष रह गया है। वह भी सम्भवतः एक वर्षमें समाप्त होकर सम्पूर्ण ग्रन्थ पाठकोंके हाथमें आजायगा। यह ग्रन्थ समाप्त होनेपर दूसरे ग्रन्थमें हाथ लगाया जायगा और इसी तरह यह पुराणमाला बराबर गूँथी जाती रहेगी। इसके पाठ और प्रचारमें यदि पुराणप्रेमी सनातनधर्मावलम्बी सज्जन उचित मनोयोग कर, तो हम अपने परिश्रम सफल हुए समझेंगे।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
संवत् १९८९

निवेदक—
रमेशदत्त पाण्डेय।

मार्कण्डेय पुराण

के

द्वितीय-खण्डकी विषय-सूची ।

द्वितीयखण्ड समाप्त।

मार्कण्डेय पुराण ।

द्वितीय खण्ड ।

सैंतीसवाँ अध्याय ।

जड़ने कहा,—धर्मात्मा अलर्क न्यायानुसार पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करने लगा; जिससे सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए और अपने अपने विहित कर्मोंका अनुष्ठान निश्चिन्त होकर करने लगे। दुष्टोंको दण्ड देते और शिष्टोंका परिपालन करते हुए अलर्कको बड़ा आनन्द आता। उसने अनेक बड़े बड़े यज्ञ भी किये। कुछ समय बीतनेपर उसे अनेक कुमार हुए, जो बड़े ही बलवान्, पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा और सन्मार्गगामी थे। अलर्क संयमशील होकर धर्मके द्वारा अर्थ और अर्थके द्वारा धर्मका उपार्जन और रक्षण करते हुए धर्म और अर्थ दोनोंके अविरोधसे विषयोपभोग करने लगा। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके सम्पादनके साथ ही साथ पृथ्वीपालन करते हुए अलर्कके अनेक वर्ष एक दिनकी तरह बीत गये ॥ १–५ ॥ प्रियतम विषयोंका बहुकाल तक सम्भोग करते रहनेपर भी उसमें वैराग्यका सञ्चार नहीं हुआ और न धर्म तथा अर्थके उपार्जनमें ही विरक्ति हुई। अलर्कका सुबाहु नामक एक भाई पहिले ही विरक्त होकर बनमें चला गया था। उसने अलर्ककी भोग-सम्भोगकी प्रमत्तता और परायणताकी सब बातें सुनीं। तब वह अपने भाई अलर्कको तत्त्वज्ञानका लाभ कैसे हो, इसकी चिन्ता करने लगा। अन्तमें वह इस निर्णयपर पहुँचा कि, अलर्कके शत्रुका आश्रय करनेसे ही उसका कल्याणसाधन हो सकता है। तदनन्तर कार्यकुशल सुबाहुने अपने पैतृक राज्यके पानेके लिये (जिसका उपभोग अलर्क कर रहा था) महाबली और बहु सेना तथा वाहनोंके अधीश्वर काशिराजकी शरण ली। काशिराजने भी सुबाहुका पक्ष ग्रहण किया और सेनाका उचित प्रबन्ध कर अलर्कके पास दूत भेजकर कहलाया कि, "हे अलर्क ! सुबाहुको राज्य दे दो।" क्षात्र धर्मको जाननेवाले अलर्कने इस बातको स्वीकार नहीं किया। काशिराजके दूतसे उसने कहा,—"मेरे ज्येष्ठ भ्राता मेरे पास आकर विनीत भावसे मुझसे

राज्यकी याचना करें। मैं आक्रमणके भयसे एक कणके बराबर भी भूमि नहीं दूंगा।" महामति सुबाहु राज्यकी याचना करनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। क्योंकि याचना करना क्षत्रियका धर्म नहीं है। एक मात्र पराक्रम ही उनका धन हुआ करता है। तदनन्तर काशिराजकी विपुल सेनाको साथ लेकर नरपति अलर्कके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिये सुबाहु आकर उपस्थित हुआ और उसने राज्यपर आक्रमण कर भी दिया। अलर्कके सामन्त सरदारों और भृत्योंको अपनी ओर मिलाकर थोड़े ही समयमें उसने अलर्कको अपने अधीन कर लिया। भाईके राज्यको घेरकर उसने उस राज्यके सब सामन्तों, किलेदारों और अधिकारियोंको, किसीको दण्ड देकर, किसीको धनलोभमें फँसाकर, किसीको भेद और सामके द्वारा अपने अधीन कर लिया ॥ ११-१७ ॥ इस प्रकार अलर्क परचक्रसे पीड़ित होकर क्षीणबल और क्षीणकोष हो गया। उसके पुत्र भी शत्रुओं द्वारा कैद कर लिये गये। दिन दिन धनहीन होता हुआ शत्रुओंसे अत्यन्त सताया जानेके कारण अलर्कको पराकाष्ठाका विषाद हुआ और उसका चित्त अकुला गया। क्रमशः जब वह बेबस और अत्यन्त आर्तभावापन्न हुआ, तब माता मदालसाने जाते समय अंगूठीके सम्बन्धमें जो बात कही थी, उसका उसे स्मरण हो आया। तुरन्त उसने स्नान करके पवित्र भावसे बैठकर और ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराके अंगूठीमेंसे वह लेख निकाला जो माताने स्पष्टाक्षरोंमें लिख रक्खा था। माताके लिखे हुए उस अनुशासन (लेख) को पढ़ते ही उसका शरीर पुलकित हो उठा और उसके नेत्रोंमें प्रसन्नता झलकने लगी ॥ १८-२२ ॥ शासनपत्रमें लिखा था,—"सब भाँति सर्वसङ्ग परित्याग कर दो। यदि सर्वसङ्गपरित्याग न कर सको, तो सन्तोंका सङ्ग करो; क्योंकि सन्तसङ्ग औषध स्वरूप है। सब भाँति सब प्रकारकी इच्छाओं (वासनाओं) को छोड़ दो। यदि ऐसा न कर सको, तो मुक्तिकी इच्छा करो। यही इसकी औषधि है।" यह शासनपत्र बार-बार पढ़ता हुआ वह सोचने लगा कि, मनुष्योंका कल्याणसाधन किस उपायसे हो सकता है? फिर पत्रको पढ़कर उसने निश्चय किया कि, मुक्तिकी इच्छा ही कल्याण-साधनका उपाय है और सत्सङ्ग ही

टीकाः—सृष्टिके जिस कल्पकी यह गाथा है, उस कल्पमें देवता और मनुष्यका पारस्परिक सम्बन्ध इस समयसे अधिक घनिष्ठ था। इसी कारण मानवपिण्डधारी अलर्कको देवपिण्डधारी भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन थोड़े प्रयत्नसे ही होसके थे। विभिन्न कल्पोंमें उत्पन्न जीवोंकी शक्तिमें न्यूनाधिकता हुआ करती है। सनातनधर्म्म सर्वव्यापक ईश्वरीय नियम है। जो शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म्म सत्त्वगुण बढ़ावें, वही धर्म्म कहाता है। प्रकृतिके गुण तीन हैं, यथाः—सत्त्व, रज और तम। ये स्वाभाविक हैं। शारीरिक कर्म्म, वाचनिक कर्म्म, मानसिक कर्म्म अथवा बौद्धिक कर्म्म जो सत्त्वगुणको बढ़ावें, वही धर्म्म स्वतः ही रजोगुण और तमोगुणका नाश कर देता है और जिस व्यक्तिकी उत्पत्ति धर्मसे

मुमुक्षुत्वका कारण है । फिर वह साधुसङ्गका लाभ कैसे हो, इसकी चिन्ता करने लगा । चिन्ता करते करते वह नरपति अत्यन्त आर्तभावातुर होकर अन्तमें महाभाग दत्तात्रेयके निकट उपस्थित हुआ । उन निष्पाप, निःसङ्ग और महानुभाव दत्तात्रेयकी प्रणामपूर्वक पूजा कर अलर्कने न्यायानुसार उनसे कहा,—हे ब्रह्मन् ! आप शरणागतोंके आश्रयस्थान हैं । आप मुझपर प्रसन्न हों । मैं विषयभोगमें लिप्त होनेके कारण दुःखसे अभिभूत हो रहा हूं । आप मेरे दुःखको दूर करें ॥ २३-२८ ॥ दत्तात्रेय बोले—हे पृथ्वीनाथ ! मैं आज ही तुम्हारे दुःखको दूर कर दूंगा । परन्तु हे पार्थिव ! तुम सच कहो कि, क्योंकर तुम्हें दुःख हो रहा है ? जड़ने कहा,—महामति दत्तात्रेयके इस प्रकार पूछने पर महीपति त्रिविध दुःखोंके स्थान और आत्माके सम्बन्धमें विचार करने लगा । उदारमति, धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक वार आत्माके द्वारा आत्मविचार कर हंसते हुए बोला,—मैं भूमि नहीं, जल नहीं, ज्योति (अग्नि) नहीं, वायु नहीं और आकाश भी नहीं हूँ । किन्तु शरीरका आश्रय कर सुखकी इच्छा करता हूं । इस पाञ्चभौतिक शरीरमें सुख और दुःख उपस्थित होकर उनमें न्यूनाधिकता हुआ करती है ॥ २९-३३ ॥ यदि ऐसा ही होता हो, तो इसमें मेरी क्या हानि है ? क्योंकि मैं शरीर नहीं हूं, शरीरसे स्वतन्त्र होकर विद्यमान हूं । मेरी न्यूनता अथवा अधिकताकी सम्भावना ही नहीं हो सकती । नित्यप्रभूतसद्भावमें स्थित होनेपर न्यूनाधिकता, अवनति और उन्नति तथा समतासे भी छूटकर विशेषरूपसे स्वरूपकी उपलब्धि होती है । सूक्ष्म, तृतीयांश, तन्मात्रामें अवस्थित अपने आपको देखते हुए पञ्चभूतोंके सद्भावसे उत्पन्न हुए शारीरिक सुख-दुःख वस्तु ही क्या रह जाती है ? सुख और दुःख मनमें रहता है, वह मनका धर्म है । जब कि, मैं मन नहीं हूं, तब मुझे सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है । जब मैं अहङ्कार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं, तब अन्तःकरणसे उत्पन्न हुए पारक्य दुःखकी मुझमें सम्भावना ही कैसे हो सकती है ? मैं शरीर नहीं और मन भी नहीं हूं । मैं शरीर और मनसे पृथक् हूँ । अन्ततः सुख-दुःख चाहे मनमें रहे, चाहे शरीरमें; मेरा इससे क्या बनता बिगड़ता है ? ॥ ३४-३८ ॥ इस शरीरका बड़ा भाई राज्यकी इच्छा करता है; परन्तु यह शरीर तो पञ्चभूतोंका एक ढेर है । गुणकी प्रवृत्तिसे मेरा क्या

हो, जिसकी रजवीर्य्यकी शुद्धि रहे, वह व्यक्ति सुख-दुःखकी सन्धि उपस्थित होनेपर अवश्य ही धर्म्मका अनुसरण करता है । अलर्कको मातृदेवीके द्वारा धर्म्मका सच्चा उपदेश प्राप्त होनेसे और उसकी धर्म्मसे उत्पत्ति होनेसे इस सुख-दुःखकी सन्धिमें वह धर्म्मपथको भूल नहीं सका । जो व्यक्ति धर्मपथको नहीं छोड़ता, उसको आगेकी संधिमें सद्गुरुकी प्राप्ति होती है । जगद्गुरु विष्णुरूपमें अथवा शिवरूपमें दर्शन देते हैं । देवलोकमें भगवान् दत्तात्रेय जगद्गुरुका अवतार है और इस मृत्युलोकमें सच्चे सुहृद्, निष्काम व्रतधारी, आत्मनिष्ठ महापुरुष ही इन तीनोंमेंसे किसीके प्रतिनिधि बनकर गुरु होते हैं ॥ २३—२८ ॥

प्रयोजन है ? क्या मेरा बड़ा भाई और क्या मैं, दोनों ही शरीरसे पृथक् वस्तु हैं। जिसके न हस्तपादादि अवयव हैं, न मांस है, न हड्डियाँ हैं और न शिराएँ हैं, उस पुरुष (आत्मा) का हाथी, घोड़े, रथ, कोष आदिसे अणुमात्र सम्बन्ध नहीं है। अन्ततः मेरा शत्रु, सुख, दुःख, नगर, कोष, अश्व, गज, सैन्य आदि कुछ भी नहीं है। जैसा यह सब कुछ मेरा नहीं है, वैसा और किसीका अर्थात् मेरे बड़े भाईका भी नहीं हो सकता। जिस प्रकार एक ही आकाश घटी, कुम्भ, कमण्डलु आदिमें बहुविध देख पड़ता है, उसी प्रकार एक ही आत्माको मैं सुबाहु, काशिराज, अपने शरीर आदिमें देहभेदके कारण नाना प्रकारका देख रहा हूं ॥ ३६-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्रसंवादान्तर्गत आत्मविवेक नामक सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अड़तीसवां अध्याय ।

—०:*:०—

जड़ने कहा,—इसके उपरान्त वह राजा (अलर्क) विनयावनत होकर प्रणामपूर्वक विप्र दत्तात्रेयसे बोला,—हे ब्रह्मन् ! मेरी भलीभाँति दृष्टि खुल जानेसे अब मुझे किसी प्रकारके दुःखका अनुभव नहीं होता। जिनकी दृष्टि निर्मल नहीं हुई है, वे ही सर्वदा दुःखसागरमें निमग्न रहा करते हैं। मनुष्यकी बुद्धि जिन जिन विषयोंमें आसक्त होती है, उन्हीं उन्हीं विषयोंसे दुःखसमूह उत्पन्न हुआ करते हैं। घरके मुरग़ेको यदि बिल्ली खा जाय, तो जैसा दुःख होता है, वैसा परेवा अथवा चूहेको खा जानेसे नहीं होता। ममता ही इसका कारण है। पाले हुए मुरग़ेपर जैसा मनुष्यका ममत्व होता है, वैसा कंकड़ चुगनेवाले परेवा अथवा चूहेपर नहीं होता। मैं सुखी नहीं और दुःखी भी नहीं; क्योंकि मैं प्रकृतिसे अतीत हूँ।

टीकाः—वेदका रहस्य यह है कि, पात्रापात्र विचार करके धर्म तथा आत्मज्ञानका उपदेश दिया जाय। जैसे मिट्टीके ढेलेपर सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित नहीं होतीं, किन्तु काँच और मणिपर होती हैं; उसी प्रकार अयोग्य पात्रमें ज्ञानका उपदेश व्यर्थ होता है। योग्य पात्रको यथायोग्य उपदेश देना ही पूज्यपाद महर्षियोंका प्रदर्शित मार्ग है। इसी कारण सनातनधर्ममें अधिकारभेद जैसा माना गया है, वैसा पृथ्वीके अन्य किसी धर्ममें नहीं माना गया है। जगद्गुरु दत्तात्रेयने शिष्य राजा अलर्कको उसके उपयोगी प्रश्न करके उसमें पात्रता उत्पन्न की है। योग्य पात्र तीन तरहके होते हैं। विवेकी, सावधान और मलिन। प्रायश्चित्त द्वारा जो शुद्ध किया जाय, वह मलिन पात्र है। जो साधनक्रम द्वारा अग्रसर किया जाय, वह सावधान है और जो गुरुवचन सुनते ही अन्तर्मुख होजाय, वह विवेकी पात्र कहाता है। अलर्क भाग्यवान् और विवेकी पात्र है। इस कारण दत्तात्रेयके प्रश्न करते ही उसकी बुद्धि अन्तर्मुख होगयी थी ॥ ३६—४२ ॥

भूतोंके द्वारा जो भूताभिभव होताहै, वही सुख दुःखात्मक कहा जाता है ॥ १—५ ॥ दत्तात्रेयने कहा,—हे नर श्रेष्ठ ! तुम जो कहते हो, वह सत्य है। ममता ही दुःखका कारण है और निर्ममत्व सुखका मूल है। मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदयमें ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानका उदय हुआ है और इसी ज्ञान-बलसे तुम्हारी ममता बुद्धि तिनकेकी तरह उड़ गयी। अहङ्कारके अङ्कुरसे ही अज्ञानरूपी महावृक्षकी उत्पत्ति होती है। ममत्व उस वृक्षका स्कन्ध (तना) है। गृह, क्षेत्र, भर, (खेत) आदि उसकी बड़ी बड़ी शाखाएं हैं। पुत्र, दारा (स्त्री) आदि उसके छोटे पत्ते (पल्लव) और धन, धान्य आदि बड़े पत्ते हैं; जो धीरे धीरे बढ़ते हैं। पुण्यापुण्य उसके अग्र पुष्प और सुख-दुःख महाफल है। मूढ़ सङ्कल्प रूपी जलसे वह सींचा जाता है। इसपर अभिलाषा रूपी भँवरोंकी पंक्तियां मंडराया करती हैं। हृदयमें जब यह अज्ञान रूपी महातरु जड़ पकड़ लेता है, तब मुक्तिका पथ अवरुद्ध हो जाता है। ६—१०॥ जो लोग संसार रूपी पथपर चलते हुए थक कर और भ्रान्ति ज्ञान सुखके अधीन होकर इस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं, उन्हें मोक्षका लाभकैसे हो सकता है ? जो लोग विद्यारूपी कुल्हाड़ेको सत्सङ्गरूपी पत्थरपर चोखा करके उससे इस ममतारूपी वृक्षको काटनेमें समर्थ होते हैं, वे ही अपना मार्ग परिष्कृत (साफ) कर ब्रह्मरूपी वनमें पहुंच जाते हैं। वह वन अत्यन्त शीतल है। वहाँ धूल नहीं उड़ती और काँटे नही हैं। उस वनमें पहुंचने पर वृत्ति रहित होकर परमा प्रज्ञा और निर्वृत्तिकी प्राप्ति होती है। हे नृपते ! तुम भी भूतेन्द्रियमय अथवा स्थूल नहीं हो और मैं भी नहीं हूं। हम दोनोंमेंसे कोई तन्मात्र नहीं है और अन्तःकरणात्मक भी नहीं हैं। हे राजेन्द्र ! हम दोनोंमें कौन प्रकृति-मय देख पड़ता है ? अर्थात् कोई नहीं। क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृतिसे अतीत और पाञ्च भौतिक पदार्थ ही गुणात्मक तथा प्रकृतिका विषबीभूत होता है। हे राजन् ! मशक और उदुम्बर (गूलर), ईषिका और मुञ्ज तथा मत्स्य और जल, इनका एकत्व होते हुए भी जैसी इनमें पृथक्ता है, क्षेत्र और आत्माकी भी वैसी ही पृथक्ता जाननी चाहिये ॥ ११—१६ ॥ अलर्कने कहा, हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मुझमें प्रधान (प्रकृति) और चिच्छक्तिके विवेकके अत्युत्तम ज्ञानका उदय हुआ है; किन्तु मेरा चित्त विषयोंमें आकृष्ट होनेके कारण मैं स्थैर्य धारण करनेमें समर्थ नहीं होता और यह भी नहीं जान पाता हूं कि, प्रकृतिके बन्धन-से मेरा कैसे छुटकारा हो, क्या करनेसे फिर जन्म ग्रहण करना न पड़े ? कैसे निर्गुणत्व प्राप्त हो ? किस प्रकार शाश्वत ब्रह्मके साथ एकत्व लाभ हो ? इस सम्बन्धमें मुझे भली भाँति उत्तम योगका उपदेश दीजिये। हे महाप्राज्ञ ! मैं प्रणत होकर आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। सत्सङ्गही मनुष्यका सब प्रकारसे उपकार करता है ॥ १७—२० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणका पिता पुत्र संवादान्तर्गत प्रश्न नामक अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनचालीसवाँ अध्याय।

दत्तात्रेयने कहा—ज्ञानलाभ होनेके उपरान्त योगियोंका जब अज्ञानसे वियोग हो जाता है, उसको मुक्ति कहते हैं और प्रकृतिके गुणोंसे अनैक्य (पृथक्ता) हो जाना ही साक्षात् ब्रह्मके साथ ऐक्य (एकता) स्थापित होना है। हे महीपते! योगसे मुक्ति प्राप्त होती है और सम्यक् ज्ञानसे योगकी उपलब्धि होती है।* दुःखसे सम्यक् ज्ञानका उदय होता है और ममतासक्त चित्तसे दुःखका आविर्भाव होता है। अतः मुमुक्षुको प्रयत्नपूर्वक विषयासक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। विषयासक्तिको छोड़ देनेसे "मेरा" यह ज्ञान नष्ट हो जाता है। निर्ममत्व ही सुखका कारण है। हृदयमें वैराग्यका सञ्चार होनेसे संसारके समस्त दोष सूझने लगते हैं। ज्ञानसे जैसे वैराग्यका, वैसे वैराग्यसे भी ज्ञानका उदय हुआ करता है। जिस स्थानमें निवास किया जाय, वही घर है, जिसके द्वारा देहका पोषण होता है, वही भोज्य है; जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, वही ज्ञान है और इससे जो विपरीत है, वही अज्ञान कहा जाता है। हे पार्थिव! पुण्यापुण्यका उपभोग कर लेने पर निष्काम कर्म करते हुए पूर्वोपार्जित कर्मोंका क्षय और नवीन कर्मोंका असञ्चय होनेसे ही बार बार शरीर-बन्धनमें फँसना नहीं पड़ता ॥ १—७ ॥ हे राजन्! यह सब जो मैंने तुमसे कहा, इसीको योग कहते हैं। जिस योगके द्वारा योगिगण शाश्वत ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य और किसीका अनुभव नहीं करते। सबसे पहिले आत्माके द्वारा आत्माको

---

* टीका—जीव पूर्व संस्कारोंके अनुसार विषय भोगकी इच्छामें फंसता रहता है और इसीसे आवागमन चक्रमें घूमता हुआ निरन्तर दुःख पाता है। उसीसे बचनेके उपायको योग कहते हैं। योग अनेक प्रकारका है, यथाः—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, कर्म्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग इत्यादि। यहां जो भगवान् दत्तात्रेयजीने योगका उपदेश दिया है वह सब योगोंका सार है। इसको राजयोग कह सक्ते हैं। बुद्धियोग साधन करनेका क्रम यह है। अज्ञानसे ममत्व उत्पन्न होकर जीव दुःख पाता है। दुःखका कारण जब जाना जाता है तब उसमें वैराग्य होता है। विषय वैराग्यसे सम्यक् ज्ञान अर्थात् सदसत् ज्ञानका उदय होता है। ज्ञान सूर्य्यके उदय होनेसे अज्ञानान्धकार स्वतः ही दूर हो जाता है तब स्वरूप ज्ञानरूपी स्वस्वरूपका स्वानुभव होते ही मुक्तिका उदय होता है। यही साधन राजयोगका है। यही यहां योग शब्द वाच्य है। सब योग साधन अन्तमें इसी राजयोगका अनुसरण करके मुक्तिपद पर पहुंच सक्ते हैं। आगे अन्य योगोंका भी कुछ दिग्दर्शनका तथा योगीके लिये अरिष्ट विमोचन उपाय आदि जो वर्णन है वह परम्पराय रूपसे सहायक होनेसे किया गया है। योगके विभिन्न साधन मार्ग सब गुरूपदेशगम्य होते हैं ॥१–७॥

जीत लेना चाहिये। क्योंकि आत्माही योगियोंके लिये दुर्जेय है। अतः इसके जीतनेमें यत्न करना उचित है। आत्माको किस प्रकार जानना चाहिये, वह मैं कहता हूं तुम सुनो। समस्त दोषोंको प्राणायामके द्वारा, पाप पुञ्जको धारणा द्वारा, विषय समूहको प्रत्याहार द्वारा और अनीश्वर गुणोंको ध्यानके द्वारा दग्ध कर देना चाहिये। जिस प्रकार पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले धातु अग्नि-संस्कार करनेसे निर्दोष (शुद्ध) हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राण वायुको वशमें करनेसे समस्त इन्द्रियकृत दोष दग्ध हो जाते हैं। योगविद्याको जाननेवाला व्यक्ति प्रथम प्राणायामकी साधना करे। प्राण और अपान इन दो वायुओंके निरोधको प्राणायाम कहते हैं ॥ ८—१२ ॥ प्राणायाम तीन प्रकारका होता है;—लघु, मध्य और उत्तरीय। हे अलर्क! इन तीनों प्रकारके प्राणायामोंका प्रमाण बताता हूं, श्रवण करो। लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है। मध्यम प्राणायाम उससे दुगनी और उत्तम अथवा उत्तरीय प्राणायाम तिगुनी मात्राका कहा गया है। आँखकी पलक गिराने और उठानेमें जो काल लगता है, वही एक मात्राका काल है। ऐसी बारह मात्राओंके कालमें लघु प्राणायाम हो जाता है। पहिले प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीना), दूसरे प्राणायामके द्वारा कम्प (कँप कँपी) और तीसरे प्राणायामके द्वारा विषाद (खिन्नता) आदि दोषोंको क्रमशः जीत लेना पड़ता है। सिंह, बाघ और हाथी जिस प्रकार सेवाके द्वारा मृदु (नरम) हो जाते हैं, उसी प्रकार योगिजन प्राणायामके द्वारा प्राणको वशीभूत कर लेते हैं। महावत (पीलवान) जिस प्रकार मस्त हाथीको वशमें लाकर अपनी इच्छाके अनुसार चलाता है, उसी प्रकार योगिगण प्राणको वशीभूत कर स्वेच्छानुसार अनायास उससे कार्य करालेनेमें समर्थ होते हैं ॥ १३–१८ ॥ सिखाया हुआ सिंह जिस प्रकार मृगादिको मारता है, किन्तु मनुष्यको चोट नहीं पहुंचाता, उसी प्रकार प्राणवायुकी साधना करनेसे उसके द्वारा पापपुञ्जका नाश होता है, शरीरकी कोई हानि नहीं होती। इसी कारण योगी पुरुष निरन्तर प्राणायाम परायण हुआ करते हैं। प्राणायामकी चार अवस्थाएँ हुआ करती हैं; जिनसे मुक्ति प्राप्त होती है। उन्हीं अवस्थाओंका अब मैं वर्णन करता हूं, तुम सुनो। हे महीपते! ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद ये ही प्राणायामकी चार अवस्थाएं हैं। अब मैं इनका यथाक्रम स्वरूप वर्णन करता हूं, उसे सुनो। जिस अवस्थामें दुष्ट और अदुष्ट दानों प्रकारके यावतीय कर्मफल क्षयको प्राप्त होकर चित्तकी मलिनता मिट जाती है, उसको ध्वस्ति कहते हैं। योगी व्यक्ति जिस अवस्थामें लोभ मोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त कामोंको निरन्तर स्वयं निरुद्ध करते हैं, उसको प्राप्ति कहते हैं। योगी जिस अवस्थामें ज्ञान सम्पत्ति प्राप्त कर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादिकी तरह क्षमता प्राप्त कर लेते हैं और अतीत, अनागत, तिरोहित तथा दूरस्थ विषयोंको

जान लेते हैं, उसको संवित् कहते हैं। और जिस अवस्थामें योगीके चित्त, पञ्चवायु, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंकी शुद्धि हो जाती है, उसको प्रसाद कहते हैं ॥ १९—२६ ॥ हे महीपते! अब प्राणायामके लक्षण और योगारम्भ करते समय जिस प्रकारके आसन बांधने पड़ते हैं, उनके लक्षण सुनो। पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनोंको बाँधकर हृदयमें प्रणवमन्त्रका जप करते हुए योगानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये। साधक सरल भावसे समासनमें अर्थात् जो आसन ऊँचा नीचा (ऊबड़ खावड़) न हो ऐसा आसन जमाकर दोनों पाँव और जंघाएं आगेकी ओर बटोर कर, मुँह बन्द कर, संयत चित्तसे ऐसा बैठे, जिससे हाथसे जननेन्द्रिय अथवा अण्डकोष छुआ न जा सके। इस आसनमें सिर कुछ उन्नत रहे और दाँतोंसे दाँत रगड़े न जायँ ॥ २७—३० ॥ दृष्टि नासिकाग्रमें स्थिर रहे, वह इधर उधर विचलित न हो। योगाभ्यासी व्यक्ति उस समय रजोगुणके द्वारा तमोगुणी वृत्तिका और सत्वगुणके द्वारा राजसिक वृत्तिका निरास कर केवल मात्र निर्मल तत्वमें अवस्थान करता हुआ योग साधन करे। समवाय क्रमसे इन्द्रियों और उनके विषयोंको तथा मन और प्राणादि वायुओंको वशीभूत करके, कछुआ जिस प्रकार अपने सब अङ्गोंको बटोर लेता है उसी प्रकार प्रत्याहारकी साधना करनी चाहिये। इस प्रकार काम-समूहको प्रत्याहरण कर केवल आत्मामें ही लौ लगा देनेसे आत्माके द्वारा आत्माका दर्शन होता है। विचक्षण योगाभ्यासीको कण्ठसे लेकर नाभि पर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक देहकी शुद्धि करके प्रत्याहारकी साधना करनी चाहिये। प्राणायाम दस प्रकारके और धारणा दो प्रकारकी कही गयी है ॥ ३१—३५ ॥ तत्वदर्शी योगियोंने भी योगाभ्यासमें दो ही प्रकारकी धारणाका उल्लेख किया है। नियतात्मा होकर योगाभ्यास करनेसे योगीके समस्त दोष मिट जाते हैं, शान्ति लाभ होता है, प्राकृत गुण पृथक रूपसे देख पड़ते हैं, परब्रह्मका दर्शन होता है और आकाशादिके परमाणुओं तथा विशुद्ध आत्माका भी साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार योगी नियताहार कर और प्राणायाममें निरत होकर धीरे धीरे योगभूमिको जय कर ले और अपने घरकी तरह उस भूमि पर आरूढ़ हो जाय। यदि योगभूमिको जय न किया जाय, तो कामादि दोष, व्याधियां और मोहकी वृद्धि होती है। अतः योग भूमिको विना जय किये उसपर आरूढ़ नहीं होना चाहिये। जिसके द्वारा पञ्चप्राण संयत होते हैं, उसीको प्राणायाम कहते हैं ॥ ३६-४० ॥ जिसके द्वार मनको धारण किया जाय, वह धारणा कहाती है और नियतात्मा व्यक्ति जिस अवस्थामें इन्द्रियोंको उनके शब्दादि विषयोंसे प्रत्याहरण करते हैं, वही प्रत्याहार है। योगसिद्ध ऋषिगण इस विषयमें जिन उपायोंका निरूपण कर गये हैं, उनके अवलम्बनसे योगीके शरीरमें व्याधि आदि पैठनेमें असमर्थ हो जाती हैं। जिस प्रकार प्यासा मनुष्य झारीसे

धीरे धीरे जल पीता है, उसी प्रकार जितश्रम योगी धीरे धीरे वायुका पान करे। प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें, फिर कण्ठमें, फिर मुखमें, फिर नासाग्रमें, फिर आँखोंमें, फिर भ्रूमध्यमें, फिर तालूमें और अन्तमें परमब्रह्ममें धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार धारणा दस प्रकारकी कही गयी है। यह दशविध धारणाकी सिद्धि हो जानेपर ब्रह्मसारूप्यकी प्राप्ति होती है ॥ ४१–४५ ॥ हे राजेन्द्र! योगीको सिद्धिलाभके लिये हाँपना, भूख, थकावट और चित्तचाञ्चल्य इनका परित्याग कर समत्व बुद्धिसे योगाभ्यास करना चाहिये। अत्यन्त शीतमें, अत्यन्त उष्णतामें अथवा आँधीमें ध्यान तत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ कोलाहल होता हो ऐसे स्थानमें, अग्नि और जलके निकट, जीर्ण गोष्ठ (जहाँ गायें बाँधी जाती हैं) में, चौराहेपर, सूखी पत्ती जहाँ बिछी हो ऐसे स्थानमें, नदीके तटपर, स्मशानमें, जहाँ साँप बिच्छू हों ऐसे स्थानमें, भयसङ्कुल प्रदेशमें, कुएपर और चैत्य अथवा बाँवी जहाँ हो ऐसे स्थानमें तत्ववेत्ता योगीको योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ और जिस समय सत्त्वगुणका पोषण न हो, उस देश-कालको छोड़ देना चाहिये। जहाँ सात्विकता नहीं, वहाँ योगाभ्यास करनेसे कदापि आत्मसाक्षात्कार नहीं होता। इस कारण असात्विक देशकालका परित्याग करना ही उचित है ॥४६–५०॥ जो साधक मूर्खताके कारण उक्त प्रकारके स्थानोंकी छान बीन न कर योगाभ्यासमें प्रवृत्त होते हैं, उनमें कौन कौनसे दोष उत्पन्न होकर वे उनके कार्यमें विघ्न डालते हैं, वह मैं कहता हूं, सुनो। ऐसे विवेचनाशून्य योगाभ्यासीको वधिरता, जड़ता, मूकत्व (गूँगापन), स्मृतिलोप, अन्धता और सद्योज्वरके दोषसेयुक्त होना पड़ता है। प्रमादवश साधकमें यदि ये दोष आ जायँ, तो उनके निवारणार्थ कौनसे उपाय करने चाहिये, इसका विवरण सुनो। अच्छी तरह जौ (यवागु) को छाँटकर और उन्हें स्निग्ध कर खाने बहुत गरम-गरम उदर तथा गुल्मके स्थानमें बांधनेसे वात और गुल्म रोगका नाश होता है। इसी तरह यवागुको वायुग्रन्थि पर बाँधना अथवा हवा करना लाभदायक है। मनके चञ्चल होनेपर प्रलयकालीन महाशैलकी भावना करनी चाहिये ॥ ५१–५५ ॥ वाक्शक्तिकालोप हो जानेपर वाक्य धारणा और श्रवणशक्तिका विनाश होनेपर तृषातुर व्यक्ति जिस प्रकार रसनेन्द्रियके लिये आम्रफलके लाभकी इच्छा करता है, उस प्रकार श्रवणेन्द्रियकी धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार देहमें जो जो व्याधि हों, उनका नाश करनेके लिये देहके लिये उपकारक भावना करनी चाहिये। उष्णतामें शीतलताकी भावना और शीतमें उष्णताकी भावना उपकारक है। सिरहानेकी ओर एक कील गाड़ कर उसपर एक काठ रखकर दूसरे काठसे उस काठको ठोकनेसे लुप्त स्मृति योगाभ्यासी पुरुषमें उसी क्षण स्मृतिशक्तिका पुनरुदय हो जाता है। अथवा स्मृतिशक्तिका लोप होनेपर आकाश, पृथ्वी, वायु और

अग्निकी भावना करनी चाहिये । अमानुषसत्वके कारण उत्पन्न हुए विघ्नोंकी चिकित्सा इसी प्रकार कही गयी है । योगाभ्यासीके हृदयमें अमानुषसत्वका प्रवेश होनेपर वायु और अग्निकी भावना करनेसे वह दग्ध हो जाता है ॥ ५६–६० ॥ हे नृपते ! इस प्रकार सब भाँति शरीरकी रक्षा करना योगवेत्ता व्यक्तिको उचित है । क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके साधनका मूल है । प्रवृत्तिस्वरूप वर्णन और विस्मय इन दो कारणोंसे योगीका विज्ञान विलयको प्राप्त होता है । अतः प्रवृत्ति समूहको गुप्त रखना चाहिये । अचाञ्चल्य, नीरोगिता, अनिष्ठुरता, देहमें सुगन्धिसञ्चार मूत्र और विष्ठाकी अल्पता, कान्ति, प्रसाद और सुस्वर, ये सब योगप्रवृत्तिके प्रथम चिह्न हैं । जिस अवस्थामें लोग अनुरक्त होकर पीठ पीछे गुणकीर्तन करें और कोई जीव भय न करे, वही सिद्धिकी उत्तम अवस्था जाननी चाहिये । अत्युग्र शीत और उष्ण जिसे सता न सकें और किसीसे जो न डरे, उसीको सिद्धिलाभ हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१–६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका जड़ोपाख्यानान्तर्गत योगाध्याय नामक उनचालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चालीसवाँ अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा—आत्म साक्षात्कार होने पर योगियोंको जो उपसर्ग होते हैं, उनको संक्षेपमें कहता हूं, सुनो । उस समय नाना प्रकारकी काम्य क्रियाओंकी और मानवोचित भोग्य पदार्थोंके उपभोगकी इच्छा होने लगती है । स्त्री, दानफल, विद्या, माया, कूप्य, धन, स्वर्ग, अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नाना प्रकारके रसायन, वायुमें उड़ाण, यज्ञ, जल, और अग्निमें प्रवेश, समस्त श्राद्ध और दान समूहका फल तथा नियमादिके सम्बन्धमें योगीके हृदयमें वासनाका उदय होता है । उपवास, पूर्तादि कर्म, देवतार्चन आदि कर्मोंसे उपसृष्ट होनेकी वह वाञ्छा करने लगता है । यदि योगीकी मनोवृत्ति इस तरहकी हो जाय, तो उस ओरसे चित्तको हटानेका उसे प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार चित्तको हटा देनेसे योगीका उपसर्गसे छुटकारा हो जाता है ॥ १—५ ॥ इन उपसर्गोंको जीत लेने पर भी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे अन्यान्य उपसर्ग योगीको आ घेरते हैं । उसमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त ये पाँच प्रकारके उपसर्ग योगमें विघ्न डालनेके लिये भयंकररूपसे आविर्भूत होते हैं । जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ, समस्त काव्यशास्त्रार्थ, यावतीय विद्याएं और शिल्प शास्त्र योगीके चित्तमें प्रतिभात होते हैं, उसको

'प्रातिभ' कहते हैं। जिसके द्वारा यावतीय शब्दोंका अर्थ बोधगम्य हो जाता है और हजारों कोसोंका शब्द सुनायी देने लगता है, उसे 'श्रावण' कहते हैं। जिसके द्वारा मूर्तिमान् देवताके समान बनकर योगी उन्मत्तकी तरह आठों दिशाओंका अवलोकन करने लगता है, विद्वान् पुरुष उसे 'दैव' उपसर्ग कहते हैं ॥ ६—१० ॥ समस्त आचारोंके भ्रष्ट हो जानेसे जो दोष उत्पन्न होता है, उस दोषसे योगीका मन निरालम्ब होकर जब चक्कर खाने लगता है, तब उस उपसर्गको भ्रम कहते हैं। और जिसके प्रभावसे ज्ञानावर्त जलावर्त की तरह आकुल होकर चित्तको नष्ट कर देता है, उसको 'आवर्त' कहते हैं। योगिगण इन सब घोरतर उपसर्गोंके प्रभावसे योगपरिभ्रष्ट होकर फिर फिर संसारचक्रमें घूमने लगते हैं। अतः मनोमय शुभ्र कम्बलमें अपनेको लपेट कर मनको एक मात्र परब्रह्ममें लगाकर उसीका निरन्तर ध्यान करते रहना योगियोंको उचित है। योगी पुरुष निरन्तर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर भूर्भुवादि सात प्रकारकी सूक्ष्म ,धारणाको मस्तिष्कमें दृढ़ करे ॥ ११–१५ ॥ वह धरित्रीको धारण करे; इससे उसे उसका सुख प्राप्त होगा। वह आत्माकी धरित्रीके रूपमें भावना करे, तो धरित्रीके बन्धनको तोड़नेमें समर्थ हो जायगा। इसी तरह जलमें सूक्ष्म रस, तेजमें रूप, वायुमें स्पर्श और आकाश सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्दकी धारणा करके उनका परित्याग कर देना चाहिये। जब मनके द्वारा सब भूतोंके मनमें प्रवृष्ट होकर मानसी धारणा की जायगी, तभी सूक्ष्म मनकी उत्पत्ति होगी। इसी तरह योगी पुरुष यावतीय भूतोंकी बुद्धिमें आविष्ट होकर अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धिको प्राप्त कर उसको त्याग देता है। हे अलर्क! जो योगी इन सात प्रकारके सूक्ष्म-भावोंसे सम्पूर्णरूपसे परिचित होकर उनका परित्याग कर देता है, उसे फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता ॥ १६–२१ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाओंकी सूक्ष्मता-को बार बार दृष्टि गोचर करके और फिर फिर सिद्धियोंका विसर्जन करके परमा गतिको प्राप्ति करते हैं। हे महीपते! योगी जिस जिस भूतके प्रति अनुरक्त होगा, उसी उसी भूतमें उसकी आसक्ति बढ़कर वह नाशको प्राप्त होता है। जो देही परस्पर संयुक्त भूतोंको जानकर उनका त्याग करनेमें समर्थ होता है, वही परम पदको प्राप्त कर सकता है। हे पार्थिव! इन सात प्रकारकी धारणाओंका अभ्यास कर भूतादिमें अनुरक्त न होनेसे ही सद्भावज्ञ व्यक्ति मुक्त हो जाता है। हे राजन्! गन्धादिमें आसक्ति होनेसे योगनाश हो जाता है। और साधकको पुनः संसार चक्रमें चक्कर लगाना पड़ता है। हे नरेश्वर! योगी पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाओंका अतिक्रमण कर यदि देह विसर्जन करना चाहे, तो वह उन उन सूक्ष्म भूतोंमें लयको प्राप्त होता है और देवता, दानव, गन्धर्व, पन्नग और राक्षस, इनके शरीरोंमें विलीन हो जाता है। वह किसीमें आसक्त नहीं होता ॥ २२–२८ ॥

हे नर श्रेष्ठ ! वही अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व इन आठ प्रकारके निर्वाणप्रद ईश्वरीय गुणोंका अधिकारी होता है। जिसके द्वारा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम हो सके, उसका नाम अणिमा है। जिसके द्वारा क्षिप्रकारित्वका उदय हो, अर्थात् इच्छा करते ही जो चाहे सो कार्य सिद्ध हो जाय, उसको लघिमा कहते हैं। जिसके द्वारा योगी सब किसीका पूजनीय हो जाय, वह महिमा है। जिसके द्वारा सब अभिलाषाओंकी पूर्ति हो, वह प्राप्ति कहाती है। जिसके द्वारा व्यापकताकी शक्ति प्राप्त हो, वह प्राकाम्य है। जिसके प्रभावसे योगी सबका अधीश्वर हो जाय, वह ईशित्व है और जिसके प्रभावसे सबको अपने वशमें कर लिया जाय, उसको वशित्व सिद्धि कहते हैं। यह वशित्व ही योगीका सातवाँ गुण कहा गया है। जिसके द्वारा स्वेच्छानुसार जहाँ चाहे, वहाँ गमन किया जाय और अपनी इच्छाके अनुसार सभी कार्य साध लिये जा सकें, उसको कामावसायिता कहते हैं। वस्तुतः योगी पुरुष इन आठ गुणोंके प्रभावसे ईश्वरकी तरह सब कार्योंको सम्पन्न करनेमें समर्थ हो जाता है ॥ २९-३३ ॥ हे राजन्! ये सब गुण मुक्तिको सूचित करते हैं; अर्थात् इन गुणोंके प्रकाशित होनेसे ही जान लेना चाहिये कि, योगी शीघ्र ही मुक्त हो जायगा। उसके निर्वाणपद लाभका समय आ गया है। उसे फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ेगा। वह न बढ़ेगा, न घटेगा, न नष्ट होगा और न उसका कोई परिणाम (रूपान्तर) ही होगा। वह कभी भूतादिकोंसे छिन्न, भिन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नहीं होगा। शब्दादि उसे कदापि अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकेंगे। शब्दादि विषयोंके साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा। वह शब्दादिका भोक्ता नहीं होगा। उसका उनसे संस्पर्श भी नहीं होगा। हे महीपते! जिस प्रकार अन्य धातु मिश्रित एक सोनेके टुकड़ेको आगमें शुद्धकर लेने पर अर्थात् उसमें जो अन्य धातु है, उसे जला डालने पर शेष विशुद्ध सोना दूसरे विशुद्ध सोनेके टुकड़ेमें सहज ही मिला देनेसे एक रूप हो जाता है, उसी प्रकार योग वह्निके द्वारा राग द्वेषादि दोषोंको दग्ध कर देनेपर योगी भी परब्रह्ममें भली भाँति मिलकर समरस हो जाता है ॥ ३४—३८ ॥ हे राजन्! जिस प्रकार अग्निमें अग्नि मिला देनेसे दोनों अग्नि एक रूप हो जाते हैं, उनमें प्रभेद नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दोषसमूहके दग्ध होने पर योगी जब एकवार ब्रह्मसे संयुक्त हो जाता है, तो फिर उसे पृथक् भावका भोग नहीं करना पड़ता। पानीमें पानी मिला देनेसे दोनों पानियोंका जैसा समानत्व हो जाता है, योगीका आत्मा भी वैसा ही परमात्मामें मिलकर साम्यको प्राप्त करता है ॥ ३९-४१ ॥

इस प्रकार मारकण्डेय महा पुराणका योगसिद्धि नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

इकतालीसवाँ अध्याय ।

अलर्कने कहा,—हे भगवन् ! मैं योगीकी उस चर्या (दैनिक कार्यों अथवा अवस्थाओं) को जानना चाहता हूं, जिससे ब्रह्मपथका अनुसरण करते हुए वह अवसादको प्राप्त नहीं होता। दत्तात्रेयने कहा,—मान और अपमान, ये ही दो मनुष्योंको प्रसन्न और उद्विग्न करनेवाले होते हैं। योगीके लिये यदि ये दोनों विपरीतभावमें परिणत हो जायँ, तो सिद्धिप्रद हो जाते हैं। मान और अपमान, विष और अमृत कहे गये हैं। इनमें अपमान अमृत और मान विषम विषस्वरूप है। योगी आँखोंसे भलीभाँति देखकर भूमिपर पैर रक्खे, कपड़ेसे छानकर जल पीये, सदा सत्यसे पवित्र हुआ वचन कहे और बुद्धिके द्वारा विवेचना करके सत्विचार करे। योगवेत्ता पुरुष आतिथ्य (मेहमानदारी), श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सवमें कभी कहीं भी सम्मलित न हो और सिद्धिके लिये महाजनके पास कदापि न जावे ॥ १–५ ॥ जब गृहस्थोंके घरका चूल्हा शान्त कर दिया जाय, घर निर्धूम हो जाय और गृहस्थ भोजन करके निश्चिन्त हो जायं, उसी समय प्रतिदिन योगी उनके यहाँ भिक्षाके लिये गमन करे। जिससे लोग परिभूत और अपमानित करें, ऐसे कार्य करते हुए योगी आनन्दसे विचरे; परन्तु इस बातका ध्यान रक्खे कि, साधुजनोचित आचारसमूह दूषित न हों। गृहस्थों और उच्चवर्णीयोंके घर ही भिक्षा करना प्रशस्त है। गृहस्थोंके घर भिक्षा करना श्रेष्ठ माना गया है। जो गृहस्थ लज्जावान, श्रद्धावान् , दान्त, श्रोत्रिय, महात्मा हैं और जो दूषित अथवा पतित नहीं हैं, उन्हींके घर यति (योगी) को भिक्षा करनी चाहिये। नीच वर्णके लोगोंके घरकी भिक्षा जघन्य (निन्दनीय) कही गयी है ॥ ६–१० ॥ यवागु, मट्ठा, दूध, यावक, फल, मूल, प्रियङ्गु, कण, पिन्याक और सत्तू ही योगी भिक्षामें ग्रहण करे। ये ही वस्तुएँ उसके लिये कल्याणकारक और सिद्धिदायक कही गयी हैं। अतः पहिले समाहित और भक्तियुक्त होकर इन्हीं वस्तुओंका उपयोग करना चाहिये। योगी भोजनके पूर्व मौनावलम्बन पूर्वक आचमन कर और "प्राणाय स्वाहा" कह कर प्रथम ग्रास लेवे। योगीकी यह प्रथम आहुति कही गयी है। अनन्तर क्रमशः "अपानाय स्वाहा" कह कर द्वितीय आहुति, "समानाय स्वाहा" कह कर तृतीय आहुति, "उदानाय स्वाहा" कह कर चतुर्थ आहुति और "व्यानाय स्वाहा" कह कर पाँचवी आहुति जठराग्निके लिये देवे। इसके पश्चात् प्राणायामसे पृथक् करके स्वेच्छा-नुसार शेष भोजन समाप्त करे। भोजन समाप्त हो जानेपर फिर आचमन कर हृदयको

स्पर्श करना चाहिये ॥ ११–१५ ॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ और अहिंसा, योगियोंके लिये ये पाँच परम व्रत और अक्रोध, गुरुशुश्रूषा, शौच, अल्पाहार और प्रतिदिन वेदाध्ययन, ये पाँच उत्तम नियम कहे गये हैं। सारगर्भित और कार्यसिद्धि करनेवाले ज्ञानकी ही आलोचना करना योगीको उचित है, क्योंकि बहुविध ज्ञानविषयोंकी चर्चा करनेसे योगमें विघ्न होना बहुत सम्भव है। जो योगी "यह जानना है, वह जानना है" कहता हुआ प्यासे चित्तसे भटकता फिरता है, उसको सहस्रों कल्पोंतक ज्ञेय वस्तुका ज्ञान हो नहीं सकता। सर्वसङ्गपरित्याग कर, जितक्रोध, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर, बुद्धिकी सहायतासे दसों इन्द्रियोंके द्वार बन्दकर मनको ध्यानमें लगा देना चाहिये ॥ १६–२० ॥ निर्जन स्थान, गुहा अथवा अरण्यमें निवास करते हुए नित्ययुक्त होकर निरन्तर उत्तम विधान पूर्वक ध्यानमें निमग्न रहना योगीको उचित है। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड, ये तीन दण्ड जिसके वशमें हैं, उसीको त्रिदण्डी अथवा महामति कहते हैं। जो इस सदसदात्मक और गुणागुणमय दृश्यमान जगत्को आत्ममय समझते हैं, हे राजन्! उनके लिये कोई व्यक्ति प्यारा नहीं और कोई अप्रिय भी नहीं है। जिनकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है, जिनके लिये पत्थर और सोना बराबर है और जो समस्त भूतोंमें समाहित होकर सर्वत्र एकमात्र सर्वाधार, शाश्वत, अव्यय ब्रह्मको ही देखते हैं; उन्हें पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता। संसारमें अशेष वेद श्रेष्ठ हैं और उनमें भी यज्ञक्रियायें श्रेष्ठ हैं। यज्ञकी अपेक्षा जप, जपकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गकी अपेक्षा निःसङ्ग और रागविहीन होकर ध्यान करना श्रेष्ठ है। ध्यानयोगके सध जानेसे शाश्वत ब्रह्मकी उपलब्धि होती है।

टीकाः—योगका साधारण स्वरूप पहिले कह चुके हैं। सब योगोंका जो सार है, वह भी पूर्वावस्थामें कहा गया है। तदनन्तर सबसे पहिले योगविघ्नका दिग्दर्शन किया गया है। योगीको योगमार्गमें अग्रसर होते होते उस मार्गमें जो विपत्तियोंकी प्राप्ति होती है, वे ही योगविघ्न कहाते हैं। जीव स्वभावतः दृष्ट और अनुश्रवित विषयोंकी सेवा जन्मजन्मान्तरमें करता हुआ साधन तथा भगवत्कृपाके बलसे योगमार्गमें अग्रसर होने लगता है। वहाँ भी उसको दृष्ट और अनुश्रवित विषय नहीं छोड़ते। उस समय उस शुभ मार्गमें उसको अपने आप जो उच्च विषयभोगकी तृप्तिके उपयोगी दैवी शक्ति प्राप्त होती है, उसीका नाम सिद्धि है। सिद्धियाँ अनेक प्रकारकी होनेपर भी उनको अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। मन्त्र, औषधि आदि आधिभौतिकके उदाहरण हैं। अणिमा, लघिमा आदि अधिदैवके उदाहरण हैं। और बौद्धिक सिद्धि यथा,—वेदाविर्भाव और शास्त्रप्रकाशन आदिकी शक्ति अध्यात्म कहाती है। इन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तिविशेषका सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्बन्ध है। यदि योगी योगमार्गमें चलता हुआ इनमेंसे किसीमें फँस जाय, तो उसका पतन अवश्यसम्भावी है। क्योंकि विषयमात्र ही आत्मानुसन्धानका विरोधी है। परन्तु योगियोंमें जब ये दैवी शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं, तो उनकी इच्छा न रहने पर भी कुलकामिनीके अङ्गदर्शनकी तरह कभी कभी वे शक्तियाँ लोगोंको

जो महात्मा समाहित, ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र, एकान्तके अनुरागी और नियतेन्द्रिय होकर इस ध्यानयोगको साध लेते हैं, उनके आत्माका आत्माके साथ संयोग होकर उनको मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २१-२६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका योगिचर्या नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

ब्यालीसवां अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा,—इस प्रकार जो योगी उत्तम विधानसे योगयुक्त हो जाते हैं, उन्हें कोई सैकड़ों जन्मान्तरोंमें भी अपने पदसे हटा नहीं सकता । जो विश्वरूप हैं, जो विश्वके ईश्वर हैं, जो विश्वभावन हैं, विश्व ही जिनके पाद हैं, विश्व ही जिनकी ग्रीवा और विश्व ही जिनका मस्तक है, योगी उस परमात्माका साक्षात्कार कर उसे पानेके लिए ॐ इस एकाक्षर मन्त्रका जप किया करते हैं । वही उनका अध्ययन होता है और उसी ॐकारके स्वरूपका वे श्रवण किया करते हैं । अकार, उकार और मकार ये ही तीन अक्षर ॐ कारकी सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन मात्राएँ हैं । इनके अतिरिक्त ॐ कारकी और भी आधी मात्रा है, जो सात्विकादि गुणोंसे अतीत और उर्द्ध्वमें अवस्थित है तथा उसे

दिखायी दे जाती हैं । जैसे,—कुल कामिनी परपुरुषको अङ्ग नहीं दिखा सकती । यदि दिखावे, तो वह व्यभिचारिणी कहावेगी । परन्तु दैवात् कभी अपने पिता, पुत्र आदि अथवा अतिथि आदिकी सेवा, भोजनपानादि अर्पण करते हुए वायु आदिके झकोरेसे परपुरुषको उसका अङ्ग दर्शन हो जाता है, उसी प्रकार यदि पूर्ण वैराग्ययुक्त योगीकी सिद्धियाँ उसकी अनिच्छासे दैवात् प्रकाशित हो जाँय, तो दूसरी बात है; नहीं तो सिद्धिकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसका पतन अवश्य होगा । इस कारण पहिले सिद्धिके विषयमें योगीको सावधान करके योगीको सहायकारी आचारोंका वर्णन किया गया है । मन्त्रयोगी, हठयोगी और जपयोगी तीनोंके लिये ऊपर लिखे आचारसमूह परम सहायक हैं । योगभूमिमें चढ़नेकी आठ सीढ़ियाँ हैं । जिसका भली भाँति वर्णन पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलिजीने योगदर्शनमें किया है । उसमेंसे वहिरिन्द्रियनिग्रहरूपी यम और अन्तरिन्द्रियनिग्रहरूपी नियम, स्थूल शरीरपर आधिपत्यस्थापनरूपी आसन और प्राणक्रियापर आधिपत्य करनेवाली क्रियाको प्राणायाम कहते हैं । ये चारो क्रियाएँ बहिरंगकी हैं । बाहरसे भीतरको पहुंचनेकी क्रियाका नाम प्रत्याहार, भीतरमें ही ठहरनेकी क्रियाका नाम धारणा, आत्माको लक्ष्यमें रखनेका नाम ध्यान और जीवात्मा तथा परमात्माका एकीकरण करनेका नाम समाधि है । इसीको यहाँ योगशब्दवाच्य कहकर वर्णन किया है । यही अष्टम सोपानरूपी समाधि ही राजयोगका साध्य विषय है । आचारवान् योगी क्रमशः चाहे किसी योग-मार्गमें चलता हो, अन्तमें उसको इसी अष्टम सोपानमें जाकर पहुंचना होता है ॥ २१-२६ ॥

योगी ही जान पाते हैं। गान्धार स्वरसे सम्बन्ध युक्त होनेसे उसे गान्धारी कहते हैं। इसकी गति पिपीलिकाके समान होती है, यह स्पर्शगुणवाली है और इसका प्रयोग करनेसे यह शिरोभागमें देख भी पड़ती है॥ १-५॥ जिस प्रकार ॐ कारका प्रयोग करनेसे उसकी संवेदना शिरोभागमें होती है, उसी प्रकार योगी अक्षर अक्षरमें ॐ कारमय हो जाता है। प्रणव धनुष स्वरूप है, आत्मा बाण स्वरूप है और ब्रह्म लक्ष्यस्वरूप हैं। प्रमादहीन होकर शरसन्धान करनेसे योगी बाणके समान तन्मय हो जाता है। ॐकार ही वेदत्रय, लोकत्रय, अग्नित्रय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ऋक्, यजु तथा सामस्वरूप हैं। परमार्थतः ॐ कारकी साढ़े तीन मात्राएँ हैं। इस ॐ कारसे संयुक्त होनेपर योगी उसीमें विलीन हो जाता है। अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक और व्यञ्जन सहित मकार स्वर्लोक माना गया है॥ ६-१०॥ उसकी प्रथम मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता, तीसरी चिच्छक्ति और चौथी अर्धमात्रा परम-पद कही गयी है। इसी क्रमसे योगभूमियोंको भी जानना चाहिये। ॐ के उच्चारणमात्रसे सभी सदसत्का ग्रहण हो जाता है। पहिली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत है; परन्तु चौथी अर्धमात्रा वाणीके द्वारा उच्चरित नहीं हो सकती। इस प्रकार जो योगी ॐ कार संज्ञक अक्षर स्वरूप परब्रह्मको जानकर उसका ध्यान करते हैं, वे संसारचक्रसे

टीकाः—सब मन्त्रोंमें ॐकारकी महिमा सर्वोपरि है। सब स्थलोंमें, सब मनुष्यजातियोंमें, सब शास्त्रोंमें ईश्वरके नाम जो जो कहे गये हैं, सबसे ॐकारका वाच्यवाचकसम्बन्ध ईश्वरसे सर्वोपरि है। इसका प्रधान कारण यह है कि, चाहे निर्गुण ब्रह्म हो, चाहे सगुण ब्रह्म ईश्वर हो, वाच्यरूप ईश्वरका वाचकरूप यथार्थ नाम प्रणवके सिवा और कोई हो नहीं सकता। क्योंकि प्रणव स्वाभाविक है। सृष्टिकर्ता और सृष्टिद्रष्टा ईश्वरके साथ प्रणवका साक्षात् सम्बन्ध है। जहां कोई कार्य है, वहां अवश्य कम्पन होगा, और जहां कम्पन है, वहां शब्द होना स्वाभाविक है। चाहे सूक्ष्मसे सूक्ष्म कार्य हो, वहां भी कम्पन है और शब्द है। सृष्टि एक कार्य है। उसमें कम्पन अवश्य है। आदि सृष्टिसे, सृष्टिकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थासे,—जो शब्द प्रकट होता है, वही प्रणव है। वह सप्तस्वरका बीज है; परन्तु उसमें गन्धार प्रतिफलित होता है। जब सृष्टि नहीं थी और ब्रह्मशक्ति अव्यक्तावस्थामें थी, वहां कोई शब्द भी नहीं था। जब प्रकृति व्यक्ता हुई, तो साथ ही साथ उसके तीन गुण भी प्रकट हुए। त्रिगुण-मयी प्रकृतिमें जब प्रथम हिल्लोल हुआ, तो तीनों गुण एक साथ हिले; उस अवस्थासे प्रणवका सम्बन्ध है। प्रणवमें तीनों गुणोंका अस्तित्व है। परन्तु जैसे ब्रह्म प्रकृति त्रिगुणमयी है, वैसे ही ब्रह्मवाचक प्रणव भी त्रिगुणात्मक है। इस अवस्थाके बाद गुणोंका विकार उत्पन्न होता है और सृष्टि आगे चलती है। अतः ब्रह्म ब्रह्मप्रकृति और प्रकृतिके त्रिगुणकी प्रथमावस्था इन सबके साथ प्रणवका साक्षात् और मिश्र सम्बन्ध रहनेके कारण प्रणवके साथ ब्रह्मशक्ति और ब्रह्मका एक रस सम्बन्ध है। यही कारण है कि, प्रणवसे बढ़कर ईश्वरका और कोई नाम नहीं हो सकता। पूज्यपाद योगिराज महर्षि पतञ्जलिजीने कहा है कि, ईश्वरका वाचक प्रणव है। उसका जप और उसकी अर्थभावना द्वारा ईश्वरकी प्राप्ति होती है। अर्थात् आत्मासे स्वानुभव प्राप्तिका यह बड़ा उपाय है। योगी प्रणवका यदि रहस्य समझकर सच्चे प्रकारसे उसका जप

छूटकर और बन्धनत्रयसे पार होकर परमब्रह्म परमात्मामें लयको प्राप्त होते हैं। यदि उनके कर्मबन्धनका क्षय न हुआ हो, तो अरिष्टके द्वारा मृत्युको जानकर उत्क्रान्ति (देहान्तर) के समयमें सब कुछ स्मरण रखकर पुनः योगित्वको प्राप्त करते हैं। अतः चाहे सिद्ध योगी हो अथवा असिद्ध योगी हो, उसे योगके द्वारा सदा अपने अरिष्टोंको जान लेना चाहिये ; जिससे उसे देहावसानके समय खिन्न नहीं होना पड़ता ॥ ११–१७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका योगधर्मान्तर्गत ॐकारस्वरूप कथन नामक ब्यालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

तैंतालीसवाँ अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा—हे महीपते ! अब तुमसे समस्त अरिष्टोंका विवरण कहता हूँ, सुनो। योगिगण इन अरिष्टोंको देखकर अपनी मृत्युका हाल जान लेते हैं। जो लोग देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, सोम, अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको देख नहीं पाते, एक सालमें ही वे मृत्युमुखमें जा पहुँचते हैं। जो सूर्यबिम्बको किरणविहीन और अग्निको अंशुमाली (सूर्य) की तरह देखने लगे, वह ग्यारह माससे अधिक जी नहीं सकता। जो स्वप्नमें मूत्र, विष्ठा अथवा कै (वमन) के बीच सोना अथवा चाँदी देखे, वह दस मासमें ही कालका ग्रास बन जाता है। जो प्रेत और पिशाचादि, गन्धर्वनगर अथवा सोनेके रंगका वृक्ष देखे, उसकी नौ मासमें मृत्यु अवश्य होगी ॥ १–५ ॥ जो व्यक्ति स्थूल होकर कृश हो जाय और पुनः कृश होकर अकस्मात स्थूल हो जाय, उसका आयु केवल आठमास बच

कर सके, तो अवश्य ही वह योगिराज आत्माका अनुभव प्राप्त करके ब्रह्मीभूत हो जायगा। उसीका गुरुलक्ष्यगम्य उपाय यहां कहा गया है कि, प्रणवको धनु बनावे, आत्माको शर बनावे और ब्रह्मको लक्ष्य बनावे। फिर अप्रमत्त (अतिसावधान) होकर लक्ष्यको वेध करता हुआ ब्रह्मीभूत हो जाय। प्रणव क्या है ? इसको पूर्वकथित विज्ञानसे अनुभव करके प्रथम दशामें वर्णात्मक प्रणव, दूसरी दशामें ध्वन्यात्मक प्रणव, जो अक्षरोंमें लिखा नही जा सकता, ऐसे ध्वन्यात्मक मन्त्रको जपकर सिद्धि प्राप्त करे। तदनन्तर अन्तःकरणमें वाक्यातीत प्रणवकी धारणा करके उसका धनु बनावे। उस धनुमें जीवात्माका यथार्थ स्वरूप समझकर उसकी धारणासे उसे शरके स्थानमें स्थापित करे और जब जीवकी उपाधिको ऐसा भूल जाय, जैसा कि, बाणका चलानेवाला सब भूलकर केवल शरकी नोक और लक्ष्यमें ही तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार योगी अपनेको, जगत्को और जीवोपाधिको भूलकर जीवकी चेतनता और ब्रह्मकी चेतनताको एक समझ ले, तो ऐसे प्रणवसाधन द्वारा योगी अवश्य ही निर्वाण मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ १—१७ ॥

गयी है, ऐसा जानना चाहिये। इसके बाद ही उसका शरीर छूट जायगा। धूल अथवा कीचड़में पैर रखनेसे उसकी छापमें पार्ष्णि (पैरका अग्रभाग) जिसका खण्डित देख पड़े, वह सात माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता। गिद्ध, परेवा, काकोल, कौवा अथवा और कोई नीले रङ्गका मांस भक्षण करनेवाला पक्षी उड़कर जिसके मस्तक पर आ बैठे, उसकी छः मासमें ही मृत्यु हो जायगी। जिसे कौवोंकी झुण्ड अथवा धूलिवर्षणासे आघात प्राप्त हो, और अपने शरीरकी छाया उलटी देख पड़े, वह चार या पाँच मास ही जीता रहेगा। विना मेघके जो दक्षिण दिशाको बिजलीकी चमकसे प्रकाशमान देखे और सायं-कालमें इन्द्रधनुषका अवलोकन करे, वह दो या तीन मास ही जीयेगा ॥ ६-१० ॥ घी, तेल, आइना अथवा जलमें देखनेपर जिसे अपनी मूर्ति देख न पड़े, अथवा अपने देहको विना मस्तकके देखे, वह एक माससे अधिक जी नहीं सकता। हे नृपते ! जिसके शरीरसे मुर्देकी तरह दुर्गन्धि निकलना आरम्भ हो जाय, वह योगी पन्द्रह दिनसे अधिक नहीं जियेगा। स्नान करते ही जिसका हृदय और पैर सूख जायँ और पानी पीते ही फिर प्याससे गला सूखने लगे, वह दस ही दिन जी सकेगा। वायुके भितर जानेसे जिसके मर्मस्थान दुखने लगें और जलस्पर्श करते ही रोंगटे खड़े न हों, उसका मृत्युकाल निकट है, ऐसा जानना चाहिये। जो स्वप्नमें भालू अथवा बन्दरोंकी सवारीपर चढ़कर अपनेको दक्षिण दिशाकी ओर जाते हुए देखे, उसका मृत्युकाल बहुत निकट आ गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११-१५ ॥ स्वप्नमें जो यह देखे कि, लाल-काला वस्त्र धारण की हुई स्त्री हँसती गाती हुई उसे दक्षिण दिशाकी ओर ले जा रही है, वह अतीशीघ्र मृत्युमुखमें चला जायगा। स्वप्नमें जो महाबली और नंगे क्षपणकको अकेले हँसते हँसते जाता हुआ देख ले, उसका मृत्युकाल निकट आगया है, ऐसा जानना चाहिये। जो स्वप्नमें अपने शरीरको कीचड़की दलदलमें फँसा हुआ देखे, उसकी सद्योमृत्यु होगी। स्वप्नमें केश, अङ्गार, भस्म, सर्प और सूखी नदी जिसके दृष्टिगोचर हो, दस दिनके बाद ग्यारहवें दिन उसकी अवश्य मृत्यु होगी। स्वप्नमें जो यह देखे कि, कराल, विकटाकार, कालाभुशुण्ड पुरुष सशस्त्र आकर उसपर पत्थर बरसा रहा है, उसकी शीघ्र ही मृत्यु होगी ॥ १६-२० ॥ सूर्योदयके समयमें सामने, पीछे अथवा चारों ओर सियार भागते हुए जो देख ले, उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी। भोजनसे उठते ही जो पुनः क्षुधासे व्याकुल हो जाय और दाँतसे दाँत रगड़ने लगे, उसकी परमायु समाप्त हो गयी है, इसमें संदेह नहीं। बुझे हुए दीपककी दुर्गन्धि जिसे प्रतीत नहीं होती, जो दिनमें और रात्रिमें भयभीत हो जाता है और जिसे दूसरोंके नेत्रोंकी तारकाओंमें अपनी मूर्ति नहीं देख पड़ती, उसका जीवन समाप्त हो गया है, ऐसा जानना चाहिये। यदि अर्धरात्रिमें इन्द्रधनु और दिनमें तारागण देख पड़े, तो आत्मज्ञानी व्यक्तिको

जान लेना चाहिए कि, उसकी आयु समाप्त हो गयी है । जिसकी नाक टेढ़ी हो गयी हो, जिसके कान नतोन्नत (नीचे ऊँचे) हो गये हों और जिसकी बायीं आँखसे सदा पानी बहता हो, उसकी परमायु शेष हुई जानना चाहिये ॥ २१–२५ ॥ मुख तो लाल रहे, परन्तु जीभ काली पड़ जाय, तो बुद्धिमान् पुरुष समझ ले कि, उसकी मृत्यु निकट है । स्वप्नमें जो व्यक्ति ऊँट और गदहेकी सवारीपर चढ़कर अपनेको दक्षिण दिशाकी ओर जाता हुआ देखे, उसकी शीघ्र मृत्यु होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है । कानोंको मूँदकर अपना शब्द न सुन सके और जिसके नेत्रोंकी ज्योति लुप्त हो गयी हो, वह अविलम्बेन जीवनको त्याग देता है । जो स्वप्नमें देखे कि, वह दलदलमें फँसा है और उससे बाहर निकलनेका उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता तथा उठनेमें भी असमर्थ हो रहा है, उसकी परमायु हो गयी है, ऐसा जानना चाहिये । जिसकी दृष्टि ऊपरकी ओर चढ़ी हुई हो, आँखें लाल हो गयी हों, चञ्चलताके साथ इधर उधर घूरता हो, मुख पसीनेसे भरा हो और नाभिरन्ध्र विस्तृत हो गया हो, उसे इस देहको छोड़कर शीघ्र ही अन्य देहका परिग्रह करना होगा ॥ २६–३० ॥ जो स्वप्नमें देखे कि, वह अग्नि अथवा जलमें गिर गया है और उससे बाहर निकलनेमें असमर्थ हो गया है, उसका जानो कि, जीवन शेष हो गया है । जिसे दिनमें या रातमें भूतगण धर दबावें, निःसन्देह सात दिनके भीतर उसकी मृत्यु हो जायगी । जो अपने शुभ्र और स्वच्छ वस्त्रको लाल या काला देखे, उसका मृत्युकाल आसन्न है, ऐसा जानना चाहिये । जिसका स्वभाव विपरीत हो जाय अथवा जिसकी प्रकृति बदल जाय, यम और अन्तक उसके निकट आ जाते हैं । विचक्षण पुरुषोंको निश्चित रूपसे जान लेना चाहिये कि, जिसका अन्त समय समीप आ जाता है, वह संसारमें जो पूज्यतम व्यक्ति हैं अथवा जिनके सामने सदा विनीत भावसे रहना चाहिये, उन महानुभावोंका अपमान और निन्दा करने लगता है, देवताओंकी पूजा-अर्चा करनेसे विमुख हो जाता है, वृद्धों और ब्राह्मणोंकी भर्त्सना करता है, माता पिताका सत्कार और जामाताओंका आदर नहीं करता और योगी, ज्ञानी तथा अन्यान्य महात्माओंकी अवमानना करनेको उद्यत हो जाता है ॥ ३१–३७ ॥ हे महाराज ! योगियोंको यत्नपूर्वक जान रखना चाहिये कि, उक्त समस्त अरिष्ट संवत्सरके अन्तमें दिन अथवा रातमें फल प्रदान करते हैं । वे इन सब भीषणतम फलोंकी ओर भली-भाँति दृष्टि रक्खें । ये सब फल सहजमें ही जाने जा सकते हैं । हे नरेश्वर ! इन सब फलोंको अच्छी तरहसे जानकर उनके आगमनकालको सदा ध्यानमें रखना चाहिये । इस प्रकार योगी अपना अन्तिम समय जब जान ले, तब सम्पूर्ण रूपसे निर्भय स्थानका आश्रयकर योगाभ्यासमें निरत हो जाय । अरिष्टोंकी सूचना मिलते ही योगी मृत्युका भय छोड़कर और उस अरिष्टके स्वभावकी पर्यालोचना कर जिस समय अरिष्टके फलोदय

की सम्भावना हो, दिवसके उसी भागमें योगमें निमग्न हो जाय। उस दिनके पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, रात्रिकाल अथवा जिस समय अरिष्टकी सूचना मिली हो, उसी समयमें योगीको योगमें प्रवृत्त होना उचित है। जबतक वह (मृत्युका) दिन न आजाय, तबतक इसी तरह योगक्रियाका आचरण करना चाहिये ॥ ३८–४३ ॥ योगी उस समय आत्मवान् होकर भय-का त्याग कर दे और कालको जीत ले। फिर अपने निवासस्थानमें किंवा जिस किसी स्थानमें मनको स्थिरता प्राप्त हो, उस स्थानमें रहकर, तीनों गुणोंको वशमें करके योगयुक्त होकर ऐकान्तिक चित्तसे आत्माको परमात्मामें मिला दे और अन्तमें चिद्वृत्तिका भी विसर्जन कर दे। ऐसा करनेसे योगी इन्द्रियातीत, बुद्धिके अगोचर और वाणीसे परे परम निर्वाण पदको प्राप्त कर सकेंगे। हे अलर्क! मैंने यथार्थरूपसे यह सब तुमसे कहा है। अब जिस उपायसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, वह संक्षेपसे कहता हूं, सावधान होकर सुनो। चन्द्र-किरणोंके संयोगसे चन्द्रकान्त मणिसे जल निःसृत होता है, चन्द्रकिरणोंका संयोग हुए विना जल-निःसरण कदापि नहीं होता। यही योगीकी योगसिद्धिका उपाय है। अर्थात् योगमें मनको अभिनिविष्ट किये विना योगीके हृदयमें आनन्दरसका सञ्चार हो नहीं सकता, योगमें मनको लगानेसे ही उस आनन्दकी उपलब्धि होती है ॥ ४४–४८ ॥ सूर्यकिरणोंके संयोगसे ही सूर्यकान्तमणिके द्वारा अग्निका प्रादुर्भाव होता है, बिना सूर्यकिरणोंका संयोग हुए नहीं होता। योगीकी योगसिद्धिके सम्बन्धमें यह दूसरा दृष्टान्त है। अर्थात् योगी जबतक योगयुक्त न होगा, तबतक वह कदापि ब्रह्मसाक्षात्कार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। चिउंटी, चूहा, नेउला, छिपकिली और कपिञ्जल (परेवा) ये सब गृहस्वामीकी तरह घरमें रहते हैं। घरका ध्वंस होनेपर वे अन्य स्थानमें चले जाते हैं। उस घरके स्वामीकी मृत्यु होनेसे उन्हें कोई दुःख नहीं होता। हे राजेन्द्र! योगसिद्धिके सम्बन्धमें घरका यह तीसरा दृष्टान्त है। दीमक एक छोटासा जन्तु है; परन्तु वह अपने सूक्ष्म मुखसे मिट्टीके कण एकत्र करके ढेरके ढेर बना देता है। योगियोंके लिये यह उपदेश ग्रहण करने योग्य बात है। ४९–५२ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य आदि फल, पुष्प और पत्तोंसे युक्त वृक्षका विनाश कर देते हैं। यह देखकर, भी योगी सिद्धि लाभ करते हैं। रुरु नामक मृगके बच्चेके सींग एक तिलकके समान होते हैं; परन्तु बच्चेके साथही साथ वे सींग भी बढ़ने लगते हैं। यह देखकर भी योगी सिद्धिको प्राप्त करता है। द्रवपूर्ण पात्रको प्राप्तकर जब योगी पृथ्वीसे बहुत ऊंचा उठ जाता है और वहांसे जब अपने तुङ्ग अङ्गको देखता है, तब उसके लिये जानने योग्य क्या रह जाता है? अपने जीवनके लिये सर्वस्वका त्याग करनेकी जो मनुष्यकी चेष्टा होती है, उसे यथार्थ रूपसे जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है। जहाँ अपना निवास हो, वही घर है, जिससे प्राण धारण किया जाय, वही भोज्य है और जिससे अर्थ

प्राप्ति हो, वही सुख समझा जाता है। इसमें ममता करनेका प्रयोजन ही क्या है? जिस प्रकार साधनोंके द्वारा अभ्यर्थित साध्य साधा जाता है, उसी प्रकार योगीको भी बुद्धि आदिको परायी जानकर ब्रह्मकी साधना करनी चाहिये ॥ ५३-५८ ॥ जड़ने कहा,— अनन्तर महीपति अलर्क विनयावनत होकर अत्रितनय दत्तात्रेयको प्रणाम कर आनन्दपूर्वक कहने लगा कि, हे ब्रह्मन्! मेरे सौभाग्यसे ही शत्रुके द्वारा मेरा पराभव होकर इस प्रकारके अत्यन्त उग्रजीवन सन्देहकारी भयका मुझमें सञ्चार हुआ। यह भी सौभाग्यकी बात है कि, मेरे अपार बल (सैन्य), सम्पत्ति और पराक्रमका गर्व काशिराजके द्वारा खर्व हुआ। इसीसे मैं यहाँ आकर आपके सत्सङ्गका लाभ उठा सका। मेरे सौभाग्यसे ही मैं क्षीणबल हुआ, मेरे सौभाग्यसे ही मेरे भृत्यगण मारे गये और मेरे सौभाग्यसे ही मेरा खज़ाना खाली हुआ और मुझमें भयका सञ्चार हुआ। सौभाग्यसे ही आपके दोनों चरणोंका मुझे स्मरण हुआ। सौभाग्यसे ही आपके अमृतमय उपदेशोंको मेरे हृदयमें स्थान मिला और सौभाग्यसे ही आपके समागमका लाभ होकर मुझमें ज्ञानका उदय हुआ है। हे ब्रह्मन्! मेरे सौभाग्यसे ही आपने मुझपर दया दिखायी है। मनुष्यका भाग्य खुलनेपर अनर्थ भी उसके लिये अर्थके रूपमें परिणत हो जाते हैं। वर्तमान भीषण विपत्तिने आपसे मुझे मिलाकर मेरा उपकार ही किया है ॥ ५९-६५ ॥ हे प्रभो! हे योगीश्वर! जिनको दबानेके लिये मैं आपके पास आया, वे सुबाहु और काशिराज दोनों मेरे परम उपकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपके प्रसादरूपी अग्निके द्वारा मेरा अज्ञानरूपी पाप जलकर खाक हो गया है। जिससे फिर ऐसा दुःख प्राप्त न हो, अब ऐसा ही आचरण करनेका मैं

टीका:—यद्यपि इस अध्यायमें जो अरिष्टकथन किया गया है, वह केवल योगियोंके ही उपयोगी नहीं है; किन्तु सभी बुद्धिमान् व्यक्तियोंके उपयोगी है। परन्तु जब अभ्युदय और निःश्रेयसप्राप्ति दोनों ही धर्मका लक्ष्य है, तो अर्थ और कामके त्यागी होकर चाहे वह अभ्युदय, चाहे निःश्रेयस दोनोंके लिये या दोनोंमेंसे एकके लिये साधनमें जो प्रवृत्त हों; ऐसे साधक-मात्रको साधारण रूपसे योगी कह सकते हैं। क्योंकि योगसाधनके भेद अनेक हैं। संसारके वियोगका भय अर्थात् मृत्युका भय जैसा मनुष्यमात्रके लिये आत्यन्तिक भय समझा जाता है, वैसी ही लोकान्तरगमनकी सन्धि योगीके लिये बहुतही आवश्यकीय तथा सावधान होनेका समय माना जाता है। अतः सर्वसाधारणको चेतावनी देने और अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके पथमें चलनेवाले योगियोंको सावधान करनेके अभिप्रायसे यह अरिष्टकथन किया गया है। हमारे पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने मनुष्योंके कल्याणार्थ ऐसा कोई शास्त्र नहीं है, जिसका विस्तारसे अथवा बीजरूपसे आविष्कार न किया हो। आत्मानुसन्धान तथा आत्मज्ञानप्राप्तिके लिये वेदाविर्भावके अतिरिक्त नाना दर्शनशास्त्रों और पुराणान्तर्गत गीता आदि शास्त्रोंका प्रणयन उनके द्वारा इस प्रकारसे हुआ है कि, इस मृत्युलोकमें वैसा अन्यके द्वारा हो ही नहीं सकता। इसी कारण भारतवर्ष जगद्गुरु कहाता है। इसके अतिरिक्त लोककल्याणार्थ आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, अर्थशास्त्र, स्थापत्य शास्त्र, नीतिशास्त्र, उद्भिज्ज-स्वेदजादि नाना जीवशास्त्र, अङ्कशास्त्रके नाना भेद जो आजकल जगत्में प्रचलित हैं, रसायन शास्त्रके

प्रयत्न करता रहूंगा। हे ब्रह्मन्! आप ज्ञानदाता और महात्मा हैं। आपकी अनुमति मिलनेपर मैं गार्हस्थ्याश्रमका परित्याग करदूंगा यह आश्रम दुःखरूपी वृक्षोंके घने जंगलके समान है। दत्तात्रेयने कहा,—हे राजेन्द्र! अब तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल होगा। मैंने जो तुम्हें उपदेश दिया है, मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निर्मम और अहंकाररहित होकर उसके अनुसार तुम आचरण करो ॥६६-६६॥ जड़ने कहा,—दत्तात्रेयके इसप्रकार कहनेपर अलर्कने उन्हें प्रणाम किया और वह शीघ्रही अपने बड़े भाई सुबाहु और काशिराजके निकट उपस्थित हुआ। आलर्क महाबाहु काशिराजके निकट और सुबाहुके सम्मुख उपस्थित होकर हँसते हुए बोला, हे काशिराज! क्या आप राज्य लाभकी इच्छा कर रहे हैं? तो लो, इस समृद्धिशाली साम्राज्यका उपभोग करो, या सुबाहुको यह दे डालो अथवा जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा करो। काशिराजने कहा,—हे अलर्क! तुम विना युद्ध किये ही राज्यत्याग क्यों कर रहे हो? यह क्षत्रियधर्म नहीं है और तुम तो क्षत्रियधर्मविशारद हो। राजन्यगण अमात्योंको जीतकर और मरणभयको छोड़कर शत्रुको लक्ष्यकर उसपर बाणोंकी वर्षा करते हैं। वे शत्रुओंको हराकर सिद्धिके लिये और अभीप्सित अत्युत्तम भोगोंका उपभोग करनेके लिये बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं ॥७०-७५॥ अलर्कने कहा, हे वीर! मेरी पहिले इसी प्रकारकी वासना थी और मेरे मनकी भी ऐसी ही धारणा थी। अब मेरा भाव इससे ठीक विपरीत हो गया है इसका कारण सुनिये। मनुष्यमात्रका सङ्ग जिस प्रकार भौतिक है, उसी प्रकार उसका अन्तःकरण और गुणसमूह भी पञ्चमहाभूतोंकी एक समष्टि मात्र है। हे भूपते! केवल

मौलिक सिद्धान्त जो आजकल जगत्में प्रचलित हैं, इन सब लौकिक शास्त्रोंका आविष्कार उन्होंने अपनी योगशक्तिके द्वारा किया है। आदिमें बिना योगशक्तिके ज्योतिषादि शास्त्रोंका आविष्कार कदापि नहीं हो सकता। पीछेसे दृग्गणित द्वारा उसकी उन्नति की जा सकती है, परन्तु आदि अवस्थामें ग्रह, नक्षत्र और उनकी सूक्ष्म क्रियाओंका आविष्कार करना विना योगशक्ति हो नहीं सकता। इसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र और रसायनआदि शास्त्रोंका विज्ञान भी समझना उचित है। जगद्गुरु, त्रिकालदर्शी महर्षियोंने योगयुक्त बुद्धिसे जैसा इन लौकिक शास्त्रोंका आविष्कार किया है, वैसे ही पारलौकिक शास्त्रोंका भी किया है। मन्त्रयोगशास्त्र और मन्त्रकी विभिन्न शक्तियोंकी व्यवस्थाप्रणाली, हठयोग शास्त्र और उसकी विभिन्न साधनप्रणाली, जो अभी तक पश्चिमी साइन्टिस्ट समझ ही नहीं सकते, लययोगकी सूक्ष्म साधनप्रणाली, राजयोगकी लोकातीत विचारप्रणाली स्वरोदयशास्त्रकी सूक्ष्मता और अरिष्टशास्त्रका चमत्कार, ये सब आजकलके पदार्थवादियोंकी बुद्धिको चकित करनेवाले हैं। अरिष्टशास्त्रका विज्ञान बहुत ही रहस्यपूर्ण है। वैदिक दर्शनशास्त्र द्वारा यह सिद्धान्त अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि, ब्रह्माण्ड और मनुष्यपिण्ड दोनों समष्टि और व्यष्टि सम्बन्धसे एक ही है। जो वृहत् रूपसे शक्ति ब्रह्माण्डमें है, वही शक्ति बीजरूपसे पिण्डमें भी विद्यमान है। यही कारण है कि, ग्रह, उपग्रह आदिकी जो क्रिया ब्रह्माण्डमें होती है, उसकी प्रतिक्रिया मनुष्यपिण्डमें भी होती है। पौर्णिमातिथिके प्रभावसे समुद्रमें चन्द्रकी शक्तिके द्वारा जो उफान आता है, उसकी क्रिया मनुष्य पिण्डमें भी अनुभूत होती है। इसको

विच्छक्तिस्वरूप ब्रह्महो सत्य है। उसके सिवा और कुछ भी सत्य नहीं है। जिसे यह ज्ञान हो गया हो, वह शत्रु-मित्र, स्वामी-सेवक आदिकी कल्पना कैसे कर सकता है? हे राजन्! मैं आपके भयसे अत्यन्त दुःखित होकर दत्तात्रयकी शरणमें गया और उन्हींकी कृपासे इस समय ज्ञान प्राप्त कर चुका हूं। अब जितेन्द्रिय होकर भलीभांति सर्वसङ्ग परित्याग कर मनको परब्रह्ममें लगा दूंगा। ब्रह्मको जीत लेनेपर सबकुछ जीत लिया जा सकता है। जिस एकमात्र ब्रह्मके विना और कुछ भी विद्यमान नहीं है, उसीको साधनेका यत्न करना उचित है। जितेन्द्रिय होनेसे ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। हे राजन्! न मैं आपका शत्रु हूँ और न आप मेरे शत्रु हैं। सुबाहुने मेरा कुछ भी अपकार नहीं किया है, यह मैं अब बहुत अच्छी तरह जान गया हूं। अतः अब आप किसी अन्य शत्रुको ढूंढ़िये। अलर्कके इस प्रकार कहनेपर राजा सुबाहु अत्यन्त हर्षसे उठ खड़ा हुआ और "मेरा परम सौभाग्य है" कहकर उसने अपने छोटे भाई अलर्कका अभिनन्दन किया। फिर वह काशिराजसे कहने लगा,—॥७६–८३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अरिष्टकथन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

आजकलके पदार्थवादी पण्डित भी मानने लगे हैं। इसी उदाहरणसे और सब विषय भी समझने योग्य हैं। सूक्ष्म राज्यमें भी यही क्रिया विद्यमान है। एक मनसे दूसरे मनपर प्रभाव डालना दूसरे मनकी बात जान लेना, दूसरेको मूर्छित या अधीन करना, ये सब क्रियाएं आजकलके पदार्थवादी भी दिखा रहे हैं। हमारे पूज्यपाद महर्षियोंने तो प्राणमय कोष और मनोमय कोषकी क्रिया, श्राद्धकर्म और उपासना कर्म आदिके द्वारा लोकलोकान्तरमें पहुंचानेका दृढ़ नियम बना दिया है। इन सब दृष्टान्तोंसे यह सिद्ध होता है कि, समष्टि और व्यष्टि रूपसे स्थूल जगत् और सूक्ष्म जगत् दोनों ही एक सम्बन्धसे युक्त होकर ब्रह्माण्ड और पिण्डमें व्याप्त है। ऐसी दशामें कर्मकी क्रिया और प्रतिक्रियाका भी प्रभाव समष्टि और व्यष्टि पर होना स्वतःसिद्ध है। इसी समष्टि अथवा व्यष्टि प्रारब्धके तारतम्यानुसार जैसा फल होना सम्भव है, वैसा फलकी उत्पत्तिका पूर्वलक्षण प्रकाशित होना भी सम्भव है। काक, पक्षी, सियार आदिके द्वारा शकुन होना, छींक, शरीर स्फुरण आदिके द्वारा भविष्यत् इंगित होना भी इसी दृढ़ विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। इसी मौलिक कर्मविज्ञानके अनुसार ही स्वप्नदर्शन तथा नाना प्रकारके अरिष्ट दर्शनके द्वारा भविष्यत् सम्बन्धी फलाफल निर्णयमें सहायता मिलती है। पूर्वकथित अरिष्टसमूहके जो लक्षण कहे गये हैं, वे योगयुक्त आचार्योंने योगविद्याकी सहायतासे देखकर निर्णय किये हैं ॥ १—८३ ॥

चवालीसवाँ अध्याय।

सुबाहुने कहा,—हे नृपशार्दूल! जिसके लिये मैंने आपकी शरण ग्रहण की थी, वह मुझे सभी प्राप्त हो गया है। अब मैं जाऊंगा। आप सुखी रहैं। काशिराजने पूंछा,—हे सुबाहो! आप किस लिये यहां आये थे? और कौनसा प्रयोजन आपका सिद्ध हुआ है; वह कहिये। मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। अलर्कने आपके बाप दादाके विशाल राज्यको आक्रान्त कर लिया था, आपने मुझे प्रेरित किया कि, उसे जीत-कर राज्य आपको देदूं। तब मैंने आपके छोटे भाईपर आक्रमण कर राज्य आपको सौंप दिया। आप उसका अपने कुलकी रीतिके अनुसार उपभोग करें॥ १—४॥ सुबाहुने कहा,—हे काशीराज, जिसलिये मैंने यह उद्यम किया और आंपसे भी कराया, उसे आप सुनें। मेरा यह भाई तत्त्वज्ञानी होता हुआ भी क्षुद्र सुख भोगमें लवलीन था और मेरे दो बड़े भाई अपढ़ होते हुएभी ज्ञानी हैं। शैशव कालमें मेरी माने जिस प्रकार मेरे और दोनों बड़े भाइयोंके मुहंमें दूध डाला था, वैसेही कानोंमें ज्ञानभी डाल दिया। मनुष्यको जिन पदार्थोंका जानना उचित है, हे राजन्! माताने वे सब हम तीनों भाइयोंको बता दिये, किन्तु अलर्कको नहीं बताये। जिस प्रकार एकसाथ जाने वालोंमें एकके पीड़ित होनेपर अन्य सभी साधुओंको दुःख होता है, वैसेही अलर्कको देखकर हम लोग को दुःख होता था। भाई गृहस्थीके मोहमें फंसकर कष्ट पारहा था। हे नरेश्वर, इस देहके साथ भाईकी कल्पना की जाती है। इस लिये यह निश्चय कर कि, इसे दुःखसे वैराग्यकी भावना होगी, मैं उद्योगके लिये आपके आश्रयमें आया। उससेही इसे दुःख, दुःखसे वैराग्य और फिर ज्ञान उत्पन्न हुआ है। काम पूरा होगया, आपका कल्याण हो। मैं जाता हूं॥ ५-१२॥ हे पार्थिव! यह अलर्क मदालसाके गर्भमें रहकर उसका दूध पीकर अन्य स्त्रियोंके लड़कों की चाल न चले, यही सब सोचकर आपका आश्रय ग्रहण किया। मेरा सब काम अब पूरा होगया है। अब मैं फिर सिद्धिके लिये जाऊंगा। जो मनुष्य स्वजन, बन्धु और मित्रोंको कष्टमें पड़ा हुआ देखकर उपेक्षा करता है, मैं उसे विकलेन्द्रिय मानता हूं। हे नरेन्द्र! मित्र, स्वजन, और बन्धुओंके समर्थ रहते हुए यदि कोई मनुष्य कष्ट पाता है, तो वेही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे च्युत होते हैं; वे मनुष्य नहीं हैं। हे राजन्! यह महान् कार्य मैंने आपके ही संगसे किया है। अब मैं जाता हूं। हे सत्तम! आपका कल्याण हो, आप ज्ञानके भागी हों। काशिराजने कहाः—हे साधु! अलर्कका आपने बड़ा-भारी उपकार किया है। किन्तु मेरे उपकारमें आप मन क्यों नहीं लगाते? सज्जनोंका संग फल देनेवाला होता है, वह निष्फल कभी नहीं होता। इस लिये आपके संगसे मेरी उन्नति

होना ही उचित है ॥ १३—१९ ॥ सुबाहुने कहा,—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही चार पुरुषार्थ कहलाते हैं। उनमें धर्म, अर्थ और काम आपको प्राप्त हैं, केवल मोक्षका अभाव है। यह विषय आपसे संक्षेपमें कहता हूं; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। हे राजन्! मुझसे वह सुनकर और अच्छीतरह विचारकर अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कीजिये। हे राजन् "यह मैं हूं" "यह मेरा है" ऐसी ममता और अहंकारके वशीभूत आप न हों। धर्मका ही विवेचन करें, क्योंकि धर्मके अभावमें आश्रयहीन होना पड़ता है। मनमें भली भांति विवेचना कर यह जानना चाहिये कि, "मैं किसका हूं ?" ब्राह्म मुहुर्तमें उठकर भीतर और बाहर अपनी आत्माको देखिये। जो अव्यक्तसे लेकर प्रकृति पर्यन्त व्याप्त है, विकारसे शून्य है, अचेतन है और जो कहीं व्यक्त और कहीं अव्यक्त है, उसे आपको जानना चाहिये। फिर जाननेवाला कौन है, 'ज्ञेय क्या है' और 'मैं कौन हूं' यह समझिये। यह सब जाननेपर सभी विज्ञात हो जायगा। देहादि अनात्म वस्तुको आत्मा समझना और जो अपना नहीं है, उसीको अपना समझना यही मूर्खता है। वही मैं, लौकिक व्यवहारसे सर्वगत हूं। हे भूप! जिस विषयकी आपने जिज्ञासा की थी, वह सब मैंने कह दिया। अब मैं जाता हूं ॥ २०–२६ ॥ इसप्रकार काशिराजसे कहकर बुद्धिमान् सुबाहु चला गया और काशिराज भी अलर्कको सम्मानित कर, अपने नगरको गये। अलर्कने भी अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषेक कर सब सुखोंको छोड़कर सिद्धिके लिये बनको प्रस्थान किया। इसके बहुत दिनोंके बाद निर्द्वंद्व और निष्परिग्रह होकर और अतुल योगकी सम्पत्ति पाकर उसने परम निर्वाण-पदवी प्राप्त की। वह देखने लगा कि, देव, दानव और मनुष्योंके सहित यह समस्त जगत् गुणमय पाशोंसे बँधा हुआ नित्य ही मारा जा रहा है। लड़के, भतीजे, अपने-परायेसे ही यह पाश तैयार हुआ है। यह भिन्न भिन्न देख पड़नेवाला जगत् उसी पाशमें बंधा हुआ है। दुःखसे दीन हो रहा है और अज्ञानके महान पंकमें डूबा हुआ है, जिससे उद्धारका कोई उपाय नहीं। महामति अलर्कने अपनेको देखा कि, मैं गर्तको पार कर चुका हूं। तब उसने यह गाथा गायी कि, "मैंने पहले राज्योपभोग किया

टीका:—यह गाथा आर्य सभ्यता और वर्णाश्रमसदाचारके महत्वसे पूर्ण है। इस कारण इसके विज्ञानकी समालोचना करना आवश्यक है। अनादिसिद्ध आर्यसभ्यतामें नारीजातिको कैसा उच्च स्थान दिया गया है, उसका आदर्श महारानी मदालसाके चरित्रमें भलीभांति प्रतिफलित हुआ है। वेदों और शास्त्रोंका यथार्थ रहस्य न समझकर जो लोग वर्णाश्रम सदाचारपर वृथा दोषारोप करते हैं, यह कहते हैं कि, आर्यजातिकी सभ्यतामें नारीजातिपर अन्याय किया गया है, उनको यह मानना चाहिये कि, यह उनका भ्रम है। नारी जातिको आर्यसभ्यतामें ऐसा उच्च स्थान दिया गया है कि, पृथिवीकी अन्य जातिमें न होगा, न हो सकता है। आर्यसभ्यताकी मौलिक भित्ति नारीजातिकी पवित्रता, उसके सतीत्वकी तपस्याकी पराकाष्ठा, उसके सदाचार और उसकी ज्ञानगरिमापर निर्भर है, जैसा कि, इस चरित्रमें दिग्दर्शन कराया गया है। आर्यसभ्यता किस प्रकार काम और अर्थको गौण मानती है और धर्ममूलक काम और

यह बड़े दुःखकी बात है ! मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि, योगकी अपेक्षा और कहीं अधिक सुख नहीं है ॥२७-३३॥ जड़ने कहा,—हे तात ! मुक्तिके लिये तुम इस उत्तम योगका अनुष्ठान करो। इससे उस ब्रह्मको पाओगे, जिसके पानेपर फिर शोक नहीं करना पड़ेगा। फिर मैं भी जाऊंगा। मुझे यज्ञ और जपसे क्या प्रयोजन है ? कृतकृत्य पुरुषके कार्य केवल ब्रह्म प्राप्तिके लिये ही होते हैं। अतएव मैं आपकी आज्ञा लेकर, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हो, जिससे निर्वाण लाभ होता है, उस मुक्तिके लिये प्रयत्न करूंगा। पक्षियोंने कहा,—हे द्विज ! परम बुद्धिमान् जड़ने पितासे ऐसा कहकर और उनसे आज्ञा प्राप्त कर निष्परिग्रह व्रत धारण कर वहांसे प्रस्थान किया। उसके महामति पिताने भी क्रमशः वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर चतुर्थ (संन्यस्त) आश्रममें प्रवेश किया। चतुर्थाश्रम ग्रहण करने पर पिता अपने पुत्र (जड़) से मिला और गुणादि बन्धनोंसे छुटकारा पाकर उस समय उसे जो विशुद्ध बुद्धि प्राप्त हुई, उसके द्वारा उसने उत्तम सिद्धिको प्राप्त कर लिया। हे ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो प्रश्न किये थे, उनका मैंने विस्तारपूर्वक उत्तर दे दिया है। अब आप क्या सुनना चाहते हैं, वह कहिये ॥ ३४-४० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता-पुत्र-संवादात्मक जपोपाख्यान नामक चवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अर्थका सेवन करनाही उपादेय समझती है और कैसे धर्म और मोक्षको प्रधान मानती है, यदि इस चरित्रमें दिखाया गया है। धर्मका सर्वथा प्राधान्य रहनेपर भी मोक्षको किस प्रकार इस जातिके क्षत्रिय और ब्राह्मण और यहां तक कि, तपस्वनी नारी जातितक कैसे प्रधान लक्ष्य रूपसे मानते आये हैं, और उनके प्रत्येक आचारमें अध्यात्म लक्ष्यकी कैसी प्रधानता रक्खी गयी है, वह इन चरित्रोंसे प्रमाणिम होता है। गृहस्थ मात्रका पितृपूजा कैसा कर्तव्य कर्म है और पितृयज्ञ श्राद्धादि द्वारा मनुष्यका कर्म कैसे सुसम्पन्न होता है और श्राद्धोंमें कैसे उच्च विचार और कैसे आचार रखने चाहिये, यह विषय भी इन चरित्रोंमें विपद कर दिया गया है। इस क्षुद्र मृत्युलोकसे प्रेतलोक, नरकलोक और स्वर्गलोक आदि कितने विस्तृत हैं, देवताओं की कृपा और शक्तिपर यह मृत्युलोक कितना निर्भर करता है, सभ्य जातिमात्रको दैवी जगत्पर कैसा विश्वास रखना चाहिये, ये सब असाधारण विषय इन गाथाओंमें गाये गये हैं। वर्णधर्म और आश्रमधर्मके आचार समूहोंके माननेपर अपने आप कैसी दैवी सहायता होती है और अन्तमें आत्मज्ञान प्राप्त होकर वह व्यक्ति कैसे कृतकृत्य होता है, उसका दिग्दर्शन इसमें कराया गया है। आत्मज्ञान और मुक्ति प्राप्तिके लिये विषयोंसे मुंह फेरनेकी कैसी आवश्यकता है और विषयोंमें रहकर भी उन्नत सभ्य पुरुष या स्त्री किस प्रकार विषयकी कालिमासे अलग रह सकते हैं, वह भी इन चरित्रोंमें सुन्दर रूपसे वता दिया गया है। आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें योगकी प्रधानता, आत्माके स्वरूपको लक्ष्य करनेमें प्रथम दृश्यप्रपञ्चसे पुरुषकी स्वतन्त्रता और निर्लिप्तता कैसे अनुभव करने योग्य है, अविद्याके प्रभावसे उत्पन्न चिज्जडग्रन्थिरूपी जीवत्वसे कैसे आत्मज्ञानी व्यक्ति मुक्त हो सकता है और अविद्याकी ग्रन्थि, अस्मिताकी ग्रन्थि, रागद्वेषकी ग्रन्थि, और आभिनिवेशकी ग्रन्थिसे अपनेको छुड़ाकर किस प्रकार मायाके फन्देसे आत्मज्ञानी व्यक्ति अपनेको बचा सकता है और इस प्रकार प्रकृतिके राज्यमें रहता हुआ भी कैसे प्रकृतिसे अतीत रह संकता है, इन सब चिन्ताओंका बीज इन गाथाओंमें वर्णित है ॥१-४०॥

पैंतालीसवां अध्याय।

जैमिनिने कहा,—हे द्विजश्रेष्ठो! वैदिक कर्म दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा,—प्रवृत्तिकर्म और निवृत्तिकर्म। इसी विषयको आप मुझे समझाइये। अहो! पिताके प्रसादसे ही आपने ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है। इस ज्ञानके बलसे ही तिर्यक योनि प्राप्त होने पर भी आपका मोह छूट गया है। अब भी आपका मन सिद्धिलाभके लिये पहिलेकी तरह प्रवृत्त है। अतः आप धन्य हैं। विषयजनित मोह आपके मनको विचलित नहीं कर पाता। सौभाग्यसे ही महामति भगवान् मार्कण्डेयने आपके इतिवृत्तका वर्णन किया था, आप सब किसीके सन्देहोंको दूर कर सकते हैं। जो इस संकटमय संसारमें चक्कर काट रहे हैं, उनके भाग्यमें आप जैसे तपस्वियोंसे मिलना बहुत कम बदा रहता है ॥ १—५ ॥ आप ज्ञानदर्शी हैं। आपका सत्सङ्ग पाकर यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ, तो अन्यत्र कहीं उसके सिद्ध होनेकी सम्भावना नहीं है। प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी ज्ञान और कर्मकी विशुद्ध बुद्धि जैसी आपको प्राप्त हुई है, मेरी समझमें वैसी बुद्धि और किसीको प्राप्त नहीं हुई है। हे द्विजश्रेष्ठो! यदि मुझपर अनुग्रह करनेकी आपकी इच्छा हो, तो मैंने जो जिज्ञासा की है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये। आप यह बताइये कि, इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्की सृष्टि कैसे हुई है? प्रलयके समयमें इसका विलय कैसे हो जाता है? एक ही वंशसे देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिककी उत्पत्ति कैसे होती है? मन्वन्तर कैसे आविर्भूत होते हैं? इसके अतिरिक्त वंशसमूहका आनुपूर्विक विवरण, अनेक सृष्टियोंकी उत्पत्ति और उनका प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरोंकी स्थिति, पृथ्वीका संस्थान और परिमाण, गिरि, शैल, सरिता और वनोंका विवरण, भूलोक स्वर्गलोक और पाताललोकका वृत्तान्त, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कोंकी गति, इन सबकी प्रलय पर्यन्तकी बातें जाननेकी मेरी इच्छा है। यह भी सुननेकी मेरी इच्छा है कि, यह सब संसार जब प्रलयको प्राप्त होता है, तो अवशिष्ट क्या रह जाता है? ॥ ६—१४ ॥ पक्षियोंने कहा,—हे महर्षे! आपने हमसे अतुलनीय प्रश्न पूछे हैं। हम इनका विस्तारपूर्वक उत्तर देते हैं, आप सुनिये। मार्कण्डेयने यह सब विषय व्रतस्नात, शान्तशील, बुद्धिमान् ब्राह्मणपुत्र क्रौष्टुकिसे कहा था। वही हम आपको सुना देते हैं, आप श्रवण करें। हे प्रभो! आपने हमसे जो जिज्ञासा की है, वही जिज्ञासा क्रौष्टुकिने ब्राह्मणोंद्वारा उपासित महात्मा मार्कण्डेयसे।की क्षित हैं। जाज हम उन्हें आपको बताते हैं। थी। हे द्विजश्रेष्ठ! तब भृगुनन्दनने प्रसन्न चित्तसे जो उसे कहा था, वही हम, जो

जगत्कारण, पद्मयोनि पितामहके रूपमें इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, विष्णुके रूपमें स्थिति करते हैं और प्रलयकालमें रुद्रके रूपमें इस सबका संहार कर डालते हैं, उन जगन्नाथको प्रणामकर आपके निकट विस्तारपूर्वक कथन करते हैं, आप श्रवण कीजिये॥ १५-१६॥ मार्कण्डेयने कहा,—पूर्वकालमें अव्यक्तयोनि ब्रह्माके उत्पन्न होते ही उनके चारों मुखोंसे वेदों और पुराणोंका आविर्भाव हुआ। ऋषियोंने उन पुराणोंकी संहिताको विविध अंशोंमें और वेदोंको सहस्रों विभागोंमें विभक्त किया। उस महात्माके उपदेशोंके बिना धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ईश्वर भाव, इन चारोंकी सिद्धि होना सम्भव नहीं है। उसके मनसे सप्तर्षियोंका आविर्भाव हुआ। उन मानस ऋषियोंने सब वेदोंको ग्रहण किया और उसीके मनसे उत्पन्न हुए अन्यान्य आद्य ऋषियोंने पुराणोंको अपनाया। च्यवनने भृगुके निकट पुराणोंका अध्ययन कर अन्याय ऋषियोंमें उनका प्रचार किया। महात्मा ऋषियोंने वे सब पुराण दक्षको सुनाये। दक्षने ही हमें पुराण प्रदान किये हैं। तबसे वे हमारे पास सुर-

---

टीकाः—सृष्टि प्रकरण अति गहन है। सृष्टिके आविर्भावका रहस्य समझ लेनेसे हृदय प्रपञ्चका रहस्य समझनेका द्वार खुल जाता है। सनातनधर्मके वेदों और शास्त्रोंमें सृष्टिके चार मौलिक स्तर माने गये हैं। प्रथम ब्रह्मप्रकृति जब अव्यक्तसे व्यक्त हुई, उस समय जगन्नाथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक, सगुण-ब्रह्मके ईक्षणसे जो सृष्टि हुई, वह प्रथम प्राकृतिक सृष्टि कहलाती है। वह प्रकृतिके स्वभावसे ही होती है। ब्रह्माण्ड गोलक, जीववास-उपयोगी लोक, पर्वत, समुद्र आदिकी सृष्टि तब होती है। परमाणुसङ्घात यह सृष्टि है। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी त्रिमूर्तिका आविर्भाव होता है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह त्रिमूर्ति ही सगुण ब्रह्मके प्रतिनिधि और ईश्वर रूप हैं। उस समय भगवान् ब्रह्माके द्वारा ब्राह्मी सृष्टि प्रारम्भ होती है, यह द्वितीय सृष्टि है। तदनन्तर ब्रह्माके मानस पुत्र प्रजापतियोंके द्वारा जो देव, मनुष्य, चतुर्विध भूत-सङ्घ आदिकी विस्तृत सृष्टि होती है, वह मानस सृष्टि कहाती है। वह तृतीय है। उसके अनन्तर जो मनुष्य तथा चतुर्विध भूतसङ्घमें स्त्रीपुरुषशृंगारजात जो सृष्टि होती है, वह बैजी अथवा मैथुनी सृष्टि कहाती है। यह चतुर्थ है। पदार्थवादी गण केवल प्राकृतिक सृष्टि और मैथुनी सृष्टिका ही कुछ अंश अनुभव करते हैं। ब्राह्मी सृष्टि और मानस सृष्टिका रहस्य अन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगियोंके सिवा कोई अनुभव करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। वेदोंका आविर्भाव ब्राह्मी सृष्टि और मानस सृष्टिके समयमें ही होता है। इस कारण वेदों और पुराणोंकी अलौकिकता साधारण बुद्धिगम्य नहीं है। शास्त्रोंमें पांच प्रकारकी पुस्तकें कही गयी हैं। यथाः—ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, विन्दु और अक्षर, ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद और विन्दु ये चार पुस्तकें चिरस्थायी होती हैं। केवल अक्षरमयी पुस्तक जो अक्षरोंमें लिखी जाती हैं, उनकी रचना होती है और नाश भी होता है। ब्रह्माण्डके अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु अथवा महेश इनकी प्रेरणासे पवित्र पिण्डमें जो प्रेरणा रूपसे उत्पन्न होती है उससे प्रकाशित पुस्तकें ब्रह्माण्ड पुस्तक कहाती हैं। कल्पकल्पान्तरमें प्रकाशित होनेवाली ज्ञानराशि जिन मन्त्रोंके द्वारा प्रकाशित होती है और जो मन्त्र ऋषियोंको ज्योंके त्यों सुनायी देते हैं, वे नादमयी पुस्तकें हैं। वेद नादमयी पुस्तक है। श्रुतियां किसीकी रचीहुई नहीं हैं। वे आदि सृष्टिमें ज्योंकी त्यों सुनायी देती हैं। ये दोनों पुस्तकें त्रिमूर्तिसे सम्बन्ध रखती है। प्रथममें भावरूपसे प्रेरणा होती है और दूसरीमें सब शब्द यथार्थ रूपसे ऋषियोंके अन्तःकरणमें सुनाई देते हैं। वेदके भावार्थको स्मरण करके नित्य ऋषियोंकी कृपासे शक्तिप्राप्त महापुरुष जो ग्रन्थ

इनके प्रसादसे कलिकालमें पाप समूहोंका नाश हो जाता है ॥ २०-२५ ॥ हे मुने! हे महाभाग! पूर्वकालमें दक्षसे हमने जो कुछ सुना था, वह सब आपसे कहते हैं, आप सुनिये। जो जगत्के कारण हैं, जन्मरहित हैं, अव्यय हैं; जो चराचर जगत्के एकमात्र आश्रय और धाता हैं; जो परमपद स्वरूप हैं, जो सृष्टिस्थिति-प्रलयके कारण हैं, जो आदि पुरुष हैं, जो उपमा रहित हैं और जिनमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, उन धीमान् हिरण्यगर्भको प्रणाम कर हम अनुत्तम प्रपञ्चके रहस्यका भली भाँति वर्णन करते हैं। महत्से लेकर विशेष पर्यंत सभी भौतिक सृष्टि विकारोंके लक्षणोंका पञ्चविध प्रमाणों और सत्स्रोतके सहित सिलसिलेवार हम वर्णन करेंगे। हे महाभाग! यह भूतसृष्टि पुरुषके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण नित्य होती हुई भी अनित्यकी तरह कैसी अवस्थित है, उसका भी हम वर्णन करेंगे, आप सावधान होकर सुनिये ॥ २६-३१ ॥ जो अव्यक्तके नामसे अभिहित हैं, जिसे महर्षिगण सदसदात्मिका, नित्यसूक्ष्मा, प्रकृति कहते हैं, जो नित्य, अक्षय, अजर और अपरिमेय है, जो किसीका आश्रय लिये बिना ही अवस्थित है, जो गन्धविहीन, रूपविहीन, रसविहीन और शब्द-स्पर्शविहीन है; जो अनादि और अनन्त है; जो जगत्का उत्पत्तिस्थान है, जिससे तीनों गुण उत्पन्न हुए हैं, जो अविनाशी है, जो चिर विद्यमान और अविज्ञेय है और जो सभीका कारण है, वह प्रधान स्वरूप ब्रह्म ही सबसे पहिले विद्यमान रहता है और प्रलयके पश्चात् भी अखिल जगत्को सम्पूर्ण रूपसे परिव्याप्त कर स्थित रहता है। तीनों गुण परस्पर अनुकूल होकर अव्याहत रूपसे उसीमें अधिष्ठित रहते हैं। सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञके अधिष्ठानसे उन उन गुणोंके द्वारा सृष्टिकार्यका प्रारम्भ होनेपर प्रथम प्रधानतत्त्वका आविर्भाव होकर वह महत्तत्वको समाच्छन्न कर देता है। बीजको जिस प्रकार त्वचा आच्छन्न कर देती है, उसी प्रकार प्रधान भी महत्तत्वको आवृत कर लेता है। यह महत्तत्व तीन प्रकारका होता है।

प्रकाशित करते हैं, वह स्मृति कहाती है। यह बिन्दु पुस्तक है और नित्य ऋषियोंकी प्रेरणासे ज्ञान प्रकाशक जो पुस्तकें समय समयपर आविर्भूत होती हैं, वे पिण्ड पुस्तकें कहाती हैं। पिण्ड पुस्तकें दैवी और आसुरी दोनों प्रकारकी होती हैं। क्योंकि नित्य ऋषियोंका वास चतुर्दश भुवनोंमें ही है। बिन्दुपुस्तक और पिण्ड पुस्तक दोनोंका सम्बन्ध नित्य ऋषियोंसे है। ये चारों पुस्तकें अलौकिक हैं। और पांचवीं अक्षरमयी पुस्तक लौकिक और अलौकिक दोनों भावोंको धारण करनेवाली तथा नाशमान है। सृष्टिके आदि कालमें जैसे उस कल्पकी आवश्यकीय ज्ञानराशि श्रुतियोंके स्वरूपमें ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रकाशित होती है, उसी प्रकार पूर्व कल्पान्तरकी घटनावली पुराणरूपसे भावके द्वारा ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें आविर्भूत होते हैं। इसी कारण पुराणोंको भी नित्य कहा है। वेद शब्द और भाव दोनों प्रकारसे नित्य हैं और पुराणोंकी नित्यता केवल भावके द्वारा सिद्ध होती है। इसी कारण इस अध्यायमें वेदके साथ पुराणोंके आविर्भावका वर्णन किया गया है ॥ २०-२५ ॥

यथा,—सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥ ३२-३७ ॥ फिर महत्तत्वसे अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है। यह अहङ्कार तीन प्रकारका होता है। यथा,—वैकारिक, तैजस और तामस। तामस अहङ्कार ही भूतादिके नामसे अभिहित होता है। जिस प्रकार महत्तत्व प्रधान तत्त्वके द्वारा समाच्छन्न होता है, उसी प्रकार यह अहङ्कार भी महत्तत्वके द्वारा आवृत रहता है। उसीके प्रभावसे वह विकारको प्राप्त होकर शब्दतन्मात्रकी सृष्टि करता है। शब्दलक्षण आकाश इस शब्दन्मात्रसे ही उत्पन्न होता है। तामस अहङ्कारके द्वारा शब्दतन्मात्र आकाश समावृत्त हो जाता है। फिर निःसन्देह उसीसे स्पर्शतन्मात्रकी उत्पत्ति होती है। उससे स्पर्श गुणविशिष्ट महान् बलवान् वायु उत्पन्न होता है। शब्दमात्र आकाशके द्वारा स्पर्शमात्र वायु आवृत रहता है और उसीके विकारसे रूपमात्रकी उत्पत्ति होती है। वायुसे ही रूपगुण विशिष्ट ज्योतिका आविर्भाव होता है। ॥ ३८-४२ ॥ स्पर्शमात्र वायुके द्वारा रूपमात्र आवृत्त हो जाता है। फिर वह ज्योति विकृत होकर रसमात्रको उत्पन्न करती है। उसीसे रसात्मक जलका जन्म होता है। वह रसात्मक जल रूपमात्रके द्वारा आवृत्त हो जाता है। तदनन्तर रसमात्र जल विकृत होकर गन्धमात्रको उत्पन्न करता है और उसीसे गन्ध गुणविशिष्ट पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जिस पदार्थमें जो तन्मात्र हो, उसीके द्वारा उस पदार्थमें तन्मात्रता आ जाती है। इनका अन्य कोई वाचक न होनेसे इनको अविशेष कहते हैं। इस अविशेषके सम्बन्धसे वह शान्त, घोर या मूढ़ नहीं है। तामस अहङ्कारसे इस प्रकार भूततन्मात्रोंकी उत्पत्ति होती है। सत्वोद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहङ्कारसे एक साथही वैकारिक सृष्टि सम्प्रवर्तित होती है ॥ ॥ ४३—४८ ॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, दसों तैजस इन्द्रिय कहे गये हैं। ग्यारहवां इन्द्रिय मन है। ये ग्यारहों वैकारिक देवता कहकर अभिहित होते हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाकसे शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्धका बोध होता है, इस कारण ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय कहाते हैं। पाद, पायु, उपस्थ, हाथ और वाणी ये कर्मेन्द्रिय हैं। इनके द्वारा गति, मलमूत्र त्याग, आनन्द, शिल्प और वचन, इन कर्मोंकी निष्पत्ति होती है। शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रमें आविष्ट होकर द्विगुण वायुको उत्पन्न करता है सही, किन्तु वायुका विशेष गुण स्पर्श ही है। शब्द और स्पर्श, ये दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर अग्निका उत्पादन करते हैं। अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप, इन तीन गुणोंसे युक्त होता है ॥४९-५३॥ इसके अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप रसमात्रमें आविष्ट होकर चार गुणोंसे युक्त रसात्मक जलका सृजन करते हैं। अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गन्धमात्रमें समाविष्ट होकर उनके साहचर्यसे इस पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि, पांचों भूतोंमें पृथ्वीही—पांचों भूतोंसे युक्त होनेके कारण स्थूलाकार देख पड़ती है।

और यही कारण है कि, यह शान्त, घोर और मूढ़ कही जाती है। उक्त पांचों भूत परस्परमें समाविष्ट होकर परस्परको धारण किये हुए हैं। यह अनावृत समस्त लोकालोक भूमि (पृथ्वी) में ही सन्निविष्ट रहते हैं। नियतत्वके कारण ये सभी इन्द्रिय ग्राह्य 'विशेष' के नामसे भी अभिहित होते हैं। पहिले भूतोंके गुण पीछेके भूतोंमें अनुप्रवेश कर जाते हैं। दशेन्द्रिय, मन और पञ्चतत्व, ये सात पदार्थ परस्पर सम्मिलित न होकर जबतक अलग अलग रहते हैं, तबतक वे सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५४—५६ ॥ ये जबतक परस्पर मिलकर परस्परका अवलम्बन करते हुए भलीभांति संघटित रहते हैं और पुरुषका अधिष्ठान तथा प्रकृतिका अनुग्रह प्राप्त करते रहते हैं तबतक महत्से लेकर विशेष पर्यन्त एक अण्डकी सृष्टि करते हैं। जलका बबूला जिस तरह जलकाही आश्रयकर बढ़ता है वैसेही वह अण्डाभी जल तत्वका आश्रयकर वृद्धिङ्गत होता है। हे महामते! सलिलस्थ वह अण्ड सब भूतसे बड़ा होता है। ब्रह्मनामक क्षेत्रज्ञभी उसी प्राकृत अण्डमें बढ़ने लगता है। वही प्रथम शरीरी और पुरुष कहा गया है। वही भूत समूहका आदिकर्ता ब्रह्मा है। वही सबसे पहिले विराजमान रहता है। उसीने सचराचर त्रिलोकको व्याप्त कर रक्खा है। उस वृहत् अण्डसे ही मेरुकी उत्पत्ति हुई है। पर्वत उसके जरायु हैं और समुद्र उसका गर्भ सलिल है। देव, दानव मनुष्योंसे पूर्ण यह अखिल जगत् उसी अण्डमें प्रतिष्ठित है। द्वीपादि, पर्वत, सागर और समस्त ज्योतिष्क लोक उसीमें अवस्थित हैं ॥६०—६६ ॥ जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि भूतोंने उत्तरोत्तर दस गुणके हिसाबसे उस अण्डके बहिर्भागको परिवेष्टित कर लिया है। इसके अतिरिक्त उसी प्रमाणमें महत्तत्वने भी उस अण्डको घेर दिया है। प्रकृति उस महत्तत्वके साथ अण्डको आवृत किये हुये शोभा पाती है। इस प्रकार सात प्राकृत आवरणों द्वारा उक्त अण्ड समावृत रहता है। सब मिलाकर आठों प्रकृति परस्परको आवृत किये रहती हैं। इस प्रकृतिको नित्य स्वरूपा जानना चाहिये। आपसे हमने ब्रह्मा नामक जिस पुरुषका उल्लेख किया है, प्रकृतिमें ही समाया हुआ है। उसके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहता हूं, उसे श्रवण करो। पानीमें डूबा हुआ व्यक्ति पानीसे बाहर निकलते समय जिस प्रकार पानी और पानीसे उत्पन्न हुई वस्तुओंको दूर करनेमें समर्थ रहता है, उसी प्रकार ब्रह्मा भी प्रकृतिका विभु है। प्रकृतिही क्षेत्र और ब्रह्मा ही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका यही लक्षण है। इसी तरह क्षेत्रज्ञसे

टीकाः—यह भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म स्वरूप है। ब्राह्मी सृष्टिके समय अर्थात् जब एक ब्रह्माण्डमें जीवसृष्टि प्रारम्भ होती है, तब सगुण ब्रह्मके जो प्रतिनिधि सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होते हैं, त्रिमूर्तिमेंसे वह सत्ता ब्रह्माका अधिदैव स्वरूप है। भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म रूप ब्रह्माण्डके सब श्रेणीके पिण्डोंके अन्तःकरणोंमें

अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि पूर्वक सर्व प्रथम विद्युल्लताकी तरह आविर्भूत हुई है ॥ ६७—७२ ॥

इस प्रकार मारकण्डेय महापुराणका ब्रह्मोत्पत्तिनामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ है।

छयालीसवाँ अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! आपने अण्डकी उत्पत्ति और ब्रह्माण्डमें महात्मा ब्रह्माके जन्मकी कथा कह सुनायी। हे भृगुवंशोद्भव! प्रलयके अन्तमें सबका संहार होनेके उपरांत जब कि, सृष्टिका कुछ भी अवशेष नहीं रहा, तब पुनः पञ्च महाभूतोंकी कैसे उत्पत्ति हुई, यही अब आपसे सुननेकी मेरी अभिलाषा है। मार्कण्डेय बोले,—जब तक यह विश्व प्रकृतिमें विलीन रहता है, उसी अवस्थाको विद्वान् लोग प्राकृत प्रलय कहते हैं। प्रकृतिके आत्मामें अवस्थित रहने पर समस्त सृष्ट पदार्थ संहारको प्राप्त होते हैं। जब तक प्रकृति और पुरुषका सा धर्म्य सम्बन्ध रहता है, तब तक सत्त्व और तमस् दोनों गुण साम्यवस्थामें रहते हैं। तब तक दोनोंमेंसे किसीकी अधिकता अथवा न्यूनता नहीं रहती। दोनों परस्पर समभावसे युक्त होते हैं ॥ १—५ ॥ तिलमें जैसा तेल अथवा दूधमें घी रहता है, वैसा ही रजोगुण सत्त्व और तमस्में मिला हुआ रहता है। सर्वेश्वर ब्रह्माकी परमायुका काल दो परार्ध वर्ष है। उसका दिनमान और रात्रिमान समान रहता है। वह जगत्का आदि पुरुष है। उससे पहिलेका कोई नहीं। वह सबका कारण, अचिन्त्यात्मा; परमेश्वर और क्रियासे अतीत है। मूर्तिमान् योगस्वरूप वही जगत्पति परमेश्वर प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करता है। मदगर्व अथवा वासन्तिक वायु जिस प्रकार नवयुवतियोंके अन्तःकरणोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध (चंचल) कर देता है, उसी प्रकार योगमूर्ति ब्रह्मा भी प्रकृति और पुरुषको प्रक्षुब्ध करता है ॥ ६—१० ॥ प्रकृतिके क्षुब्ध होनेसे वह ब्रह्मा-नामधारी देवता उक्त अण्डकोषसे बाहर निकल आता है। इसी विषयको मैं आपको समझाता हूं। वह प्रकृतिको प्रथम प्रक्षुब्ध कर और उसका पति बनकर

व्याप्त है। उनका अधिदैव स्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा सृष्टिकार्य करता है और उनका अधिभूत रूप ब्रह्मलोकमें अवस्थित है। ये तीनों ब्रह्माके अवस्था विशेष हैं ॥ ६७—७२ ॥

टीका :—यह भगवान् ब्रह्माजीके अध्यात्म स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाला विज्ञान है। यहां प्रकृति और पुरुषका जो वर्णन है, वह चिज्जड़ ग्रन्थि रूपी प्रकृति और पुरुष है, ऐसा समझना चाहिये। नहीं तो परमपुरुष सदा निर्लिप्त और विकाररहित है। और यह विषय ब्रह्मसृष्टिका है ॥ ६—१० ॥

स्वयं प्रक्षुब्ध होता है। ऐसे ही सङ्कोच और विकाशके द्वारा वह प्रकृति रूप बन जाता है। वह जगत्योनि निर्गुण होने पर भी उक्त प्रकारसे आविर्भूत होकर और रजोगुणका अवलम्बन कर ब्रह्माके रूपमें परिणत होता है तथा सृष्टिकार्य करने लगता है। ब्रह्माके रूपमें वह सृष्टिकी उत्पत्ति करता है। फिर सत्वगुणकी अधिकता होनेसे वही विष्णुका रूप धारण कर न्यायानुसार प्रजाका रक्षण करता है। अनन्तर तमोगुणका उद्रेक होने पर रुद्र रूप धारण कर समस्त विश्वका संहार करके सो जाता है। इस प्रकार वह निर्गुण होने पर भी सृष्टि, स्थिति और प्रलय कालमें सत्व, रज और तमोगुणके कार्य करता रहता है ॥११—१५॥ सब किसीका उत्पत्तिस्थान, सर्वव्यापी वही ईश्वर इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य करता है, इसीसे उसके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीन नाम हो गये हैं। वह ब्रह्माके भावसे समस्त लोकोंका सृजन, विष्णु भावसे उदासीनता पूर्वक पालन और रुद्र भावसे निधन करता है। स्वयम्भूकी ये तीन अवस्थाएँ हैं। ब्रह्मा ही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्वगुण हैं। ये तीनों देवता तीन गुणोंके रूपमें निपुणतासे परस्परका आश्रय कर विराजते हैं। क्षणमात्र भी इनका परस्पर वियोग नहीं होता और मुहूर्त भर भी ये एक दूसरे को नहीं छोड़ते ॥ १६—१९ ॥ इस प्रकार जगत्के आदि देवोंके भी देव चार मुखवाले ब्रह्माजी रजोगुणका अवलम्बन कर सबकी उत्पत्तिका कार्य करते हैं। वे ही हिरण्य गर्भ, आदि देव और एक प्रकारसे अनादि भी हैं। वे ही भूपद्मके कोषमें विराजमान होकर सबसे पहिले आविर्भूत होते हैं। उन महात्माकी परमायु ब्राह्ममानसे सौ वर्षोंकी होती है। उसका हिसाब कहता हूँ, वह समझ लें। पन्द्रह निमिषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तका मानवोंका एक अहोरात्र तथा तीस अहोरात्र अथवा दो पक्षोंका एक महीना होता है ॥ २०—२४ ॥ छः महीनेका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। दो अयनोंमें एक दक्षिणायन और दूसरा उत्तरायन कहाता है। मानवोंके एक वर्षका देवताओंका एक अहोरात्र होता है उत्तरायन देवताओंका दिन और दक्षिणायन रात है। दिव्य परिमाणसे बारह सहस्र वर्षोंमें सत्यादि चार युग हो जाते हैं। अब चारों युगोंका विभाग कहता हूं, वह सुनो। दिव्य चार सहस्र वर्षोंका सत्ययुग होता है। चार चार सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल और सन्ध्यांश माना गया है। तीन सहस्र दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग और तीन तीन सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांश होता है। दो सहस्र दिव्य वर्षोंका द्वापरयुग और दो दो सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांस समझना चाहिये। कलियुगका परिमाण दिव्य एक सहस्र वर्षोंका है और उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांश एक एक सौ

वर्षोंका कहा गया है ॥२५—३०॥ इस प्रकार विद्वानोंने चार युगोंका विभाग देवताओंके बारह सहस्र वर्षोंमें किया है । इसका सहस्र गुणा करनेसे जो संख्या होगी, उतने वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है । हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके इस एक ही दिनमें यथा विभाग चौदह मनु आविर्भूत होते हैं । सहस्रों वर्षोंमें उनके कालका विभाग किया जाता है । इन्द्रादि देवता, सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्र राजन्यगण मन्वन्तरके साथही उत्पन्न होते और उसी क्रमसे अन्तर्हितभी हो जाते हैं । कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगोंका एक मन्वन्तर होता है । मनुष्योंके वर्ष मानसे उसका हिसाब कहता हूं, सुनो । तीस करोड़ सड़सठलाख बीस हज़ार मानव वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है । अब दिव्य वर्ष मानके हिसाबसे भी समझलें कि, आठसौ बावन हजार दिव्य वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है ॥ ३१—३७ ॥ इस कालको चौदह गुणा करनेसे ब्रह्माका एक दिन होता है । हे ब्रह्मन ! उस ब्राह्मदिनके अन्तमें जो प्रलय होता है, विद्वज्जन उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, ये सभी नश्वर (नाशमान्) हैं; केवल महर्लोक विद्यमान रहता है । प्रलय कालमें उत्पन्न होनेवाले तापसे बचनेके लिये महर्लोकवासी जन लोकमें चले जाते हैं । तब त्रिभुवन एक समुद्रके रूपमें परिणत हो जाता है । ब्रह्माजी रातमें सो जाते हैं । ब्रह्माके दिनका जितना परिणाम है, उतनाही रातका भी । रात बीत जानेपर फिर सृष्टिक्रिया आरम्भ होती है । इस प्रकार तीनसौ साठ दिनोंमें अर्थात् सात सौ बीस प्रलयोंके हो जानेपर ब्रह्माका एक वर्ष होता है । ऐसे सौ वर्षोंको फिरसे सौगुणा करनेसे जो संख्या होती है, उसे पर कहते हैं । ऐसे पचास वर्षोंका एक परार्द्ध कहाता है । हे द्विजोत्तम ! इस समय ब्रह्माका एक परार्द्ध बीतचुका है । उसीके अन्तमें पाद्म नामक महाकल्प हुआ था । हे द्विज ! अब दूसरा परार्द्ध चल रहा है । इसीको बाराह कल्प कहते हैं । यही प्रथम कल्प माना जाता है ॥ ३८—४४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणका ब्रह्मायुः परिमाण नामक छयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

टीकाः—ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें तीनो अध्यात्मरूपसे सगुण ब्रह्मही होने परभी इनका अधिदैव और अधिभूत रूप पृथक् पृथक् है । ये सबसे बड़े देवपदभी हैं । यम, इन्द्र मनु आदिभी ऐसेही देवपद हैं । वे सब देवपद स्थायी हैं । परन्तु उनमें व्यक्ति बदला करती है । इसी कारण ब्रह्मा, वष्णु, रुद्रकी भी आयु और उनकी रात्रि दिवस स्वतन्त्र स्वतन्त्र रूपसे शास्त्रोंमें वर्णित है । जिसका वर्णन आगे आवेगा । मनु आदि देवताओंकी भी आयु ऐसेही निर्णीत है । अवश्यही उनके पद स्थायी हैं । भगवान् ब्रह्माकी रात्रिमें जो प्रलय होता है, उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । इसी प्रकार विष्णु और शिवकी रात्रिमें भी प्रलय होता है । उसका वर्णन अनावश्यक होनेसे शास्त्रोंमें नहीं आया है । कहीं कहीं उसका इंगित मात्र है । जैसा कि, विष्णु पुराणमें विष्णुरात्रिका ऊल्लेख है । भगवान ब्रह्माके सम्बन्धसे प्रलयका रहस्य समझने पर ज्ञानार्जनके लिये यथेष्ट है ॥ ३१—३७ ॥

सैंतालीसवां अध्याय ।

—— *०* ——

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि कैसे की, यह मुझे बताइये । मार्कण्डेय बोले,—हे ब्रह्मन् ! जगत्कारण अनादि भगवान्ने यह स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् कैसा निर्माण किया, यह मैं आपसे कहता हूं । पाद्म नामक प्रलयके अन्तमें अर्थात् पाद्मकल्प बीत जानेपर सत्वगुणके द्वारा उद्रिक्त हुए प्रभु ब्रह्माने जागकर क्या देखा कि समस्त भुवन शून्य हो रहे हैं । उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूप नारायणके सम्बन्धमें उन्हें इस बातका स्मरण हुआ कि, जलका ही प्रतिशब्द नार है । उनमें जिनका शयनस्थान (अयन) है, वे ही नारायण कहे गये हैं ॥१—५॥ नारायणने जागृत होकर अनुमान किया कि, इसी जलमें पृथ्वी निमग्न हो रही है । अतः उसका उद्धार करनेके लिये पूर्व पूर्व कल्पोंमें जिस प्रकार उन्होंने मत्स्य, कूर्मादि अवतार धारण किये थे, उसी प्रकार वेदयज्ञमय दिव्य वराहका अवतार धारण कर जलमें प्रवेश किया । सर्वगामी जगत्पतिने पातालसे पृथ्वीको उबारकर जलपर स्थापन किया । विशाल देह होनेके कारण वह पृथ्वी जलमें डूबी नहीं, किन्तु बड़ी नौकाकी तरह जलपर तैरने लगी । यह देखकर जनलोकमें रहनेवाले सिद्धोंने जगत्कारण परमात्माके गुणानुवाद गाये । फिर पृथ्वीको समतल करके पहिले पर्वतोंकी सृष्टि की । इस प्रकारकी पहिली सृष्टिको संवर्तक नामक अग्नि जलाने लगा । उस अग्निके तापसे सब पर्वत विशीर्ण कलेवर होकर समुद्रमें निमग्न हो गये । उधर वहांका जल भी वायुके द्वारा खौल उठा; जिससे जहां जहां पर्वत निमग्न हुए थे, वहीं वे अचल हो गये । फिर जितनी पृथ्वी थी, उसका सात द्वीपोंमें विभाग कर भूर्लोकादि चार लोक बना दिये गये । पूर्व पूर्व कल्पोंकी तरह सृष्टि विषयक चिन्ता करनेसे तमोमय तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र नामक पांच विद्याओंका आविर्भाव हुआ ॥ ६—१५ ॥ ऐसी चिन्तासे ही जो

टीकाः—यह सृष्टिकी मृत्युलोकके चतुर्विध भूत संघकी सृष्टिसे पहिली अवस्था है । उस समय पृथ्वी मनुष्य वासोपयोगी नहीं बनी थी इसको पदार्थवादी साइन्स शास्त्रके विद्वान् भी अनुमान करते हैं और इसके विषयमें कुछ कहते भी रहते हैं ॥ ६—१० ॥

टीकाः—यह दैवी सृष्टिका विषय है क्योंकि ये चारलोक दैव जगत्से सम्बन्ध रखते हैं । उसके बाद यह पृथ्वी जीव वासोपयोगी बननेपर चतुर्विध भूतसंघोंकी सृष्टि हुई थी जिसका वर्णन आगे आता है ॥ ॥ ११—१५ ॥

वेरोक टोक सृष्टि हुई, वह पांच प्रकारसे ठहर गयी। वह संघटित सृष्टि पर्वतोंके ही रूपमें थी; किन्तु उसके भीतर-वाहर अन्धकार ही था। वह सृष्टि नग (पर्वत) प्रधान होनेसे मुख्य सर्ग नामसे प्रसिद्ध हुई। इस सृष्टिसे काम नहीं चलेगा, यह जानकर वे फिर दूसरी सृष्टिकी कल्पना करने लगे। तिर्यक् प्रवृत्तिको तिर्यक् स्रोत कहते हैं। सृष्टिचिन्ता करते करते वह तिर्यक् स्रोत वह निकला; जिससे अट्ठाईस प्रकारके तमोगुण प्रधान, अवोध विपथगामी, आज्ञानान्ध, अहङ्कार विशिष्ट और अहङ्कार में ही डूबे हुए पशु आदिकी उत्पत्ति हुई। उनके भीतर आकाश था और वे परस्परको आवृत करके रहते थे ॥ १६—२० ॥ इस सृष्टिको भी निकम्मी जानकर वे फिर चिन्ता करने लगे। इससे ऊर्ध्वपथगामी सात्विक स्रोत आवाहित होने लगा। इस प्रवाहसे सुख प्रीति विशिष्ट, अन्तर्वहिः प्रकाशित, तुष्टात्मा प्रकट हुए। इसीको देवसर्ग कहते हैं। इस सृष्टिको देखकर ब्रह्माको वहुत ही प्रसन्नता हुई। फिर वे पुनः उत्तम साधकोंकी सृष्टि करनेकी चिन्ता करने लगे। तव यथार्थ चिन्तासे युक्त ब्रह्माके मनोवलसे अव्यक्तके द्वारा अर्वाक् स्रोता नामक साधकोंकी सृष्टि हुई। ये सव साधक अर्वाक् भावमें स्थित होनेके कारण इन्हे अर्वाक् स्रोता कहा जाता है ॥ २१--२५ ॥ उन्हींसे तमो रजो गुणशाली, अन्तर्वहिः प्रकाशपूर्ण, दुःखोंसे घिरे हुए और आवागमनके चक्रमें घूमने वाले साधक मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। पांचवी सृष्टिका नाम अनुग्रह है। विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टिके रूपसे वह चार भागोंमें विभक्त है। बीते हुए और वर्तमान सव विषय उसे अवगत-रहते हैं। भूतादि और सव भूतोंकी सृष्टि छठी सृष्टि कही गयी है। इस सृष्टिमें सभी परिग्रह करने वाले, भलीभांति वटवारा करनेमें निपुण, प्रेरणाकुशल और कुत्सित स्वभा-वके होते हैं। इन्हींको भूतादिक कहते हैं ॥ २६—३० ॥ प्रथमही जिससे ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है, वह महत् सृष्टि कहलाती है। ब्रह्माके अंशसे हुई सृष्टि दूसरी है। उसे भूतसर्ग कहते हैं। इन्द्रिय सम्वन्धसे होनेवाली वैकारिक सृष्टि तीसरी है। वुद्धिपूर्वक की हुई यह सृष्टि प्राकृत सृष्टि है। चौथी मुख्य सृष्टिके नामसे अभिहित होती है। स्थावरादिकी सृष्टिही मुख्य सृष्टि है। पूर्वोक्त योनिरूपी तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है। ऊर्ध्व स्रोतकी जो

टीका—पहिले केवल जड़ सृष्टि अर्थात् पर्वतादिकी सृष्टि होनेसे वहां जीवत्व न रहनेके कारण भीतर और वाहर अन्धकार था। उसके अनन्तर जीवधारा प्रारम्भ होनेपर जो सृष्टि हुई, उसमें चित्सत्ताका सम्बन्ध रहनेके कारण वाहर तो अन्धकार था, पर भीतर प्रकाश हो गया। गम्भीर और अलौकिक सृष्टि विज्ञानको समझानेके लिये इससे अच्छा विवेचन और क्या हो सकता है? पुराण शास्त्र वेदके भाष्य ग्रन्थ हैं। इन्हीं सब वर्णनोंसे उसका दृढ़ प्रमाण मिलता है पिण्ड तीन प्रकारके होते हैं। एक सहज पिण्ड, दूसरे देव पिण्ड और तीसरे मानव पिण्डकी। यह सहज पिण्डकी सृष्टिका वर्णन है ॥ १६-२० ॥

छठी सृष्टि है, उसे देवसर्ग कहते हैं। उसके अनन्तर अर्वाक् स्रोतसे उत्पन्न हुई सातवीं मानवी सृष्टि है। अनुग्रहसृष्टि आठवीं है और वह तामसिक तथा सात्विक भेदसे दो प्रकारकी होती है। इन आठ प्रकारकी सृष्टियोंमें पहिली तीन प्राकृतसृष्टि और अन्तिम पांच वैकृतसृष्टि मानी गयी हैं। कौमार नामक नवम सृष्टि होती है। सब मिलाकर प्रजापतिकी नौ प्रकारकी सृष्टि वर्णित हुई है ॥ ३१—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका प्राकृत वैकृत नामक सैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीका—यह जो सृष्टिका वर्णन हुआ, वह पूर्व कथित चारों प्रकारकी सृष्टिसे सम्बन्ध रखता है। प्राकृतिक सृष्टि, जो ब्रह्माजीके प्रकट होनेसे पहिले जगज्जननीके लीलामात्रसे उत्पन्न होती है, उस सृष्टिका अन्तिम विवरण भगवान् ब्रह्माके प्रकट होनेके अनन्तर मुख्यसर्ग नामसे अभिहित हुआ है। परन्तु भगवान् ब्रह्माजीके प्रकट होनेके अनन्तर जो नौ भेद सृष्टिके किये हैं, उसमें इसका स्थान चौथा है, ऐसा समझना होगा। भगवान् ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके साथ ही महत्सृष्टि होती है। उस समय विराट्का अन्तःकरण अर्थात् एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण बन जाता है। महत्व उसका उपादान है और ब्रह्मा उसके अधिदैव हैं। उसके अनन्तर सनकसनन्दनादि पूर्णावयव देवताओंकी सृष्टि और तदनन्तर प्रजापति नामक देवताओंकी सृष्टि, उनके द्वारा मानस सृष्टिका विस्तार और तदनन्तर स्त्रीपुरुष मैथुनजन्य वैजी सृष्टिका विस्तार, इस प्रकारसे सृष्टिका विस्तार हुआ था। उसीको यथाक्रम न गिनाकर उसकी श्रेणी विभाग करके यह नौ प्रकारकी सृष्टि बताई गई है। उसका संक्षिप्त समाधान यह है। महत् सृष्टि चित्सत्ताके संबंधसे अलौकिक भावयुक्त है। इसी तरह चौथी मुख्य सृष्टि जीवभावसे रहित है। इसकारण इन दोनोंसे तीन प्रकारके पिण्डोंका सम्बन्ध नहीं बांधा जा सकता। बाकी सात सृष्टियोंमें नाना पिण्डोंका सम्बन्ध समझना उचित है। दूसरी ओर महत् सृष्टि, भूत सृष्टि और वैकारिक सृष्टि ये तीनों सहज कर्मके अधीन हैं और बाकी सृष्टियां ऐश और जैव कर्मके अधीन हैं। जब प्रथम स्थूलब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, उस समय प्रकृतिके अव्यक्तअवस्थासे व्यक्त अवस्था होते समय और जीववासोपयोगी लोककी भित्तिकी स्थापना होते समय परमाणुओंके आकर्पणसे जो स्थूल जीवपिण्डरहित सृष्टि हुई, वह अवश्य ही जड़सृष्टि कहावेगी और वह मुख्य सृष्टि है, यह मानना ही पड़ेगा। तदनन्तर प्रकृतिसे आलिङ्गित पुरुषरूपसे जो सगुणब्रह्मके सृष्टिकर्तारूपका अनुभव है, वही भगवान् ब्रह्माके प्रकट होनेकी अवस्थासे महत्सृष्टिका सम्बन्ध विराट्देहसे दिखाया गया है। कौमारसृष्टि पूर्णावयव परमहंसरूपी सनकसनन्दनादिकी सृष्टि और तदनन्तर भगवान् ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न प्रजापतियोंके द्वारा भूतसृष्टि, देवलोककी दैवीसृष्टि, अनुग्रहसृष्टि आदि सब देवपिण्डकी सृष्टियां हैं। चतुर्विध भूतसंघ तिर्यक् सृष्टि आदि सहजपिण्डकी सृष्टियां हैं और मनुष्यसृष्टि मानवपिण्डकी सृष्टि है। सृष्टिकी आदि अवस्थामें सब भूत तथा तीनों पिण्डोंकी सृष्टि मानसिक बलसेही प्रकट हुई थी। उसके अनन्तर वैजी सृष्टि आरम्भ हुई है। इस प्रकारसे समझनेपर गम्भीर सृष्टिप्रकरणका रहस्य समझमें आ सकेगा। पदार्थविद्याके सेवी इन सब सृष्टियोंका रहस्य समझ नहीं सकते। क्योंकि वे केवल परमाणुसंजात मुख्यसृष्टिके अनुसन्धानमें ही प्रवृत्त रहते है ॥ ३१—३६ ॥

अड़तालीसवां अध्याय।

——०*०——

क्रौष्टुकि ने कहा,—हे भगवन्! आपने जो सृष्टिप्रकरण सुनाया, वह अति संक्षिप्त है। अतः देवता आदिकी उत्पत्तिका विषय विस्तारके साथ कहिये। मार्कण्डेयने कहा,—हे ब्रह्मन्! पूर्व जन्मोंके शुभाशुभ कर्मोंके कारण ही पुनर्जन्म होता है। कर्मबद्ध देवताओंसे लेकर स्थावरतककी सब चतुर्विध प्रजा प्रलयकालमें जब विनष्ट हो जाती है, तब उसकी पुनः सृष्टि करनेकी ब्रह्माजी इच्छा करते हैं। फिर वे देवता, असुर, पितृगण और मनुष्य इन चारोंकी सृष्टि करनेकी कामनासे अपना अंश जलमें निक्षिप्त करते हैं। सृजनकी इच्छा रखनेवाले प्रजापतिके तमोगुणका उद्रेक होनेसे पहिले उनकी जङ्घाओंसे असुरोंकी उत्पत्ति होती है। उन्हें वे तमोगुणात्मक शरीर प्रदान करते हैं। वह शरीर जब व्यक्त हो जाता है, तब रात्रिके नामसे ख्यात होता है। फिर ब्रह्मा दूसरा शरीर धारण कर बड़े प्रसन्न होते हैं, तब सत्वगुणका उद्रेक होकर उनके मुखसे सत्वगुणविशिष्ट देवगण उत्पन्न होते हैं और उन्हें वे सात्विक शरीर प्रदान करते हैं। जो सत्वगुणयुक्त शरीर वे देते हैं, उसीको दिवस कहा जाता है। फिर सत्वगुणयुक्त शरीर धारण कर वे पितरोंको उपन्न करते हैं। वह शरीर उन्हींको दे डालने पर दिन रातके बीचकी सन्ध्याके रूपमें परिणत हो जाते हैं। अन्तमें रजोगुणात्मक एक नूतन शरीर धारण करते हैं। वह शरीर रजोगुणविशिष्ट मनुष्यसृष्टि करता है और उसीको ज्योत्स्ना कहते हैं। यह ज्योत्स्ना रात्रिके अन्त और दिनके आरम्भमें प्रादुर्भूत होती है॥ १—१२॥ देवोंके देव ब्रह्माके उक्त सब शरीर ही दिन, रात, सन्ध्या और ज्योत्स्नाके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिवस ये तीनों सत्वगुणात्मक और रात्रि तामसी होती है। इसीसे रात्रि त्रियामा कही जाती है। पूर्वोक्त गुणाधिक्यके कारण दिनमें देवता,

---

टीका—यह चार प्रकारकी सृष्टि न पिण्डके विचारसे कही गयी है और न चतुर्विध भूतसंघका इससे सम्बन्ध है। यह आवागमनचक्रवाली चार प्रकारकी सृष्टि है। यथाः—मृत्युलोकवाली मनुष्य सृष्टि, जो मातृगर्भसे जन्मती है। अन्य तीन दैवी सृष्टियां हैं, जो देवताओंकी सहायतासे यों ही उत्पन्न हो जाती हैं। इन तीनोंका भेद इस प्रकार है:—प्रेत, नरक और पितृलोककी दैवी सृष्टि, उद्‌र्ध्व स्वर्गलोककी दैवी सृष्टि और अधः सप्तपातालकी असुरयोनिकी दैवी सृष्टि है। आवागमनके चक्रके नियमानुसार जीव अपने शुभाशुभ कर्मोंके फलोंसे इन चारों श्रेणीके लोकोंमें पहुंचा करता है और यही जन्मान्तरका घुमाव आवागमनचक्र कहाता है। स्थावरसृष्टि मृत्युलोककी सृष्टिके अन्तर्गत ही समझी जायगी। यहां जो जलका वर्णन है, वह साधारण जल नहीं, कारणवारि है॥ १–१२॥

रातमें असुर, उषःकालमें मनुष्य और सन्ध्याकालमें पितृगण बलशाली होकर विपरीत गुणोंसे युक्त हो जाते हैं। दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना रूपी चार शरीरोंको उत्पन्न करनेके पश्चात् रात्रिमें भूखसे व्याकुल होनेके कारण ब्रह्माने रजस्तमोमय एक शरीर और धारण किया। उससे अत्यन्त कुरूप, बढ़े हुए केशवाली, भूखी-प्यासी प्रजाकी सृष्टि की। उस प्रजाने ब्रह्माके उस अमङ्गल शरीरको भक्षण करना आरंभ किया। खाते-खाते जिन्होंने 'रक्षा करेंगे' कहा, वे राक्षस और जिन्होंने "भोजन करेंगे" कहा, वे यक्ष हो गये ॥१३-२०॥ उस प्रजाको देखकर ब्रह्माको घृणा हुई, जिससे उनके केश झड़ने लगे। ब्रह्माके गिरे हुए केश फिर शिर-पर आरोहण करनेमें असमर्थ होनेके कारण इधर उधर खिसकने लगे। उन्हींको सर्प संज्ञा प्राप्त हुई। हीन जातिके होनेके कारण उन्हें अहि भी कहते हैं। सर्पदर्शनसे क्रुद्ध होकर क्रोधात्मा, कपिलवर्ण, उग्रस्वभाव, पिशिताशनों (मांसखादकों) की उन्होंने सृष्टि की।

टीकाः—सृष्टिप्रकरणका ठीक ठीक समझना समानधियुक्त बुद्धिका कार्य है। साधारण बुद्धि उसको समझ नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि, पुराणोंकी वर्णनशैली कोई दार्शनिक वर्णनशैली नहीं है। पुराणोंमें एक साथ ही सृष्टिके नाना स्तरोंकी बातें आजानेसे विषय जटिल होकर असम्बद्ध सा प्रतीत होता है। इसी कारण सृष्टिप्रकरणका पूर्वापरसम्बन्ध कुछ स्पष्ट कर देना उचित है। सृष्टिप्रकरणके साधा-रणतः तीन स्तर हैं। यथाः—प्राकृतसृष्टि, मानस सृष्टि और बैजीसृष्टि। प्राकृतसृष्टि सगुण ब्रह्मकी, मानससृष्टि ब्रह्मा और प्रजापतियोंकी और बैजीसृष्टि सब जीवोंकी मैथुनीसृष्टि समझी जा सकती है। प्रलयमें जब सब ग्रह-उपग्रह आपसमें टकराकर परमाणुरूप होकर नष्ट हो जाते हैं, उसके बाद दूसरे कल्पमें जब सृष्टिका आरम्भ होता है, तो ब्रह्मप्रकृति अव्यक्तसे व्यक्त होकर कार्य करती है। ब्रह्म-प्रकृतिही सृष्टि, स्थिति और लय करती है और ब्रह्म केवल निर्लिप्त होकर ईक्षण किया करते हैं। यही ब्रह्मकी सगुण अवस्था है। यही दर्शनशास्त्रका ईश्वरभाव है। पहिली अवस्थामें प्रकृतिके स्वभावसे रजोगुणरूपी आकर्षणद्वारा परमाणुपुंज एकत्र होते हैं। यही न्याय-वैशेषिकदर्शनका सृष्टिप्रकरणसम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त है। उस समय परमाणुओंके एकत्रित होनेसे ग्रह-उपग्रह आदिके स्थूल लोकसमूह बनते हैं। तब ब्रह्माण्ड जीववासोपयोगी नहीं होता। केवल पंचभूतोंके स्थूल परमाणु ब्रह्माण्डके स्थूल अङ्गको बनाते हैं। इसी प्राकृतिकसृष्टिको आधुनिक पदार्थवादी भी कुछ कुछ अनुमान करते हैं। यह सृष्टिका पहिला स्तर है। तदनन्तर प्रत्येक ब्रह्माण्डके अधिदैव त्रिमूर्तिके रूपमें सगुणब्रह्मके प्रतिनिधि होकर प्रकट होते हैं। उस समयका वर्णन पुराणोंमें ऐसा किया गया है कि, सत्वगुणके अधिदैव भगवान् विष्णु योगनिद्रामें सोये रहते हैं। उनके नाभिकमलसे रजोगुणके अधिदैव भगवान् ब्रह्मा जागृत होकर प्रकट होते हैं और तमोगुणके अधिदैव भगवान् शिव उन दोनोंके शरीरोंमें अलक्षित रूपसे विराजमान रहते हैं। अवश्यही भगवान् विष्णुकी यह योगनिद्रा जीव-जगत्की मामूली निद्रा नहीं है। जगत्से दृष्टि हटाकर स्वस्वरूपमें अवास्थिति इस निद्राका योगयुक्त अनुभव है। इस दशामें भगवान् ब्रह्मा ब्राह्मीसृष्टि करते हैं। वे भी योगयुक्त होकर ही करते हैं। अतः सृष्टिप्रकरणका समझना समाधिगम्य है। अवश्यही भगवान् ब्रह्माकी समाधि और साधारण योगीकी समाधिमें महान् अन्तर है। क्योंकि योगीका अन्तःकरण एक जीवका व्यष्टिअन्तःकरण है और ब्रह्माका

वाक्यकी चिन्ता करते हुए गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। वाक्यस्मरणसे उत्पन्न होनेके कारण ही वे गन्धर्व नामसे विख्यात हुए। इस प्रकार आठ प्रकारकी देवयोनियोंको उत्पन्न करनेके अनन्तर ब्रह्माने अपने शरीरसे अन्यान्य पशु, पक्षी आदिकी सृष्टि की। उनके मुखसे बकरा, छातीसे पक्षी, पेट और पसलीसे गौ, दोनों पैरोंसे घोड़ा, हाथी, गदहा, खरहा, हरना, ऊंट और खच्चर तथा रोमोंसे फल, मूल, चावल और नानाप्रकारकी औषधियां उत्पन्न हुईं ॥२१-२७॥ भगवान् त्रेतायुगके प्रारम्भमें इसप्रकार पशु और औषधियोंकी सृष्टि कर यज्ञ सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए थे। गाय, भैंस, बकरा, मेढ़ा, घोड़ा, खच्चर और गदहा इनको ग्राम्यपशु और श्वापद, दो खुरवाले प्राणी, हाथी, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप इन सात प्रकारके पशुओंको वन्यपशु कहते हैं। विधाताके पूर्वमुखसे ऋग्वेद, गायत्री, त्रिवृत् छन्द, रथन्तर साम और अग्निष्टोम यज्ञ; दक्षिणमुखसे यजुर्वेद,

---

अन्तःकरण एक ब्रह्माण्डका समष्टिअन्तःकरण है। तथापि योगयुक्त अन्तःकरणकी स्थिति और समाधिकी प्रक्रिया एकही जातिकी है, यह माननाही पड़ेगा। फलतः जो महापुरुष पातञ्जल योगशास्त्रोक्त सविकल्प और निर्विकल्प समाधिका रहस्य और सविकल्प समाधिके अस्मितानुगत, आनन्दानुगत, विचारानुगत और वितर्कानुगत इन चारों भेदोंको भली भांति जानते हैं, वेही सृष्टिप्रकरणकी गम्भीरताको कुछ समझ सकते हैं। भगवान् ब्रह्माकी मानससृष्टि, तदन्तर परमहंससृष्टिरूपी सनकादिकी सृष्टिमें अनिच्छा और तदनन्तर प्रजापतियोंकी मानससृष्टिका रहस्य अति गूढ़ है। यह सब मानससृष्टिके अन्तर्गत है। इस अध्यायमें जो प्रकरण आया है, वह सब मानस और ब्राह्मी सृष्टिकाही प्रकरण है। भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकार्यके लिये जगन्माताकी इच्छा-अनिच्छा-रूपी स्वभाविक इच्छासे अथवा यों कहिये कि, उनकी लीलामयी भृकुटिके सञ्चालनमात्रसे जब जीवसृष्टि उत्पन्न करनेके लिये ब्रह्मा प्रकट हुए, तो योगयुक्त होकर अपनी समाधिबुद्धिद्वारा "यथापूर्वमकल्पयत्" इस सृष्टिसिद्धान्तानुसार कारणवारिमें गोता लगाकर उन्होंने सृष्टि आरम्भ की। जब पूर्वकल्पमें प्रलय हुआ था, तब चतुर्दशलोकमय ब्रह्माण्ड जिन जिन समष्टिसंस्कारोंको लेता हुआ प्रलयके गर्भमें लीन हुआ था, वही समष्टिसंस्कार कारणवारि कहाता है। भगवान् ब्रह्मा अस्मितानुगत और आनन्दानुगत दोनों समाधियोंके अनुसार अपने स्वस्वभावसे और प्रजापतिगण आनन्दानुगत और विचारानुगत दोनों समाधियोंकी सहायतासे भगवान् ब्रह्माकी प्रेरणाद्वारा दैवीसृष्टिका सञ्चालन करते हैं। किस अवस्थासे किस अलौकिकशक्तिद्वारा जगज्जननी महामायाके प्रभावसे सृष्टिकार्य होता है, वह समाधिस्थ योगिगणही कुछ कुछ समझ सकते हैं। पुराणादि शास्त्र उन अवस्थाओंका केवल इंगित करते हैं। ब्रह्माका जलमें अपना अंश फेंकना रजोगुणके प्रभावसे समष्टिकर्मबीजसंस्कारसे सृष्टिका अंकुरोत्पन्न होना समझना उचित है। आसुरी सृष्टि तमोगुणप्रधान है। इस विषयमें सब शास्त्र एकमत हैं। सत्वके कार्यसे तमका कार्य प्रथमही होता है। जगत्में भी इसका दृष्टान्त सर्वत्र मिलता है। यही कारण है कि, जगत्में धर्मकी क्रियासे अधर्मकी क्रियाकी प्रबलता और व्यापकता अधिक है। तमस् अधोगामी और सत्व उर्ध्वगामी है। यह भी कारण है कि, तमकी ओर वृत्ति पहिले दौड़ती है। उसके अनन्तर देवताओंकी सृष्टि हुई, जो सत्वगुणमयी है। सृष्टिके साथही साथ कालकी उत्पत्ति हुई है। वही काल दिन

त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदशस्तोम यज्ञ, बृहत्साम और उक्त; पश्चिममुखसे सामवेद, वैरूप छन्द और अतिरात्र यज्ञ तथा उत्तरमुखसे इक्कीस अथर्ववेद, अनुष्टुभ् और वैराज् छन्द एवं आप्तोर्याम यज्ञका प्राकट्य हुआ है॥२८-३४॥ भगवान् हरएक कल्पके प्रारम्भमें ही विद्युत्, अशनि (वज्र), मेघ, लाल इन्द्रधनु और वयस् (आयु) की सृष्टि करते हैं। फिर देवता, असुर, पितृगण और मनुष्योंकी सृष्टि होती है। भगवान्के शरीरसे ही नानाप्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् वे स्थावर, जङ्गम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराएँ, नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, भुजङ्ग, आदि समस्त नश्वर और अविनश्वर पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं। जिनका जो काम हो, वह उन्हें सृष्टिके प्रारम्भमें ही बता दिया जाता है। इस कारण बारबार जन्मलेनेपर भी वे वही अपना अपना काम किया करते हैं ॥३५-३९॥ पूर्वजन्ममें प्राणी हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म,

---

और रातके विभागसे यथाक्रम सत्वगुण और तमोगुणमय हुआ। यही कारण है कि, देवता और असुर भाई कहाते हैं। असुर बड़े भाई हैं और रात्रिका अधिकार भी पहिला है। सृष्टिकी अवस्थामें रात्रि पहिले उत्पन्न हुई थी। सृष्टि और कालका यह अलौकिक सम्बन्ध है। पितृगण भी देवताके भेद हैं और सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा करना उनका कार्य है। ब्रह्माण्डके मध्यमें मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक, यह चारलोकमय जो भूलोक है, उसींमें उनका पूर्ण अधिकार है। भगवान् यम धर्मराज उनके राजा हैं। येही जीवके सदसत्कर्मोंके फलदाता ईश्वर कहाते हैं। देवलोककी सृष्टिके अनन्तर ही इसीकारण पितृगणकी सृष्टि कही गयी है। पितृगणको सन्ध्या इस कारण कहा गया है कि, जीव चाहे ऊपरके देवलोकमें जाय, या नीचेके असुरलोकमें जाय, नरकमें जाय, या स्वर्गमें जाय, घूमके पुनः आवागमनचक्रके बलसे उसे मृत्युलोकमें आना पड़ता है। क्योंकि मृत्युलोक ही कर्मभूमि है। वह मृत्युलोक पितृशृंखला और पितृराजके आधीन है। इस कारण पितरोंको सन्ध्या कहा गया है। मनुष्यपिण्ड सबका केन्द्र है, इस कारण उसको ज्योत्स्नया उषःकाल कहा है। अन्तर्मुखसम्पन्न योगिगण इस रहस्यको अच्छी तरह समझ सकते हैं। जैसे पितृगण देवताओंकी योनि हैं, वैसे ही राक्षस और यक्ष असुरयोनिसे सम्बन्ध रखते हैं। है। दूसरी ओर ऋषि गण भी पितृगणकी तरह देवपिण्डधारी ही होते हैं। ऋषियोंकी विशेषता यह है कि, उनका निवास चतुर्दशभुवनोंमें भी रहता है। यही कारण है कि, शास्त्र दैवी होते हैं और आसुरी भी होते हैं। दैवीशास्त्र देवलोकके ऋषियों द्वारा और आसुरीशास्त्र असुरलोकके ऋषियोंद्वारा शृंखलाबद्ध होकर मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें प्रेरित होते हैं। नित्यऋषिगण एक श्रेणीके देवता हैं और वे ज्ञानराज्यके सञ्चालक हैं। सर्पयोनिका जो वर्णन है, वह मृत्युलोककी सर्पयोनि नहीं, असुरलोककी देवयोनिविशेष है। जिसका वर्णन इस पुराणमें पहिले आ चुका है। पाताललोकमें ही उनका निवास है। इसी प्रकार मांसभक्षकोंका जो वर्णन है, वह असुरयोनिसे सम्बन्धयुक्त है। गन्धर्वकी सृष्टि दैवीसृष्टि है। उनका सम्बन्ध ऊर्द्धव द्वितीय लोकसे है। तदनन्तर चतुर्विधभूतसङ्घका जो वर्णन है, वह सहजपिण्डसे सम्बन्ध रखता है। अन्यान्य पुराणोंमें यह सब सृष्टि प्रजापतियोंके द्वारा होनेका वर्णन है। पुराणोंमें सृष्टिके स्तरोंका पूर्वापर ठीक वर्णन न रहनेसे और पूर्वकथित सृष्टिके तीनों स्तरों और उनके अन्तर्विभागोंका यथाक्रम प्रतिपादन न होनेसे समझनेमें कठिनता होती है और वर्णनशैली असम्बद्धसी प्रतीत होती है।

सत्य-मिथ्या आदि जिस किसी चिन्तामें जीवन बिताते हैं, उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें उनकी प्रवृत्ति होती है । उसमें उनको किसी तरह हिचक नहीं होती । विधाताने स्वयं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्राणियों और उनके शरीरोंका नानाविधत्व, नानारूपत्व और नानाकर्तृत्वका यथायोग्य विभाग कर दिया है । प्रलयका अन्त होनेपर उन्होंने वैदिक शब्दोंके आधारपर देवता, ऋषि और अन्यान्य सृष्टपदार्थोंका नामकरण किया है । जिस प्रकार ऋतु बदल जानेपर उस ऋतुके चिन्होंकी विविधता देख पड़ती है, उसी प्रकार युगके आरम्भमें सृष्टपदार्थोंकी उस युगके अनुसार विविधता हो जाती है । अव्यक्तजन्मा विधाता ही प्रलयके पश्चात् प्रत्येक कल्पके प्रारम्भमें इस प्रकारकी सृष्टि किया करते हैं ॥४०–४५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सृष्टि प्रकरण नामक अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनचासवाँ अध्याय ।

क्रौष्टुकिने कहा,—हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोता मनुष्योंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा, उसको फिर विस्तारपूर्वक कहिये । साथ ही यह भी बताइये कि, किन किन विशिष्ट गुणोंसे युक्त किस किस वर्णकी सृष्टि हुई है और ब्राह्मणादि वर्णोंका क्या क्या

अतः प्राकृतिक सृष्टि, दैवी मानससृष्टि और लौकिक मैथुनीसृष्टि इन तीनोंका स्तर अलग अलग ध्यानमें रखनेसे और दूसरी ओर दैवी सृष्टिका रहस्य समझनेसे जिज्ञासुओंकी शंका नहीं रह सकेगी । दैवी सृष्टिमें भगवान् ब्रह्माकी सृष्टि और ब्रह्माके पुत्र प्रजापतियोंकी सृष्टि और देवपिण्ड, सहजपिण्ड और मानवपिण्ड इन तीनोंके पृथक् अधिकार ध्यानमें रखनेसे सृष्टि प्रकरणके समझनेमें सुगमता होगी । साथही साथ दैवी मानस सृष्टिके आसुरी भेद, दैवी भेद और लौकिक मनुष्य तथा चतुर्विध भूतसङ्घके भेद अच्छी तरह समझलेनेपर सृष्टि प्रकरणका समझना सरल हो जायगा । बैजी अर्थात् मैथुनी सृष्टिका स्वरूप तो बुद्धिमानोंके सन्मुख विद्यमान ही है और वेद शास्त्र तथा पदार्थविद्याके द्वारा भी उसका बहुतसा रहस्य समझनेमें आता है । केवल पूर्व कल्पके अनुसार नवीन कल्पमें योगयुक्त अन्तःकरणसे "यथापूर्वमकल्पयत्" इस वैदिक आज्ञाके अनुसार जो मानस सृष्टि होती है, उसीका समझना कठिन है । उसके समझनेसे और समाधि प्रकरणको समझनेसे यह भी हृदयङ्गम हो सकेगा कि, वेदका आविर्भाव और पुराणोंका सृष्टिके आदिमें प्राकट्य होना भी विज्ञानसिद्ध है । भगवान् ब्रह्माके अन्तःकरणसे ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें वेदोंका सुना जाना वह आनन्दानुगत समाधिद्वारा सिद्ध है । तदनन्तर इसी क्रमके अनुसार समष्टि अन्तःकरणसे व्यष्टि अन्तःकरणमें विचारानुगत समाधिद्वारा पूर्व कल्पकी गाथा आदिका पुराणरूपसे भावके द्वारा प्रकट होना भी विज्ञानसिद्ध है । वेद यथावत् शब्दके द्वारा और पुराण भावके द्वारा प्रकट होते हैं ॥१३–४५॥

कर्तव्य है? मार्कण्डेय बोले,—हे मुने! सृष्टिके प्रारम्भमें चिन्ताशील ब्रह्माके मुखसे सत्वगुण युक्त सहस्र मिथुनों (जोड़ों) की उत्पत्ति हुई। फिर वक्षस्थलसे रजोगुणयुक्त सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए। वे सभी बड़े तेजस्वी और क्रोधी थे। फिर उनकी जङ्घाओंसे जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए, वे रजस्-तमस्मिश्र स्वभाववाला और ईर्ष्यान्वित थे और दोनों पैरोंसे जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए, वे श्रीहीन, मन्दबुद्धि और तामसिक स्वभावके थे। इस प्रकार द्वन्द्वसे उत्पन्न प्राणिगण प्रसन्न चित्तसे परस्पर मैथुन करने लगे। तबसे प्रतिकल्पमें ऐसेही मिथुनोंकी सृष्टि होने लगी ॥ १—६ ॥ उस समय प्रतिमास स्त्रियोंका आर्तव निःसृत नहीं होता था। अतः वे चाहे जब मैथुन क्यों न करें, उनके गर्भाधान नहीं होता था। केवल मृत्युकालमें ही वे मिथुन प्राणीको प्रसव करते थे। इसी तरह उस समय मिथुनों (जोड़ों) की उत्पत्ति हुआ करती थी। ब्रह्मा जब मनही मन प्रजाओंकी सृष्टिकी चिन्ता करते हैं, तब प्रजाओंके साथही साथ पञ्चमहाभूतों और शब्दादिकी उत्पत्ति होती है। इसीको प्रजापतिकी मानसी सृष्टि कहते हैं। इस समय उस सृष्टि-परम्पराके द्वारा सारा संसार परिपूर्ण हो रहा है। पूर्व युगमें प्रजाओंको न अधिक शीत लगता था, न उष्णता ही। इस कारण सभी नदी, सरोवर और समुद्रके निकट अथवा पर्वतोंपरही विचरण किया करते थे। उपभोग्य विषयोंको स्वाभाविक रूपसे ही प्राप्तकर वे तृप्तिलाभ करते थे और उनमें किसी प्रकारका व्याघात, द्वेष अथवा मत्सर आदि नहीं होता था। वे मकान नहीं बनाते थे और पर्वतों अथवा समुद्रके तटपर निवास करते थे। वे सदा निष्कामचारी और प्रसन्नचित्त हुआ करते थे ॥ १०—१५ ॥ पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सरी प्राणी, पशु, पक्षी, मगर, मछली, सरीसृप, अवारक (जलके तीरपर रहने वाले जीव) और अण्डज प्राणी अधर्मके द्वारा उत्पन्न हुए हैं। तब मूल, फल, फूल, ऋतु, संवत्सर, अति ग्रीष्म या अति शीत कुछ भी नहीं था। वह बड़ेही सुखका समय था। समय पाकर उस समयके लोगोंको अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। पूर्वाह्ण अथवा मध्याह्नमें उन्हें तृप्ति न होनेपर इच्छा करनेसे ही वे अनायास तृप्त हो जाते और इच्छा करने पर आयास (परिश्रम) भी करते थे। उस समय जलकी अति सूक्ष्मता होनेके कारण जीवोंको नाना प्रकारकी रसोल्लासवती सिद्धियां प्राप्त होती थीं और जीवोंकी सब अभिलाषाएं भी पूरी हो जाती थीं। उनके आहार्य पदार्थ शोभारहित होते थे और सभीका यौवन स्थिर रहता था ॥ १६—२१ ॥ सङ्कल्प करनेसे ही वे मिथुन प्रजा एक साथ उत्पन्न कर सकते थे। वह मिथुन प्रजा एक साथ उत्पन्न होती और रूपादिकी समता प्राप्त कर एक साथ ही प्राण-त्याग करती थी। उनमें परस्परका अभिलाष या द्वेष नहीं रहता था। सभी समान-भावसे कालक्षेप किया करते थे। उनमें कोई उत्तम अथवा अधम नहीं था। क्योंकि सभी-

की आयु और रूप आदि समान थे । वह मिथुन प्रजा मनुष्योंके हिसाबसे चार सहस्र वर्ष जीती और विनाक्लेशके प्राण त्याग करती थी। दैवयोगसे किसी किसी स्थानमें पृथ्वी ऐसी हो जाती थी कि, प्रजागण क्रमशः जीवन विसर्जन करदेते थे ॥ २२—२५ ॥ उक्त प्रजाजन और सिद्धियोंका क्रमशः विनाश होनेपर मनुष्यगण आकाशसे टपक पड़े। फिर गृह (घर) नामक कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ और उस कल्पवृक्षके द्वाराही उन्हें सब प्रकारके भोग प्राप्त हुए । त्रेतायुगके आरम्भमें मनुष्य अपनी जीवनयात्रा इसी प्रकार निर्वाह करते थे । अनन्तर कालक्रमसे उनमें आकास्मिक राग उत्पन्न हुआ । रागके उत्पन्न होनेसे मानवी स्त्रियोंको प्रतिमास ऋतु और बार-बार गर्भाधान होने लगा तथा गृह नामक कल्पवृक्ष और उसकी शाखाएँ धीरे-धीरे सूखकर गिरने लगीं । जो कुछ वृक्ष बच गये, उनसे वस्त्र और उनके फलोंसे अलङ्कार बुनने लगे । उन फलोंकी प्रत्येक सतहमें सुन्दर गन्ध और रङ्गका अमाक्षिक (विना मक्खीका) मधु (शहद) होता था । त्रेतायुगके आरम्भमें उस बलकारक मधुका पान करके ही उस समयके लोग जीवन धारण करते थे । कालक्रमसे लोग अत्यन्त लोभी और ममतासे अभिभूत होकर उन वृक्षोंको एक दूसरेसे छीनने लगे। इस अपचारसे उक्त सब वृक्ष विनष्ट हो गये ॥२६—३३॥ फिर शीतोष्ण, क्षुधा आदि द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति हुई। इन द्वन्द्वोंके प्रतिकारार्थ लोगोंने नगर बसाये। फिर मरुभूमि, पर्वतों, दरियों (खाइयों) और समुद्रोंमें बड़े-बड़े किले बने और घनघोर बनों, पर्वतों और समुद्रोंमें बने हुए किलोंका लोग आश्रय करने लगे । अपने अपने अङ्गुलोंके परिमाणसे वे सब कृत्रिम दुर्ग नापे गये और उनके परिमाणको जाननेके लिये नाप जोखके प्रमाण निश्चित करलिये गये। अति सूक्ष्मप्रमाणके लिये परमाणु, त्रसरेणु और धूलि तथा स्थूलप्रमाणके लिये केशाग्र, निष्का, यूका, यव आदि स्थिर किये गये। ग्यारह यवका एक अङ्गुल होता है । छः अङ्गुलका एक पद, दो पदकी एक वितस्ति (बित्ता) दो वितस्तिका एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ (टिहुनीसे मध्यमा अङ्गुलीके आग्रतकके भागतक) के चार हाथोंका एक धनुर्दण्ड (लट्ठा) अथवा नाडिकायुग, दो सहस्र धनुर्दण्डकी एक गव्यूति और चार गव्यूतिका एक योजन होता है । बुद्धिमान पुरुषोंने नाप जोखके लिये यह प्रमाण बांध रक्खा है ॥ ३४–४० ॥ पहिले जो दुर्ग कहे गये हैं, उनमें तीन प्राकृतिक और एक कृत्रिम (मनुष्यकृत) है । अर्थात मरुभूमि, पर्वतशिखर और समुद्रके दुर्ग प्राकृतिक और नगररूपी दुर्ग मनुष्यकृत है और मनुष्यको इसे बनाना भी चाहिये । नगररचना करते हुए मनुष्योंने हे द्विज ! पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर, कर्वटक, त्रयी, ग्राम, संघोष और स्थान स्थानपर आवास (पड़ाव) आदि निर्माण किये । जिसके चारों ओर कोट और खाई खिंची हो, जिसका क्षेत्रफल एक गव्यूति अर्थात् दो कोसका हो और जो आठ हिस्सोंमें फैला हो, उसको पुर

कहते हैं यदि ऐसा पुर पूर्व और उत्तरकी ओरसे जलसे घिरा हो और उस जलसे पार उतरनेके लिये उसपर ठोस बांसका पुल बना हो, तो वह अधिक प्रशस्त है। पुरके जो लक्षण हैं, उनसे आधे लक्षण जिसमें हों, वह खेटक कहाता है। पुरके चतुर्थांश लक्षण-युक्त कर्वटक और अष्टमांश लक्षणयुक्त द्रोणीमुख कहाता है। जिसके आसपास कोट तो हो, परन्तु परिवार (खाई) न हो, उसे वर्मवत्पुर, और मन्त्री, आमात्य आदिके निवास के लिये जो बसाया गया हो, उसे शाखानगर कहते हैं। जहां शूद्र बसे हों और समृद्धि-मान् कृषक निवास करते हों, और जिसके चारों ओर खेत और फलफूलोंके बाग़ हों, वह ग्राम कहाता है। किसी कार्यके उद्देश्यसे नगरसे आकर जहां लोग बसते हों, उसे वसति कहते हैं। जहांके लोग दुष्ट प्राय, बलवान् और अपना खेत न होते हुए भी दूस-रोंके खेतपर अधिकार करके बैठ गये हों, और जहां राजप्रिय लोग बसते हों, उस स्थानको अक्रिमी कहते हैं। जहां माल लादनेकी गाड़ियोंका गोपालनका व्यवसाय करने वाले ग्वाला रहते हों, अपनी गायें बांधते हों, परन्तु जहां दूकाने न हों और जहांकी मनमानी भूमि आंक ली गयी हो उसको घोस कहते हैं। इस प्रकारके अपने बसने योग्य नगरादि बसा लेनेपर मनुष्योंने शीतोष्णादि द्वन्द्वोंके निवारण तथा वाणिज्य-व्यवसायादिके लिये नाना तरहके निकेतन (घर)बनाये। पहिले सब प्रजाके लिये वृक्ष ही घर हो रहे थे, किन्तु अब सबने वृक्षोंकी रचना देखकर उनके अनुसार अपने बसने योग्य घर बना लिये। गृह रचनामें वृक्षोंकी शाखाएँ वैसी ही तर ऊपर रखीं, जैसी वृक्षोंमें थीं। पहिले जो शाखाएं कल्पवृक्षमें थीं, अब वे घरोंमें धवन, कड़ी आदिके रूपमें लगा दी गयीं ॥ ४१—१३ ॥ हे द्विजोत्तम ! घरोंके बन जाने पर लोगोंका शीतोष्णादि निवारणका काम तो बन गया, परन्तु अब वे जीविका

टीकाः — जैसे पूर्ववर्णित चारों प्रकारके सृष्टिस्तर और उनके अवान्तर भेदोंका सामञ्जस्य करनेकी आवश्यकता थी, जैसा कि, पहले किया गया है; उसी प्रकार इस अध्यायमें कही हुई आदि मानव सृष्टिका सामञ्जस्य करके उसका रहस्योद्घाटन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यह वर्णन भी असम्बद्ध—सा प्रतीत होता है। अतः मानव पिण्डकी सृष्टिकी आदि अवस्था, मध्य अवस्था और अन्तिम अवस्था इन तीनोंका रहस्य बिना खोले मानव पिण्डका सृष्टि प्रकरण साधारण बुद्धिगम्य नहीं हो सकता। अन्यान्य शास्त्रोंमें वर्णन है कि, जब यह पृथ्वी मानववासोपयोगी बन गयी और चतुर्दश भुवन भी ढंगसे बन गये, तब मानव पिण्ड उत्पन्न हुआ। इसी कारण आकाशसे मनुष्यका टपक पड़ना कहा गया है। प्रथम सनकादि परमहंसोंकी पूर्ण सृष्टि हुई। वे भी भगवान् ब्रह्माजीके इच्छा मात्रसे टपक पड़े। वह प्रथम सृष्टि इतनी पूर्ण हुई थी कि, वे महापुरुष परमहंस हुए थे। और इच्छा रहित होनेसे वे सृष्टि करनेके अयोग्य और सृष्टिसे अतीत थे। तब भगवान् ब्रह्माने पुनः इच्छा की। तब प्रजापति नामक देवतागण उत्पन्न हुए। वह पहिली सृष्टिसे गिरी हुई सृष्टि थी। क्योंकि सृष्टिका प्रवाह नीचेकी ओर चलता ही है। प्रजापति गण मानस सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। उस समय तक सब देव पिण्डकी सृष्टि थी। तदनन्तर

निर्वाहके उपायकी चिन्ता करने लगे। क्योंकि मधु (शहद) के सहित सब कल्पवृक्ष अब नष्ट हो गये थे और इससे सब लोग विषादग्रस्त और भूख प्याससे अत्यन्त कातर हो उठे थे। त्रेता युगके आरम्भमें लोगोंको एक प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हुई थी, जिससे उनकी जीविका सम्बन्धी चिन्ता दूर होगयी, उस समय जब कभी लोग इच्छा करते थे, उसी समय प्रचुर परिमाणमें वृष्टि हो जाती थी। वृष्टिका वह जल निम्नगामी होनेसे जहां तहां अड़ने और संगृहीत होने लगा और वही आगे चलकर स्रोतके द्वारा खात करता हुआ नदियोंके रूपमें परिणत हुआ। जो जल पहिले वृष्टिके द्वारा पृथ्वीपर गिरा था, वह अब पृथ्वीके संयोगसे दोष रहित हो गया। इस कारण उससे तर होकर पृथ्वीपर ग्राम्य और आरण्य चौदह प्रकारके वृक्ष और गुल्म आदि बिना जोते बोये ही उत्पन्न होने लगे। ऋतुकालमें आप ही आप वे फलफूल देने लगे। इस प्रकार त्रेतायुगके आरम्भमें सब प्रकारकी औषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ था ॥५४—६०॥ हे मुने! तब प्रजामें अकस्मात् राग और लोभ उपजा और वे औषधि (वनस्पतियों) से उत्पन्न होने वाले पदार्थोंके द्वारा त्रेतायुगमें जीवन धारण किया करते थे। फिर जैसा जिसका बल होता, उसके अनुसार उस समयके लोग नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और औषधियोंको अपने काममें लाने लगे। हे द्विजवर! उनके इस दोषसे देखते देखते सब औषधियां नष्ट हो गयीं। हे महामते! उन सब औषधियोंको पृथ्वीने अपने उदरमें रख लिया। समस्त औषधियोंके लुप्त हो जानेसे फिर सब लोग व्याकुल और क्षुधातुर हो गये और परमेष्ठी ब्रह्माकी शरणमें जाकर अपना दुःख सुनाने लगे। विभु भगवान् ब्रह्माने सचमुच ही देखा कि, वसुन्धरा ग्रास कारिणी हो रही है। तब उन्होंने सुमेरु पर्वतको (जो पृथ्वीका बछड़ा है) वशमें करके पृथ्वीको दुहा। इस

मानव पिण्ड और सहजपिण्डकी सृष्टि हुई है। तब सब मनुष्य पिण्डधारी जीव विभिन्न गुणोंके होनेपर भी एक ही अधिकार और रूपके थे। वे मानससृष्टि कर सकते थे और बैजी (मैथुनी) भी। इच्छाचारी होनेसे इच्छामात्रसे वे तृप्त हो सकते थे और प्रकृतिकी स्वाभाविक दशाके अनुसार अपनी जीवनयात्राका निर्वाह करते थे। सब आस्तिक और पूर्णावयव थे। इस कारण वे स्वभावसे धार्मिक थे। इसी अवस्थाको महाभारतादि शास्त्रोंमें कहा गया है कि उस समयकी सृष्टिके मानव-पिण्डधारी सभी जीव ब्राह्मण थे। इस विज्ञानको दूसरे प्रकारसे भी समझ सकते हैं। अर्थात् भगवान् ब्रह्माकी प्रथम इच्छाशक्तिसे पूर्णज्ञानी परमहंस की पूर्णसृष्टि, तदनन्तर दैवीशक्ति सम्पन्न इच्छाशक्तिकी पराकाष्ठा रखनेवाले प्रजापतियोंकी सृष्टि और तीसरी अवस्थामें पूर्णवयव ब्राह्मणोंकी मानवपिण्डकी सृष्टि भगवान् ब्रह्माके इच्छा मात्रसे उत्पन्न हुई थी। वे सब प्रकृतिके प्रवाहके अनुकूल चलनेवाले होनेके कारण धर्मात्मा थे। तदनन्तर जब कर्मका विप्लव मनुष्यकी इच्छा शक्ति निरङ्कुश हो जानेसे बढ़ने लगा और मनुष्य पिण्डधारी जीव धार्मिक होकर उत्पन्न होने पर भी रागद्वेष तथा अभिनिवेशके बढ़ जानेसे प्रकृतिके स्वाभाविक स्रोतको छोड़कर दूसरी ओर अपनी इच्छसे बह निकले, तब प्रकृतिमाताने भी उनको अपनी गोदसे उतार दिया, तब सत्त्व, रज, तम

प्रकार दुहनेसे भूमाताने नाना प्रकारके शस्य उत्पन्न किये। उनसे बीज उत्पन्न होकर फिर ग्राम्य और आरण्यक औषधियां उत्पन्न हुईं जिनमें परिपक्व फल होते थे ऐसी ग्राम्य औषधियां सत्रह हुईं जो इस प्रकार हैं:—व्रीहि, यव, गेहूं, ककुनी, तिल, प्रियङ्गु (रामदाना), उदार, कोदो, चीनक, उर्द, मूंग, मसूर, पावठा, कुलथी, आढ़क और चना ॥६१—६६॥ ग्राम्यारण्य औषधियां चौदह प्रकारकी होती हैं और यज्ञके काममें उनका उपयोग किया जाता है। वे इस प्रकार हैं:—व्रीहि, यव, गेहूं, ककुनी, तिल, प्रियङ्गु, कुलथी सावां, नीवार, यत्रिल, गवेधुक, कुरुविन्द, मर्कटक (मकई) और वेणुयव। ये सब प्रकृष्ट औषधियां एकबार होकर जब फिर अङ्कुरित नहीं हुईं, तब उनके जिलाने और बढ़ानेका विचार ब्रह्माजी करने लगे। फिर उन्होंने कर्मज हस्तसिद्धि तैयार की। तबसे कृष्टपच्य (हलसे जोती बोई जानेवाली) औषधियां उत्पन्न होने लगीं। लोगोंके जीवन निर्वाह का इस प्रकार जब प्रबन्ध हो गया, तब प्रभु ब्रह्माने सबकी न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा बांध दी। हे धार्मिकवर ! उन्होंने वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा धर्मार्थपालक सब वर्णोंमें उत्पन्न हुए लोगोंके धर्मका निरूपण किया। क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके धर्मका निरूपण किया। क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये उन्होंने प्राजापत्य स्थान निर्धारित किया। संग्राममें पीठ न दिखाने वाले क्षत्रियोंके लिये इन्द्रस्थान, स्वधर्म परायण वैश्योंके लिये मारुत स्थान और परिचर्या निरत शूद्रोंके लिये गान्धर्वस्थान निश्चित किया। ऊद्र्ध्वरेता अठासी हजार ऋषियोंके लिये जो स्थान निश्चित था, वही गुरु गृहवासी ब्रह्मचारियोंको दिया गया। सप्तर्षियोंके लिये जो स्थान निर्दिष्ट था, वह वानप्रस्थोंके लिये, गृहस्थोंके लिये प्रजापत्य-

---

इन तीनों गुणोंका अलग अलग अधिकार भेद बना और कर्मकी संकरता उत्पन्न हुई, तो मनुष्य प्रजा नीचेकी ओर गिरने लगी। मानस बल घट जानेसे, मानस सृष्टि करनेका अधिकार एकबार ही जाता रहा। मैथुनी सृष्टि ही चलने लगी। कामके बढ़ जानेसे इंद्रियसेवाजनित इच्छा शक्ति बढ़ गयी। सृष्टिका स्वाभाविक प्रवाह नीचेकी ओर है इसका विज्ञान पूर्व कथित तीनों स्तरोंसे ही समझमें आ सकता है। अतः जब सृष्टि कर्ता भगवान् ब्रह्माने देखा कि, मानवपिण्डकी सृष्टि अब नीचे की ओर बही जाती है, और कर्म सांकर्यसे वर्णसंकर बनती जाती है, तो उनको भय हुआ कि, मानव सृष्टि क्रमशः अध्यात्म लक्षण विहीन, धर्म लक्ष्यच्युत और इन्द्रिय सेवी होकर असभ्य और बर्बर होकर नष्ट भ्रष्ट हो सकती है। पृथ्वीके इतिहासके पाठ करनेसे भी इसकी सत्यता बुद्धिमान मात्रको प्रतीत होगी कि कालान्तरमें कैसे मनुष्य जाति धर्म और अध्यात्मिक लक्ष्यविहीन होकर असभ्य और बर्बर हो जाती है। तब भगवान् ब्रह्माने मनुष्योंपर कृपा करके दृढ़ दार्शनिक भित्तिपर स्थित वर्णाश्रमकी सामाजिक शृंखलाको धर्मशास्त्रके द्वारा बांध दिया। वर्ण धर्म और आश्रम धर्मकी अकाट्य दार्शनिक युक्तिके द्वारा सुरक्षित अलौकिक शृंखलाका यह मौलिक रहस्य है वर्णाश्रमके दृढ़ बंध्य (बांध)ने सभ्य मनुष्य जातिके इस नीचे बहनेवाले स्रोतको सृष्टिके उस प्रथम समयमें रोक दिया था और अब भी वह

स्थान, संन्यासियोंके लिये ब्राह्मपद और योगियोंके लिये अमृतस्थान निर्मित हुआ। इस प्रकार मैंने आपसे स्थान कल्पनाका वर्णन कथन कर दिया है ॥७०—८०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सृष्टि प्रकरण सम्बन्धी उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचासवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर ब्रह्माजी फिर चिन्ता करने लगे, तो उनके शरीरसे कार्य और कारण सहित समस्त मानसी प्रजा उत्पन्न हो गई। धीमान् ब्रह्माके शरीरसे क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और इनके अतिरिक्त जिनकी उत्पत्ति हुई उनका उल्लेख पहिले हो चुका है। देवताओंसे लेकर स्थावर तक सभीको त्रैगुण्य विशिष्ट जानना चाहिये। स्थावर जङ्गमात्मक सब सृष्ट पदार्थ त्रिगुणमय हैं। जब इतनी सृष्टि करनेपर भी ज्ञानी ब्रह्माकी प्रजा नहीं बढ़ी, तब उन्होंने अपने ही समान भृगु आदिको उत्पन्न किया। पुराणोंने निश्चित किया है कि, भृगु पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मारीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ येही नौ ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। ब्रह्माने फिर अपने क्रोधसे रुद्र को उत्पन्न किया और साथ ही अब तक जो कुछ उत्पन्न किया था, उसके भी पूर्वज संकल्प और धर्मको भी उत्पन्न किया। सनकादिकी जो ब्रह्माने पहिले सृष्टिकी थी, वे सभी भविष्यत्को जाननेवाले, वीतराग, निर्मत्सर, निरपेक्ष और समाधि सम्पन्न होनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ १-८ ॥ प्रजाकी सृष्टि करनेमें उन्हें निरपेक्ष देखकर ब्रह्माको बड़ा क्रोध हुआ; उस क्रोधसे एक प्रचंड शरीरवाला और सूर्यके समान कान्तिवाला पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसका आधा शरीर

दृढ़ बन्ध उस निम्नगामी प्रवाहको रोके हुए है। जबतक वर्णाश्रम शृंखलाका बीज रहेगा, पृथ्वीके रंगमंच से धर्मप्राण और आध्यात्मिक लक्ष्ययुक्त मनुष्यजातिका लोप नहीं होगा और उसके द्वारा देवलोकका भी अभ्युदय बना रहेगा ॥ १—८०॥

टीका :—प्रजा नहीं बढ़नेका कारण पहिले कहा गया है, जो अन्य पुराणोंमें स्पष्ट है। अर्थात् सनकादि परमहंसों द्वारा सृष्टि बढ़ी ही नहीं। क्योंकि वे वासना रहित और आत्माराम थे। वेदोक्त सृष्टि प्रकरणमें पहिली सृष्टि पूर्ण मानी जाती है। तदनन्तर सृष्टि क्रमशः नीचेकी और गिरती रहती है। यथाः— सनकादि पारमहंस सृष्टि, भृगु आदि प्रजापतियोंकी सृष्टि, मानस सृष्टि और बैजी सृष्टि। तदनन्तर सृष्टिकी अत्यन्त अधोगति और उसको रोकनेके लिये वर्णाश्रम बाँधकी आवश्यकता। यही क्रम सृष्टि प्रकरणका है। क्रमका वर्णन अलग अलग न होनेके कारण कहीं कहीं समझनेमें कठिनता होती है। इसी वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार सब वर्णन यथास्थान देखने पर विरोधकी प्रतीति नहीं होगी ॥ १—८ ॥

स्त्रीका था। उस पुरुषसे यह कहकर कि, तुम अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त कर दो, ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार उस पुरुषने भी अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त कर दिया, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् पृथक् दिखाई देने लगे। फिर उन्होंने पुरुषत्वको और स्त्रीत्वको ग्यारह भागोंमें बांट दिया और उनके सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित, आदि भेदोंसे अनेक विभाग कर दिये। प्रभु ब्रह्माके क्रोधसे उत्पन्न हुए आत्मसदृश पुरुषके पुरुष अंश सम्भूत पुरुषका उन्होंने 'स्वायम्भुव मनु' नाम रक्खा और उसे प्रजापालक बना दिया तथा उस दिव्य पुरुषके स्त्री अंशसे जो स्त्री बनी, जिसके सब पातक नष्ट हो गये थे, उसे 'शतरूपा' के नामसे विख्यात किया। देव विभु स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको पत्नीके रूपमें ग्रहण किया॥ ६—१४॥ शतरूपाके गर्भसे स्वायम्भुव मनुको दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। प्रथम पुत्रका नाम प्रियव्रत और दूसरेका नाम उत्तानपाद रक्खा गया। दोनों अपने अपने कर्मोंसे बहुत विख्यात हुए। कन्याओंमेंसे एकका नाम ऋद्धि और दूसरीका नाम प्रसूति था। पिताने ऋद्धिका रुचिप्रजापतिके साथ और प्रसूतिका दक्ष प्रजापतिके साथ विवाह कर दिया। हे महाभाग! प्रजापति रुचिके भी एक पुत्र और एक कन्या हुई। पुत्रका नाम यज्ञ और कन्याका नाम दक्षिणा रक्खा गया। यज्ञ और दक्षिणामें विवाह हो गया। उनके जो बारह पुत्र हुए, स्वायम्भुव मनवन्तरमें वे "याम" नामक देवता कहे जाते थे॥ १५—१८॥ भास्वर आदि और कितने ही पुत्र यज्ञ और दक्षिणासे हुए थे। इधर दक्ष प्रजापतिसे प्रसूतिके गर्भके द्वारा जो चौवीस कन्याएँ हुईं, उनके यथाक्रम नाम गिनाता हूं, सुनो। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति ये तेरह कन्याएँ जो सुन्दर नेत्रवाली और युवती हो चली थीं और ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, उन्नति, अनुसूया, ऊर्ज्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध थीं, वे यथा क्रम भृगु, महादेव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगणसे व्याह दी गयीं। इस प्रकार उत्तम मुनियोंके साथ दक्षकी कन्याओंका विवाह होगया। उनमेंसे श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको, पुष्टिने लोभको, मेधाने श्रुतिको, क्रियाने दण्ड, नय तथा विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसायको, शान्तिने क्षमाको, सिद्धिने सुखको, और कीर्तिने यशको प्रसव किया। ये ही धर्मकी सन्तान हैं। कामसे अत्यन्त हृष्ट हर्ष नामक धर्मका पौत्र हुआ॥ १६—२८॥ अधर्मकी पत्नीका नाम

टीकाः--मनुकालके अधिदैव और उसका प्रमापक देवपद है। यह भी दैवी सृष्टिका ही विषय है तथा यह सृष्टिकी आदि अवस्थाका ही वर्णन है। प्रजापतियोंकी दैवीसृष्टिके साथ ही साथ यह सृष्टि हुई थी, ऐसा समझा जाय॥ ९--१४॥

हिंसा है, उसके गर्भसे अनृत नामक एक कन्या हुई। अनृत और निऋृतिमें दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होनेपर उनसे नरक और भय नामक दो पुत्र तथा माया और वेदना नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। यथाक्रम वे दोनों कन्याएँ दोनों पुत्रोंके साथ मैथुन करने लगीं। माया और भयके जोड़ेसे प्राणिगणका संहार करनेवाला मृत्यु नामक एक पुत्र और नरक तथा वेदनाके जोड़ेसे दुःख नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। मृत्युसे व्याधि, जरा, तृष्णा, शोक और क्रोध नामक सन्तति हुई। यह सभी दुःखोद्भवा और अधर्म परायण थीं। इस सन्ततिके भार्या या सन्तति कुछ भी नहीं थी, क्योंकि ये सभी ऊद्र्ध्वरेता थे॥ २६—३२॥ हे मुनिवर! मृत्युकी एक दूसरी भार्या थी, उसका भी नाम निऋृति ही था; किन्तु उसे लोग अलक्ष्मी कहते हैं। उससे मृत्युने चौदह सन्तान उत्पन्न किये। मृत्युके आज्ञाकारी ये सभी पुत्र "अलक्ष्मी तनय" के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये जब मनुष्यका विनाशकाल उपस्थित होता है, तब उसे घेरते हैं। मनुष्य पर ये किस प्रकार आक्रमण करते हैं; यह अब मैं बताता हूं, सुनो। प्रथम दश पुत्र तो मनुष्यके दशों इन्द्रियों पर और ग्यारहवां मनपर अधिकार कर लेता है। यही समस्त स्त्री पुरुषोंको अपने अपने विषयोंमें संयोजित करता है। फिर राग-क्रोधादिके द्वारा सब इन्द्रियोंको पछाड़ कर उन्हें अधर्म आदिके साथ मिला देता है। इससे प्राणियोंकी बड़ी हानि होती है। बारहवां मृत्युपुत्र अहङ्कारका आश्रय करके रहता है। तेरहवां बुद्धिको काबूमें कर लेता है। इसीके प्रभावमें आकर पुरुषगण स्त्रियोंके विनाशको प्रवृत्त होते हैं॥ ३३—३७॥ अलक्ष्मीके चौदहवें पुत्रका नाम दुःसह है। यह मनुष्योंके घर घरमें वास करता है। यह कभी अघाता नहीं। सदा भूखा, अधोमुख, नंगा, चीरधारी और कौए जैसा कर्कश शब्द करनेवाला होता है। ज्ञात होता है कि, जान बूझकर समस्त पदार्थोंको भक्षण करनेके लिये ही मानो ब्रह्माने इस तपोनिधिको उत्पन्न किया है। दंष्ट्रा कराल, मुँह बाये हुए और अत्यन्त भयंकर उस दुःसहको समस्त सृष्ट पदार्थोंको भक्षण करनेमें जब उद्यत देखा, तब सर्व ब्रह्ममय, विशुद्ध और जगत्के कारण लोक पितामह ब्रह्माने उससे कहा कि, हे दुःसह! जगत्को भक्षण कर जाना तुम्हें उचित नहीं है। क्रोध छोड़कर तुम शान्त हो जाओ। इस तमोगुणी वृत्तिको हटा दो और रजोगुणके अंशको भी त्याग दो। तब दुःसह बोला,—हे जगन्नाथ। मैं क्षुधासे अत्यन्त कृश और प्याससे बहुत ही दुर्बल हो गया हूं। हे नाथ! मैं किस प्रकार अपनी भूख प्यास बुझाकर अपनी तृप्ति कर लूँ और किस प्रकार बलवान् होऊँ तथा किसका आश्रय करके सुखपूर्वक रहूं, यह कृपा करके मुझे बता दीजिये॥ ३८—४२॥ ब्रह्माने कहा,—हे वत्स! मनुष्योंके घरोंमें ही तुम्हारा वास रहेगा। अधार्मिक लोग ही तुम्हारा बल होंगे। लोगोंके नित्य कर्मोंकी हानि होनेसे ही तुम्हारी पुष्टि हो जायगी। फोड़ा-फुन्सी तुम्हारा वस्त्र होगा। अब

तुम्हारे लिये आहार भी बता देता हूं। जहां कीड़े पड़ गये हों और जो कुत्तोंसे काटा गया हो, वह क्षतका (घावका) स्थान ही तुम्हारा आहार है। जो फूटे बासनमें हो, मुँहकी वायुसे ठण्ढा किया गया हो, जूठा हो, अपक्व (कच्चा) हो, छाना बीना न हो, किसी प्राणीने जिसे चाट लिया हो, जो शुद्ध न किया हो, फटे आसन पर बैठकर किसी व्यक्तिके द्वारा जो खाया गया हो, जो समीप आगया हो, विदिशाओंमें अथवा दोनों सन्ध्या कालोंमें नृत्य, वाद्य और गीतके द्वारा संस्कृत किया गया हो, रजस्वला द्वारा जो छू गया हो, अथवा देखा गया या जूठा किया गया हो, और जो विघ्नोंसे भरा हो, ऐसा प्रत्येक पदार्थ तुम्हारा खाद्य और पेय है। हे दुःसह! तुम्हारी पुष्टिके लिये और साधन भी बता देता हूं॥ ४३—४७॥ जिसका अश्रद्धा पूर्वक हवन किया गया हो, मूर्खोंके द्वारा जो दान किया गया हो, विना जल दिये ही जिसका दान संकल्प हुआ हो, जो अनर्थके लिये किया गया हो, परित्यागके लिये ही जिसका आविष्कार हुआ हो, बड़े विस्मयसे जो अर्पित हुआ हो, जो दूषित हो गया हो या क्रुद्ध और आर्त व्यक्तिके द्वारा समर्पित हुआ हो, जिसका ऐसा ही फल हो अर्थात् जिसके द्वारा क्रोध और आर्ति उत्पन्न हो तथा हे यक्ष! पौनर्भव सन्तान अर्थात् विधवाकी सन्तान, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, जो कुछ आमुष्मिक कर्म करे, वह तुम्हारे वशमें रहेगा और उसीसे तुम तृप्ति लाभ करोगे। हे यक्ष! कन्याका शुल्क ऐंठनेमें जो धनका व्यवहार अच्छी तरह हुआ हो और असत् शास्त्रोंके आधार पर जो क्रियाएं सम्पन्न हुई हों, उनसे तुम्हारी अच्छी पुष्टि होगी। जिसका कोई अर्थ न हो, किन्तु अनर्थकारी हो और सत्य रूपसे अध्ययन न किया गया हो, हे दुःसह! वह तुम्हारी पुष्टिका कारण होगा। तुम्हारी पुष्टिके लिये कौनसा समय उपयुक्त है, यह भी कह देता हूं, सुन लो। जिस समय लोग गर्भिणी स्त्रीके साथ मैथुन करते हों अथवा सन्ध्या और नित्य कर्मका व्यतिक्रम करते हों तथा मनुष्य जब दुष्ट शास्त्रोक्त कार्योंको करते हुए दूषित होते हों, हे दुःसह! उसी समय तुम्हें अभिभवकी शक्ति प्राप्त होगी॥४८—५४॥ पंक्तिभेद (एकको कुछ परोसना और दूसरेको कुछ), वृथा, पाक (अकारण अन्न पकाना) और पाकभेद (एकके लिये कुछ वस्तु बनाना और दूसरेके लिये कुछ और ही) ऐसे ही कार्य करते रहना तुम्हारा कर्तव्य होगा और जहां नित्य गृह कलह होता हो, वहीं तुम रममाण रहोगे। जहां गाय बैल और वाहनके अन्य पशु विना पालन पोषणके वृथा बांध रखते हैं और सुबह शाम जो घर परिष्कृत नहीं किये जाते, वहीं सब लोग तुमसे भय करेंगे। नक्षत्र पीड़ा, ग्रह पीड़ा और त्रिविध उत्पात देख लेने पर भी जो उनकी शान्ति नहीं करेंगे, उन मनुष्योंको तुम अभिभूत करागे। जो वृथा उपोषण करते हों, जूआ खेलते हों और स्त्रियोंके प्रति सदा असक्त रहते हों, जो तुम्हारे सम्बन्धके

कथोपकथनमें सहायक होते हों और विड़ालव्रती (बिल्लीके समान धोखा देनेकी बुद्धि रखने वाले हों, अब्रह्मचारी व्यक्तिसे पढ़े हों, मूर्खके द्वारा यज्ञ कराते हों, अपने मनको काबूमें न रखकर जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परलोकके सुखकी इच्छा रखकर तपोवनमें ग्राम्यभोग विलासमें प्रवृत्त हों और अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गये हों, उनके कर्मों से जो फल मिलना सम्भव हो, हे यक्ष ! वह सब तुमको प्राप्त होगा । तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी कुछ दे रखता हूं, उसे जान लो ॥५५—६१॥ वैश्वदेवके अन्तमें तुम्हारा नाम उच्चारण करके "यह तुम्हारा है" कहकर मर्त्यगण तुम्हें ऊर्जित वलि प्रदान करेंगे । जो व्यक्ति विधिपूर्वक संस्कार किये हुए पदार्थोंका भोजन करता हो, जो भीतर बाहर विशुद्ध, सदा पवित्र और निर्लोभ हो और जिसे स्त्रियां अपने जालमें फँसा न सकती हों, उस घरको तुम छोड़ दोगे । जिस घरमें हव्य कव्यके द्वारा देवता और पितृगण सदा पूजित होते हों, जिस घरमें गृहदेवियों और अतिथियोंका सदा सत्कार होता हो, हे यक्ष ! उस घरमें तुम ठहर नहीं सकोगे । जिस घरमें आबाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष निरन्तर परस्पर प्रेम भावसे रहते हों, उस घरका तुम परित्याग कर दोगे । जिस घरकी कुल कामिनियां प्रेममयी, बाहर भटकनेकी इच्छा न रखनेवाली और सदा लज्जावती हों, उस घरमें तुम्हारा चारा नहीं चलेगा ॥ ६२—६६ ॥ जिस घरमें वयः सम्बन्ध योग्य (जिस उम्रमें जितनेकी जरूरत है) निद्रा और भोजनकी व्यवस्था है, हे यक्ष ! उस घरको तुम्हें छोड़ देना चाहिये, ऐसी मेरी आज्ञा है । हे दक्ष ! जिस घरके पुरुष अत्यन्त दयालु और सदा सत्कार्योंमें निरत हों और जिनके जीवन निर्वाहकी साधन सामग्री साधारण हो, उस घरका तुम्हें त्याग कर देना चाहिये । गुरु, वृद्ध और ब्राह्मणोंके आसन पर आसीन होनेपर भी जिस घरके लोग स्वयं

टीकाः—यह अपूर्व वर्णन वृत्ति राज्यकी सृष्टिका है । यह अलौकिक विज्ञान आर्य सभ्यताके मौलिक सिद्धान्तोंसे भरा हुआ है । यह सृष्टि प्रकरण भी सनकादिकी परमहंस सृष्टि दक्ष आदि प्रजापति और मनु आदि देवपदोंकी सृष्टिकी तरह दैवी सृष्टिका विषय है। इसको अच्छी तरह समझ लेनेसे मनुष्योंको धर्माधर्म रहस्य, काम, अर्थ, धर्म और मोक्षके पथोंका हाल जानकर आर्यसभ्यताकी भित्ति और उसके अध्यात्मलक्ष्यका भी पता लग सकता है । यह वर्णन समाधिभाषासे पूर्ण है । वैदिक सिद्धान्तके अनुसार यह स्थूल मृत्युलोककी सृष्टि चतुर्दश लोकमय एक ब्रह्मांडकी संपूर्ण सृष्टिके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा मात्र है। यह पहिले भली भांति कहा गया है । यह भी भली भांति समझाया गया है कि, यह स्थूल मृत्युलोककी सब अवस्था सूक्ष्म दैवीलोकके आश्रय पर निर्वाहित होती है । इसी कारण प्रत्येक स्थूल भूतके अङ्ग पर्वत, नदी, समुद्र, सोना, चांदी, हीरा, पन्ना आदि सबका अलग अलग अधिदैव अर्थात् रक्षक देवताका होना हमारा शास्त्र स्वीकार करता है । इसी तरह उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज रूपी चतुर्विध भूतसङ्घके प्रत्येक विभागका अलग अलग अधिदैव होना भी आर्यशास्त्र मानता है । पीपल वटसे लेकर चावल, गेहूं आदि सब उद्भिज्जोंकी अलग अलग एक एक देवता रक्षक और चालक है । वेही देवता एक योनिके जीवको

आसनोंपर नहीं आ डटते, हे यक्ष ! उस घरमें तुम कभी न जाना। जिस घरका द्वार वृक्ष गुल्मादिसे छेंका हुआ न हो और जहांके पुरुषोंका कभी मर्मच्छेद न होता हो, वह घर तुम्हारे लिये मङ्गलकारक नहीं हो सकता। जिस पुरुषकी जूठनसे भी देवता, पितृगण, मृत्युलोकके जीव और अतिथियोंकी जीवन यात्राका निर्वाह होता है, उस पुरुषके घरको तुम्हें छोड़ देना चाहिये। जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसा, किसीको ताप न देने वाले और असूयाके वशीभूत हुए न हों, हे यक्ष ! ऐसे पुरुषोंके यहां तुम्हें नहीं जाना चाहिये।

दूसरी योनि तक पहुंचा भी देते हैं। तभी जीवका क्रमविकाश और अभ्युदय होता है। इसी तरह स्वेदज सृष्टिके रोगघ्न और रोगद नाना प्रकारके जीवोंका हाल जिनका रहस्य अब पदार्थवादी कुछ कुछ समझने लगे हैं, हमारे पूर्वज त्रिकालज्ञ ऋषिगण पहिलेसे ही जानते थे। ऐसे ही महामारी आदिके स्वेदज कीट और नाना पीड़ा देनेवाले कीटोंसे लेकर भगवती गङ्गा नदी तकके पवित्र करनेवाले और सब रोगोंको नाश करनेवाले रोगघ्न कीटों तकका रहस्य वे त्रिकालदर्शी महर्षिगण जानते थे। ऐसे ही उद्भिज्ज, ऐसे ही स्वेदज और मयूर, कोकिल, काक, हंस, कबूतर, सर्प आदि सब अण्डज सृष्टि और हाथी, घोड़ा, महिष, गौ आदि सब जरायुज सृष्टिके जितने लाखों भेद हैं, उनकी सब अलग अलग जीवजातिका चालक और रक्षक एक एक देवता इन्द्रादि देवताओं द्वारा अलग अलग अपने अपने कामों पर नियत किया जाता है। यदि जीव संख्या बढ़ती है, तो पदोंकी संख्या बढ़ती और जीव संख्या घटती है, तो इन पदोंकी संख्या भी घट जाती है। यह सभी स्थायी देवपद और सूक्ष्म दैवी सृष्टिका विषय है। जिसकी कल्पना करना भी आजकलके पदार्थविद्यावादी साइण्टिस्टोंको असम्भव है। क्योंकि उनकी दृष्टि केवल परमाणु तक पहुंचती है। स्थूलके पीछे जो बड़ा भारी दैवीराज्य है, उसकी कल्पना भी वे नहीं कर सकते। जिस प्रकार यह सब दैवीसृष्टि रहस्यमयी है, उसी प्रकार वृत्तिराज्यकी सृष्टि भी अति रहस्यमयी है। पुण्य, पाप, सत्-असत्, धर्म-अधर्म आदिको स्थायी रखनेवाला वृत्तिराज्य है। अन्तःकरणका स्वरूप भी वृत्तिमय है और अन्तःकरण ही सबका चालक है। ऐसा वृत्तिराज्य दिन और रातके उदाहरणके अनुसार अक्लिष्ट और क्लिष्टरूपसे दो भागोंमें विभक्त है। अक्लिष्ट वृत्तिके चालक देवतागण और क्लिष्ट वृत्तिके चालक असुरगण हैं। ऊपर कथित यक्ष-राक्षसादिका जो वर्णन है, वह असुरी सृष्टिसे ही सम्बन्ध रखता है। देवता और असुर दोनों ही दैवी सृष्टिके अङ्ग हैं। हमारा पिण्ड जैसा मनुष्य पिण्ड कहाता है, वैसा देवताओंका देवपिण्ड कहाता है। देव पिण्डधारी नाना देवता और नाना असुर इस स्थूल मृत्युलोकमें नाना धर्म और अधर्मकी क्रियाके सञ्चालक रूपसे नियुक्त भी रहते हैं। यदि कभी दैवी जगत्में देवता हार जाते और देवासुर संग्राममें असुर जीत जाते हैं, तो इस मृत्युलोकके देवपदों पर भी असुरोंका पूर्ण अधिकार हो जाता है। असुरगण युद्धमें जय लाभ करने पर केवल भूः भुवः स्वः इन्हीं तीनों लोकों पर ही अपना अधिकार जमा सकते हैं, आगे नहीं जा सकते। स्वर्गलोकमें देवराजकी राजधानी है। इस कारण वहीं तक असुरोंकी गति हो सकती है। आगेके उन्नतलोकोंमें उनका प्रवेश असम्भव है। यही देवासुर राज्यका संक्षिप्त रहस्य है। जब अन्तःकरणकी वृत्तियां ही उन्नत मनुष्य योनिमें धर्म और अधर्म, सत् और असत् तथा ज्ञान और अज्ञानकी क्रियाएं उत्पन्न किया करती हैं, तो उन वृत्ति समूहोंकी शक्ति सर्वोपरि है। जब उद्भिज्ज, स्वेदज आदि जड़ योनिके अलग अलग चालक देवता हैं, तो सूक्ष्म और अति

जो रमणी सर्वदा पति सेवामें तत्पर रहती है और असती स्त्रियोंका साथ नहीं करती तथा कुटुम्बियों एवं पतिदेवके भोजन करके बचे हुए अन्नसे जीवनकी रक्षा करती है, हे यक्ष ! ऐसी ललनाकी ओर तुम आँख उठाकर भी नहीं देखना ॥ ६७—७३ ॥ जो द्विज यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानमें सदा आसक्त रहते हैं तथा याजन, अध्यापन और प्रतिग्रहके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंसे हे दुःसह ! तुम कभी छेड़छाड़ न करो । जो क्षत्रिय सर्वदा दान, अध्ययन और यज्ञ करनेमें उद्युक्त रहते हैं और अपनी पवित्र शस्त्र जीविकाके द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, ऐसे क्षत्रियोंको तुम छोड़ दो । जो वैश्य दान, अध्ययन और यज्ञ कर्मके साथ ही साथ पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकार्यके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, ऐसे निष्पाप वैश्योंको तुम त्याग दो । जो शूद्र यज्ञ, दान और ब्राह्मण सेवामें तत्पर रहते हैं और ब्राह्मणादिकी सेवासे अपना पोषण करते हैं, हे दुःसह ! ऐसे शूद्रोंके पास तुम कभी न जाओ । जहां विद्वान् लोग घरमें बैठकरही श्रुति-स्मृतिके अविरोधी कार्योंसे जीविका निर्वाह करते हैं, जिनकी स्त्रियां उन्हींकी अनुगत होती हैं, जिनके पुत्र देवता, गुरु और पितरोंकी पूजा करते हैं तथा जहांकी सब स्त्रियाँ पति सेवा किया करती हैं, हे यक्ष ! वहां तुम्हारी गति नहीं है; वहां तो सदा समृद्धि बनी रहेगी ॥७४—७६॥ हे यक्ष ! जो घर सुबह दुपहर और सन्ध्याकालमें अच्छी तरह झाड़ा बहोरा, लीपापोता और जलसे धोया जाता है, उसे देखनेमें भी तुम समर्थ नहीं हो सकते । जिस घरकी सेजपर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ती अर्थात् जिस घरके लोग सूर्योदयके पहले ही उठ जाते हैं, जिस घरमें अग्नि और जल सदा विद्यमान रहता है और घरमें अच्छी धूप आती है, वहीं लक्ष्मीका निवास रहता है। जिस घरमें चन्दन, वीणा, मधु, घृत, ब्राह्मण और ताम्रपात्रोंका व्यवहार होता है, वहां तुम्हारा आश्रय हो नहीं सकता । जिस घरमें कांटोंका वृक्ष, निष्पावकी लता, विधवासे उत्पन्न हुई पत्नी और वल्मीक (बांबी) बना हो हे यक्ष वह तुम्हारा ही घर है । जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्रियां, तीन गायें, अन्धकार, काठ और अग्नि रहती हो, उस घरमें तुम्हारा निवास रहेगा । हे यक्ष ! जिस घरमें एक छाग (बकरा), दो बछिया, तीन गायें, पांच भैंसे, छः घोड़े और सात हाथी हों, उसको तुम शीघ्र ही शोषण कर सकोगे अर्थात् तुम उसे नष्ट कर दोगे ॥८०—८५॥ कुदारी, पिटनी कची तथा थाली, लोटा आदि पात्र जिस घरमें बिखरे पड़े हों, वही तुम्हारे आश्रयका

बलशाली वृत्ति समूहोंकी शृङ्खलाकी व्यवस्था रखनेवाले देवता और असुर अलग अलग होना स्वतःसिद्ध है । वृत्तियां उनका अध्यात्मरूप हैं, जैसा कि, ऊपर कहा गया है । उनके अधिदैव भी अलग अलग हैं जैसा कहा गया है और उनके अधिभूत रूप उनके क्रिया समूह हैं ॥ ६७—७३ ॥

स्थान है। जिस घरमें मूसल, ओखली, झाड़ू और औदुम्बरकी स्त्रियां उपेक्षा करती हैं, वह घर तुम्हारे लिये उपकारक है। जिस घरमें पकेपकाये या कच्चे अन्नका दुरुपयोग होता है और शास्त्र मर्यादाका उल्लंघन होता है, हे दुस्सह! उस घरमें तुम जितना चाहे, विचरण किया करो। जिस घरमें थाल ढांकते समय करछुलसे अग्नि दिया जाता है, वहां समस्त अरिष्टोंका आवास रहता है। मनुष्यकी हड्डी अथवा शव जिस घरमें दिनरात पड़ा रहे, वहीं तुम्हारा और अन्यान्य राक्षसोंका निवास रहेगा ॥ ८०—९० ॥ जहांके लोग बन्धु, सपिण्ड और सोदकोंके उद्देश्यसे पिण्ड अथवा जल दान नहीं करते, वहीं तुम पहुंच जाया करोगे। जहां पद्म और महापद्म संख्यक धन विद्यमान हो, जहांकी युवती स्त्रियां नित्य मोदक (मिष्टान्न) भक्षण करती हों और जहां वृषभ और ऐरावत (सब गुणोंसे युक्त हाथी) झूमता हो, उस घरमें तुम प्रवेश नहीं करना। युद्ध कालके न रहते हुए भी जहां अशस्त्र देव विग्रह सशस्त्र कल्पना करके पूजे जाते हैं, उस मन्दिरमें तुम प्रवेश नहीं करो। इसी तरह जहां पुरवासी तथा नागरिक गण सदासे चले आये महोत्सव किया करते हैं, वहां तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। जो सूपसे हवा लेते, घड़ेसे, निचोड़े हुए वस्त्रके जलसे अथवा पैरके नखोंसे छुए हुए जलसे स्नान करते हैं वे कुलक्षणी लोग होते हैं; उनके पास तुम जा सकते हो। जो लोग देशाचार, लोकाचार, समय ज्ञाति धर्म, जप, होम, मङ्गलकार्य देव पूजा और उत्तम शौचाचारका पालन करते हैं, तुम्हारा उनका साथ हो नहीं सकता। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विजवर! दुःस्सहको इस प्रकार आदेश कर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्हित होगये। दुःसह भी ब्रह्माके अनुशासनके अनुसार आचरण करने लगा ॥ ९१—९७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डे महापुराणका यक्षानुशासन नामक पचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीक—ये सभी बातें वृत्ति राज्य सम्बन्धीय सृष्टिकी हैं, जैसा पहिले कहा गया है। धर्मके सम्बन्धसे लक्ष्मी और अधर्मके सम्बन्धसे अलक्ष्मीका होना स्वतः सिद्ध है। अलक्ष्मीकी सन्ततिके सम्बन्धका ऊपर लिखित उपदेश भी स्वतः सिद्ध है। ऊपर लिखित वर्णनके द्वारा आर्य सभ्यताका दिग्दर्शन होता है। कुछ आर्य सभ्यताके अनुकूल शकुनोंका वर्णन भी ऊपर आया है, जिसे गार्हस्थकी भलाई चाहनेवालोंको अवश्य मानना उचित है। दुःस्सह नामक यक्षके अनुकूल जो बातें हैं, वे अधर्म अतः दुःस्सहके सम्पर्कसे धार्मिक व्यक्तियोंको बचे रहना उचित है ॥७४—९७॥

इक्यावनवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—दुःसहकी भार्याका नाम निर्माष्टी था, जो यमकी कन्या थी। यमकी पत्नी जब ऋतु मती थी, तब उसने चाण्डालका दर्शन कर लिया था। इस कारण उस ऋतुकालमें उसे जो गर्भ रहा, उसीसे निर्माष्टीने जन्म ग्रहण किया था। दुःसहके साथ निर्माष्टीका विवाह हो जाने पर उससे जगद्व्यापी, अति भयंकर आकृतिवाली सोलह सन्तानें हुई। उनमेंसे आठ पुत्र और आठ कन्याएं थीं। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अङ्गधुक, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा और शस्यहा ये पुत्रोंके और नियोजिका-विरोधिनी, स्वयंहारकारी, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा बीजहरा और विद्वेषिणी ये कन्याओंके नाम थे। आठों पुत्रियां लोगोंका अत्यधिक अनिष्ट करने वाली हैं; जिनमें स्मृतिहरा और बीजहरा ये दो तो बहुतही भयानक हैं॥ १—६॥ हे द्विजोत्तम! अब मैं उक्त आठों कुमारोंके कर्म और उनके किये हुए दोषोंके प्रशमनार्थ उपायोंका विवरण कहता हूं, सुनो। दन्ताकृष्टि सोये हुए बच्चोंके दांतोंमें बैठकर उनकी घिग्घी बांध देता है, जिससे उनके प्राण व्याकुल हो जाते हैं। ऐसा होनेपर बच्चोंके बिछौने पर और दांतोंपर सफेद सरसों छींट देनी चाहिये, उन्हें औषधिस्नान कराना चाहिये, उनके पास बैठकर सत् शास्त्रों (सप्तशती, शिवकवच, रामरक्षा आदि) का पाठ करना चाहिये अथवा ऊंट, कण्टक (साही) या गेंडेकी हड्डी और टसर (अण्डी) का वस्त्र पहिना देना चाहिये, इससे बालकोंकी बाधाका प्रशमन हो जाता है॥ ७—१०॥ दूसरा पुत्र तथोक्ति सदा, 'तथास्तु, तथास्तु' कहा करता है। मनुष्योंके शुभाशुभको गढ़नेके कामपर यह नियुक्त है। मनुष्य असत् इच्छा करे या सत्, शुभवचन कहे या अशुभ, यह तुरन्त 'तथास्तु' कह देता है और फिर वैसीही घटना हो जाती है। अतः बुद्धिमान पुरुषोंको उचित है कि, वे भविष्यत्के सम्बन्धमें सदा मङ्गलवाणी कहें और शुभ इच्छा किया करें। यदि भूल चूकसे अमङ्गलवाणी निकल पड़े या अशुभ इच्छा हो जाय, तो चराचर प्रपञ्च जगत्के गुरू ब्रह्मा, भगवान् जनार्दन अथवा अपनी कुल देवताका नाम स्मरण करना चाहिये। इससे उसकी शान्ति हो जाती है। तीसरे पुत्रका नाम परिवर्त है। यह एक स्त्रीका गर्भ दूसरी स्त्रीके गर्भमें पहुंचा देता है। इसी तरह मनुष्य एक बात कहना चहता है, तो उससे कुछ औरही बात कहा देता है और इसीसे हर्ष पाता है। रक्षोघ्न मन्त्रके पाठ और सफेद सरसोंके उपयोगसे इसकी शान्ति होती है।

चौथा पुत्र अङ्गधुक है। यह मनुष्योंके अङ्गोंको फड़काकर अथवा रोमाञ्चित कर शुभाशुभकी सूचना देता है। उसकी शान्तिके लिये शरीरमें थोड़ा कुश चुभा देना चाहिये ॥ ॥११-१५॥ पांचवां पुत्र शकुनि है। यह काक आदि पक्षियों और कुत्ता, सियार आदि पशुओंके शरीरमें बैठकर मनुष्योंको शुभाशुभ का ज्ञान कराता है। जब इस प्रकार कोई अशुभ सूचना उक्त पशु पक्षियों द्वारा मनुष्य को मिले, तो उसे आरम्भित कार्यको रोक देना चाहिये और शुभ सूचना मिले, तो तुरन्त कर देना चाहिये; ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने ही कहा है। गण्ड प्रान्तरति नामक छठा पुत्र केवल आधे मुहुर्त्तही किसीके गण्डस्थल पर बैठकर समस्त कार्यारम्भ, माङ्गल्य कर्म और अनसूयता को भक्षण कर जाता है। हे द्विजोत्तम! इसकी शान्तिके लिये ब्राह्मणों का आशीर्वाद, देवतास्तुति, गोमूत्र और सफेद सरसों से स्नान, उस समयके ग्रह नक्षत्रोंकी पूजा, धर्मोपनिषद् श्रवण, शास्त्रदर्शन और जन्मकी अवज्ञा करना उपकारक होता है। ॥१६-२०॥ गर्भहा नामक सातवां पुत्र स्त्रियोंके गर्भको पचा डालता है। इसकी पीड़ा न हो, इस लिये स्त्रियों को सदा विशुद्ध (साफ सुथरा) रहना चाहिये, अच्छे आसिद्ध मन्त्रों (कवचादि) को लिखना चाहिये, माल्यादि धारण करना चाहिये, साफ सुथरे घरमें रहना चाहिये और परिश्रम करना छोड़ देना चाहिये। हे ब्राह्मण! इसी तरह शस्यहा आठवां पुत्र सब खेती को बरबाद कर देता है। इसकी शान्तिके लिये फटी जूती खेतमें रखदेना, जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रखकर खेतमें घूमना, चाण्डाल को खेतमें ले जाना, खेतके बाहर बलि प्रदान करना तथा सोमाम्बु मन्त्र का पाठ करना चाहिये। दुःसहकी प्रथम कन्या नियोजिका है। यह मनुष्योंको पर स्त्री गमन और पर द्रव्यापहरणमें प्रवृत्त करती है। इसकी शान्तिके लिये पुण्य ग्रन्थोंका पाठ और क्रोध लोभादिका त्याग करना चाहिये। यदि किसीके द्वारा प्रलोभन दिया जाय या ताड़न किया जाय, तौभी क्रोधादिके वशीभूत नहीं होना चाहिये। विचक्षण पण्डितोंको ऐसे समयमें विचार करना चाहिये कि, परदारागमनादि कुकर्मोंकी ओर हमें नियोजिकाही नियोजित कर रही है। ऐसा करनेसे असत् कार्यसे चित्त हटजाता है ॥ २१—२८ ॥ दूसरी कन्या विरोधिनी है। यह अत्यन्त प्रेमी दम्पतियों तथा सुहृद्, बन्धु, पिता, माता, पुत्र तथा आत्मीय स्वजनोंमें विरोध करा देती है। इसकी शान्तिके लिये अतिशय धैर्यका अवलम्बन कर शास्त्रविहित आचार पालन और बलिकर्म करना चाहिये। तीसरी कन्या स्वयंहारिका है। खलियान और घरके धान्यको नष्ट कर देती है। गौके स्तनसे दूध और दूधसे घी चुरा लेती है। नाना सुन्दर और मूल्यवान् वस्तुओंकी शोभाको बिगाड़ देती है। रसोईके घरसे आधा पका हुआ और पका पकाया परोसा हुआ अन्न भी ले जाती है और तो क्या, भोजनके समय भोजन करनेवालेके साथ ही बैठ कर जूठा खाती है। विशिष्ट

कर्मस्थान (कारोबार, कारखाना आदि) से उत्तम द्रव्य हरण करती है। सुंदरी स्त्रियोंके स्तनोंसे दूध, तिलसे तैल, कलवरियासे मद्य, कुसुम्मादि पुष्पोंसे रङ्ग और कपाससे धागा चुरा लेती है। इसीसे इसका नाम स्वयंहारिका है। इसकी शान्तिके लिये कृत्रिम स्त्रीको बनाकर शिखण्डियोंका द्वन्द्व करा देना चाहिये, लक्ष्मीकी रक्षाके लिये त्याज्य वस्तुओंको छोड़कर ग्राह्य (पवित्र) वस्तुओंका होम, देवपूजा और धूपदान करना चाहिये तथा दुग्धादिके भोजन भस्म (राख) से शुद्ध कर लेने चाहिये ॥ २६–३८ ॥ चौथी कन्याका नाम भ्रामणी इस कारण है कि, एक स्थानमें बसे हुए मनुष्योंके हृदयोंमें उद्वेग उत्पन्न कर उन्हें इधर उधर भटकाया करती है। इसकी शान्तिके लिये आसन शय्या और भूमिपर सफ़ेद सरसों छींट देने चाहिये और किसी पापकार्यमें चित्तके प्रवृत्त होने पर यह विचार कर कि, हमें यह दुष्ट भ्रामणी ही भ्रममें डाल रही है, समाधियुक्त होकर भूमिसूक्तका पाठ करना चाहिये। पांचवी कन्या ऋतुहारिका ऋतुमती स्त्रियोंके रजको हरण कर लेती है। इसका शान्तिके लिये पर्वत शिखरों और तीर्थोंमें मन्दिर निर्माण, नदी सङ्गममें स्नान, प्रातः स्नान, और सुवैद्यसे अच्छी औषधिका सेवन करना लाभ कारक है। छठी स्मृतिहारिका वराङ्गनाओंकी स्मृतिको हरण कर लेती है। इसकी शान्तिके लिये उत्तम परिष्कृत और रमणीय स्थानमें निवास करना चाहिये। सातवीं कन्या बीजापहारिणी है। यह स्त्रियों और पुरुषोंकी रतिको बिगाड़ देती है। इसकी शान्तिके लिये पवित्र अन्नका भोजन और स्नान, करना चाहिये ॥ ३९–४६ ॥ आठवीं कन्या द्वेषिणी है। यह सर्वलोकभयङ्करी कही गयी है। यह स्त्री पुरुषोंमें बिगाड़ करा देती है। इसकी शान्तिके लिये मधु, दुग्ध और घृतसे युक्त तिलके द्वारा मित्रविन्द नामक यज्ञ करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! इन सब कुमार-कुमारियोंको सब मिलाकर अड़तीस सन्तानें उत्पन्न हुई। उनके नाम, कर्म और उन कर्मोंसे होनेवाले अशुभ फलोंकी शान्तिके उपाय अब मैं कथन करता हूँ, सुनो। दन्ताकृष्टिके विजल्पा और कलहा नामकी दो कन्याएं हैं। विजल्पा मनुष्योंसे अवज्ञान पूर्ण, मिथ्या और दुष्ट वचन कहाती है। इसकी शान्तिके लिये संयम होकर उसीका ध्यान करना चाहिये। कलहा मानव संसारमें सदा कलह कराया करती है। यही कुटुम्ब नामकी कारणभूत है। इसकी शान्तिके लिये पूजोपहार प्रदान और मधु, घृत, दुग्धयुक्त दूर्वाङ्कुरोंको होम करना चाहिये। फिर इस प्रकार उपासना वाक्य कहने चाहिये,—"कूष्माण्ड, यातुधान आदि सब गणों सहित मेरे द्वारा पूजित होकर सन्तोषको प्राप्त करें और माता सहित बालकोंकी, विद्याकी, तपस्याकी, यमनियमादिकी, कृषिकी और वाणिज्य व्यवसायकी शान्ति करें। इन कामोंमें विघ्न न डालें और श्रीमहादेवकी कृपा तथा आज्ञासे मानवोंके प्रति सभी शीघ्र प्रसन्न हों। सभी सन्तुष्ट होकर कुकर्म, दुराचरण और महापा-

तकोंसे उत्पन्न होनेवाले विघ्नोंका नाश करें और सबके अनुग्रहसे उद्वाह्व आदि समस्त मङ्गल कार्योंके विघ्नोंका विनाश हो । दोनों अश्विनीकुमार, समुद्र, सूर्यदेव, अग्निनारायण और वासुदेव हमारे पुण्यकार्योंके अनुष्ठानमें, गुरु-देवादिके अर्चनमें, जप-यज्ञ आदि पवित्र कार्योंमें चतुर्दश यात्रामें, धनके सम्बन्धमें और वृद्धों, बालकों, स्त्रियों तथा पीड़ित व्यक्तियोंके विषयमें सर्वदा शान्ति बनाये रहें ॥ ४७—६० ॥ तथोक्तिके कालजिह्वनामक एक पुत्र है, जो ताड़के वृक्षपर रहता है। यह माताओंके गर्भमें जाकर नाना प्रकारकी पीड़ाएँ देता है। परिवर्तके विरूप और विकृत नामक दो पुत्र हैं। ये दोनों पेड़ोंकी डारपर या परिखा, परकोटा और समुद्रका आश्रय करके रहते हैं। गर्भिणियोंके गर्भका परिवर्तन करना इनका काम है। अतः हे क्रौष्टुकि ! गर्भिणी स्त्रियों को वृक्ष, पर्वत परिखा, प्राकार और महोदधिको स्पर्श नहीं करना चाहिये । अङ्गधुकको पिशुन नामक पुत्रकी प्रप्ति हुई। जिनका मन वशमें नहीं रहता ऐसे, मनुष्योंकी हड्डियों और रगोंमें घुसकर उनका बल यह पिशुन डिकार जाता है। शकुनिके बाज, कौवा, कबूतर, गीध और उल्लू ये पांच पुत्र हुए। इन्हें सुर और असुर दोनोंने ग्रहण किया। बाजको मृत्युने, कौवेको कालने, उल्लूको निर्ऋतिने, गीधको व्याधिने और कपोतको स्वयं व्याधीश्वर यमने अपना लिया ॥ ६१—६८ ॥ ये सभी पापोंको उत्पन्न किया करते हैं। अतः श्येन आदिको अपने सिरपर मँडराते हुए देखनेपर आत्मरक्षाके लिये शांति करनी चाहिये। जिस घरमें ये अपना घोंसला बनावें या अण्डा दें, उस घरको छोड़ देना चाहिये। श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक जिस घरमें घुसते हैं उस घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु अवश्य होती है। अतः ऐसे घरको छोड़ कर इसकी शान्ति करनी चाहिये स्वप्नमें कबूतरका देखना भी अमङ्गलकर होता है। गण्डप्रान्तरतिके छः पुत्र हैं। ये स्त्रियोंके

टीकाः—अन्तर्जगत किस प्रकारसे देवता, देवी असुर और आसुरियोंके द्वारा चालित होता रहता है; जहां कोई कार्य (स्थूल-क्रिया अथवा मानसवृत्तिरूपसे) हो, उसके साथ उसके अधिदैवका सम्बन्ध भी रहता है, जहां अध्यात्म है और जहां अधिभूत है, वहां अधिदैव भी है; मृत्युलोकमें जैसा देवताओंका अभाव है, वैसा असुरोंका भी रहना सम्भव है; जैसे नाना जीव जगत् आदिके चालक देवता होते हैं, वैसे ही सूक्ष्म वृत्ति राज्यके रक्षक भी देवता या असुर होते हैं; दैवीराज्यके साथ शास्त्रोंमें कहे हुए शकुनोंका जो सम्बन्ध बताया गया है, वह मिथ्या नहीं है; इत्यादि बातें ऊपर कथित विज्ञानसे भलीभांति सिद्ध होती हैं। दैवी राज्यको पदार्थवादी साइंटिस्टगण अपने स्वप्नमें भी अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि स्थूल राज्यसे दैवी सूक्ष्म राज्य एकबारगी परे रहनेसे और स्थूलमें फंसी हुई बुद्धि सूक्ष्म दैवीराज्यको समझनेमें असमर्थ होनेसे स्थूलवादी पदार्थ विद्याके जानने वालोंको सूक्ष्म दैवी राज्यका पता लग ही नहीं सकता। त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंने पहिले योगयुक्त होकर दैवी राज्यका पता लगाया था और तब उन्होंने आर्य्यजातिके उपयोगी आयुर्वेद, ज्योतिष, शकुन, सामुद्रिक आदि विद्याओंका आविष्कार किया था ॥ १-६० ॥

आर्तवमें रहा करते हैं। उनका निवास काल बताता हूं, श्रवण करो। स्त्रियोंके ऋतुमती होनेपर प्रथम चार दिन, ग्यारहवें और तेरहवें दिन, श्राद्धके दिन, दान कार्यके दिन और समस्त पर्वके दिनोंमें तथा प्रायः दिवाकालमें रजस्वलाओंके रजमें रमे रहते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको उक्त दिनोंमें तथा कभी दिवाकालमें स्त्री गमन नहीं करना चाहिये ॥६९—७५॥ गर्भ हन्ताके निघ्न नामक एक पुत्र और मोहिनी नामकी एक कन्या हुई। निघ्न तो गर्भमें प्रवेश कर गर्भको खा जाता और मोहिनी मोह प्रदान करती रहती है। उसी मोहके कारण सर्प, मण्डूक (दादुर), कछुआ, सरीसृप आदि जन्तु और विष्ठा उत्पन्न होती है। गर्भिणी स्त्री यदि छः मासतक मांस भक्षण करे, असंयत रहे, रातमें वृक्ष तले अथवा त्रिमुहानी या चौमुहानीमें निवास करे, श्मसान आदि उत्कट स्थानोंमें जावे, बिना ओढ़नीके घूमे और रात्रिमें रोवे, तो निघ्न तुरन्त उसके उदरमें प्रवेश कर जाता है। शस्य-हन्ताके क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ। वह छिद्र देखकर ही खेतोंको बढ़ने नहीं देता। जो व्यक्ति अमङ्गल दिनमें अतृप्त होकर खेतमें बीज बोता है, उसके खेतमें क्षुद्रक ऊधम मचाने लगता है॥७६—८१॥ इसकारण सुप्रशस्त दिनमें चन्द्रकी पूजा करके प्रसन्नचित्तसे कृषिकार्य और बीज बोनेका कार्य करना चाहिये। दुःसहकी नियोजिका नामकी कन्याके प्रचोदिका नामकी चार कन्याएँ हुईं। वे सभी सदा प्रमत्त, यौवनमद दर्पित और दुर्विनीतभावसे अधर्मको धर्मरूपसे, अनर्थको अर्थरूपसे, अकामको कामरूपसे और अमोक्षको मोक्षरूपसे अपनाकर मनुष्योंमें उनकी पहुंच कर देती और उनके नाना अशुचिरूप दिखाकर मनुष्योंका भया-नकतासे नाश करती है। पूर्वोक्त आठों कन्याओंके चक्करमें आकर मनुष्य अपने पुरुषार्थ को छोड़कर मारे मारे फिरा करते हैं। उदुम्बरमें, नक्षत्रके सन्धिकालमें और धाता-विधाताको जब पूजा नहीं चढ़ायी जाती, तब वे घरमें घुसती हैं। भोजन और जलपान करते समय वे दल-बल सहित नर-नारियोंमें संक्रमित होती हैं ॥ ८२—८८ ॥ विरोधिनीके चोदक, ग्राहक तमःप्रच्छादक नामक तीन पुत्रोंकी करतूतें कहता हूं, वह भी सुन लो। जहां मूसल और उखली दीपकके तेलके संसर्गसे दूषित होती अथवा लाँघी जाती है, जहां स्त्रियोंकी जूतियाँ और आसन लाँघे जाते या खराब किये जाते हैं, जहां पैरसे आसन, सूप और चलनी ठुकरायी जाती है, जहां लीपी हुई भूमिकी पूजा किये बिना ही विहार किया जाता है और जहाँ करछुलसे अग्नि अन्यत्र ले जाया जाता है, ऐसे स्थानोंमें विरोधिनीके

टीका—गृध्र, कौवा, कपोत आदि पक्षियोंका सम्बन्ध इस सृष्टि प्रकरणसे देखकर शंका हो सकती है। अतः समाधान यह है कि उक्त जीवोंके अधिदैव देवता और उनके सम्बन्धसे शकुनके विषयमें इस वर्णनको समझना उचित है। आसुरी सूक्ष्म सृष्टिके साथ एक ओर वृत्तिराज्य और दूसरी ओर जीव जन्तु आदि और नाना शकुनोंका मिश्र सम्बन्ध योगयुक्त आचार्योंने बताया है ॥६९—७५॥

पुत्र अपना भरपूर पराक्रम दिखाया करते हैं। चोदक स्त्री पुरुषोंकी जिह्वापर बैठकर उससे झूठ-साँच कहवाया करता है और घरमें बड़ी पिशुनता फैला देता है। ग्राहक बड़ा धूर्त है। वह लोगोंके कानों पर चढ़ाई करके उन (सच्चे-झूठे) वाक्योंका ग्रहण करता है ॥८६-६४॥ तमः प्रच्छादक मनुष्योंके मानस पर आक्रमण कर उसे तमोंगुणसे आच्छादित करता है, जिससे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। स्वयंहारीके सर्वहारी, अर्द्धहारी और वीर्यहारी नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों अपवित्र घरोंमें, जहाँ आचार पालन न होता हो ऐसे कुटुम्बमें, जिसमें विना पैर धोये लोग घुस जाते हों, उस पाकशालामें, खलियानोंमें, गाय-भैंसोंके बाड़ोंमें आर जिस घरमें विद्रोह बढ़ गया हो उस घरमें अन्याय रूपसे विहार करते हैं। ग्रामणीके काकजङ्घ नामक एक पुत्र है। उसके घरमें पैठ जानेसे घरका कोई प्राणी रति नहीं कर पाता। जो व्यक्ति भोजनके पश्चात् सङ्गीत करता है, मित्रतामें जो गाने या हँसने लगता है, सन्ध्याकालमें मैथुनके लिये उत्सुक हो जाता है, उसपर काकजङ्घ आक्रमण करता है ॥ ६५-१०० ॥ ऋतुकालमें हारिणीके तीन कन्याएँ हुई थीं। उनके नाम थे,—कुचहरा, व्यञ्जनहारिका और जातहारिणी। जिन स्त्रियोंका विवाह सम्पूर्ण रूपसे न हुआ हो या विवाहकालका अपगम हो गया हो, कुचहरा उनके कुचोंको बढ़ने नहीं देती। श्राद्धादि कार्य भलीभांति न कर और माताकी पूजा किये विना ही जिस कन्याका विवाह कर दिया जाता है, व्यञ्जन हारिका उसके व्यञ्जनोंको हरण कर लेती है। सौरीके घरमें अग्नि, धूप, जल, दीप शस्त्र, मूसल, भस्म और सरसों न रखनेसे जातहारिका वहां पहुंचकर नवजात शिशुको वहांसे उठा ले जाती है और उसी समय उत्पन्न हुए किसी दूसरे बच्चेको उसके स्थानमें रख जाती है। अतः मांस खानेवाली उस भयंकर जात हारिकासे सौरीके घरमें बालककी सदा रक्षा करनी चाहिये। उसके पुत्र

टीका—यह आचारके साथ आसुरी सृष्टिका सम्बन्ध दिखाया जाता है। किस आचारसे किस किस प्रकारकी आसुरी शक्तिके बढ़नेका सम्भव है, वह सूक्ष्म सृष्टि प्रकरणके साथ मिलाकर कहा गया है। योगयुक्त अन्तःकरणवाले त्रिकालदर्शी महर्षियोंका अन्तःकरण कैसे अलौलिकक प्रत्तक्ष द्वारा बाहरसे भीतर तक, स्थूलसे सूक्ष्मतक, शरीर राज्यसे वृत्तिराज्य तक और स्थूल सृष्टिसे दैवी सृष्टि तक अनायास देख सकते थे, उसीके ये कुछ उदाहरण हैं, जो आर्य जातिकी प्राचीन सभ्यता और उनके आचारके साथ मिलाकर कहे गये हैं ॥८९—९४॥

टीका—यह सब वर्णन आर्य सदाचार पोषक और अनाचार रोधक है। आर्य सभ्यताका यह नमूना बताने वाला है। डाइनों (लीकाओं) की उत्पत्तिके साथ वृत्तिराजका संबंध भी सूक्ष्म विज्ञान मूलक है। मनोबल द्वारा कौशलपूर्ण यत्न करके मनुष्य मनुष्यको हानि पहुंचा सकता और मार भी डाल सकता है। जिस मनके द्वारा आदि सृष्टिकालमें सब प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई थी, उस मनके द्वारा डाइनें बालक अथवा

का नाम प्रचण्ड है। लोगोंकी स्मृति शक्तिको नष्ट कर देता है, जिससे वे अपने मनको काबूमें नहीं रख पाते। इससे उसे उनका हृदय अपने वसके लिये सूना मिल जाता है ॥ १०१—१०८ ॥ उसके पौत्रसे लाखों करोणों लीक (डाइनें) उत्पन्न हुई थीं। दन्तपाशाति भीषण आठ चाण्डाल योनियां भी इस प्रचण्डके वंशसे ही निकली हैं। चाण्डाल जातिके लोग और डाइनें क्षुधासे व्याकुल होकर एक दूसरेको खानेके लिये लौड़ने लगीं, तब प्रचण्ड ने विचवई करके उनको आज्ञा दी कि, जो स्त्री चाण्डालके घरमें अथवा किसी दूकानमें प्रसव करेगी, उसकी सब सन्ततिको लीकाएँ नाश कर डालेंगी और आजसे इन डाइनोंको जो आश्रय देंगे उनको मैं ऐसा दण्ड दूंगा, जिससे अधिक कठोर दण्ड हो नहीं सकता। स्त्री पुरुषोंकी बीजापहारिणीके वातरूपा और अरूपा नामकी दो कन्याएँ हुई। स्त्री पुरुष के मैथुनके ठीक निषेधकालमें वातरूपा शुक्रमें घुसकर स्त्री पुरुषोंमें वात शुक्रत्व दोषको उत्पन्न कर देती है। ॥ १०६—११५ ॥ जो व्यक्ति विना भोजन किये स्त्री सम्भोग करता है, या किसी वियोनिमें मैथुनासक्त होता है, अरूपा उसको निर्जीव कर डालती है। भ्रुकुटी कुटिला नाना विद्वेषिणीके दो पुत्र हैं। वे सदा पुरुषोंके अपकारोंको प्रकट करते रहते हैं। शौच विहीन स्त्री या पुरुष ही निर्बीजताको प्राप्त करते हैं। विद्वेषिणीके दोनोंपुत्र नीचता करनेमें निपुण, लोभी और पुरुषद्वेषी मनुष्यों पर आक्रमण करनेवाले होते हैं। वास्तवमें कोई भी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीयोंके साथ यदि विद्वेष करे, तो वह धर्म और अर्थ प्राप्तिका पात्र नहीं हो सकता। पापाचारी एक पुत्र लोगोंमें अपने गुण समूहोंको प्रकट करता है और दूसरा लोगोंके गुणों और मित्रताको छीन

दुर्बल चित्तवाले मनुष्योंकी हत्या कर सकती है, इसमें सन्देह ही कम है? अतः मनोबलसे जैसी सृष्टि हो सकती है, वैसा उसका नाश भी हो सकता है। अब रही डाइनेंकी समस्या। असभ्य अवस्थामें मारणकी सुकौशलपूर्ण क्रिया, मन्त्रादि द्वारा यह कुकर्म, मनुष्यकर सकता है। ऐसी मन्त्रशक्तिका होना भी सम्भव है। और स्त्रियोंकी धारणा पुरुषसे कई गुणा अधिक होती है। यही कारण है कि, उन्नत सती स्त्रियां पतिके शवके साथ जलती हुई क्लेशका अनुभव नहीं करतीं। उसी धारणाशक्तिको यदि वे कुकर्ममें लगावें तो लगा सकती हैं। इसी कारण डाइनोंका होना पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक सम्भव है। सभ्यता और शिक्षाके साथ ही साथ मनोबलका यह दुरुपयोग मनुष्य समाजसे बन्द हो सकता है, परन्तु उसका सर्वथा बन्द होना असम्भव है। चाण्डालकी योनियोंका जो वर्णन है, उसका यही तात्पर्य है कि, असह्य और बर्बर जैसी निम्न श्रेणीकी मनुष्य योनियां जो केवल आचारहीन और अपवित्र नहीं किन्तु जीवन मात्रको क्लेश देनेवाली हैं। ऐसी निकृष्ट मनुष्य योनियोंका अभाव भारतवर्षमें या संसारके अन्य देशोंमें भी नहीं। यह सब सृष्टि प्रकरण कहनेसे यही तात्पर्य है कि, मनुष्य समाज सदाचारी हो, कदाचारका त्याग करे, तथा दैवी जगत् पर विश्वास रक्खे, देवताओं और असुरोंकी परस्पर विरोधी शक्तिको जानकर दैवी शक्तिका आश्रय कर असुरी शक्तिसे अपने आपको बचावे। सदा अध्यात्म लक्ष्य

लेता है। इस प्रकार पापाचारी दुःसहकी सन्तान समस्त जगत्को व्याप्त किये हुए है ॥११६—१२१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दौःसहोत्पत्ति समापन नामक इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

बावनवां अध्याय।

—:०:※:०:—

मार्कण्डेयने कहा,—अव्यक्त जन्मा ब्रह्माकी तामसी सृष्टिका वर्णन मैं कर चुका। अब रुद्रसर्गकी बात कहता हूं, श्रवण करो। कल्पके आदिमें अपने समान पुत्रोंकी इच्छा करनेसे ही ब्रह्माके आठ पुत्र, उनकी पत्नियाँ और कितने ही पौत्र उत्पन्न हो गये। प्रभुकी गोदमें प्रथम एक नील-लोहित पुत्र पहुँच कर सुस्वरसे रोने लगा। ब्रह्माने उससे पूछा,—"बच्चा! तू क्यों रोता है?" बच्चेने उत्तर दिया,—"मेरा कुछ नाम रख दो।" जगत्पति बोले,—"तुम्हारा नाम 'रुद्र' रख दिया है। अब मत रोओ, चुप रहो।" फिर बच्चेने क्रमशः सात बार रोदन किया, इस कारण उसीके सात नाम और रख दिये। फिर उसके आठ रूप बना कर आठोंको पत्नियां, पुत्र और स्थान भी दे दिये ॥ १—६ ॥ रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये आठ नाम उन कुमारोंके रखकर उनके स्थान भी निर्दिष्ट कर दिये। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और सोममें उनका निवास होने पर उनसे क्रमशः सुवर्चसा, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी नामकी आठ कन्याएं व्याह दी गयीं। रुद्रादि आठ मूर्तियोंकी आठ रुद्रपत्नी कहाती हैं। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजय, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध ये आठ रुद्रादिके पुत्र हुए। रुद्रने सतीको भार्या रूपमें प्राप्त किया था। फिर दक्षपर कोप करनेसे सतीने शरीर त्याग कर मेनकाके गर्भसे हिमवानके घर कन्या रूपसे जन्म ग्रहण किया था। समुद्रका सखा मैनाक उसका भाई था। हिमसुता पार्वतीने भगवान् भवसे परिचय कर लिया। भृगुकी ख्याति नामकी एक पत्नी थी। उसके धाता और

रक्खे और वर्णाश्रम मर्यादा को मानकर अपने आप ही अभ्युदयके मार्गमें अग्रसर हो ॥९५—१२१॥

टीका:—दैवि सृष्टि साधारणतः दो प्रकारकी होती है। एक तमो बहुल और दूसरी सत्वबहुल। पहिले अध्यायमें कही हुई सृष्टि तमोबहुल और इस अध्यायमें कही हुई सृष्टि सत्वबहुल है। इस कारण उच्च देवताओंसे लेकर ऋषि और पितरों तककी सृष्टिका दिग्दर्शन इस अध्यायमें किया गया है। ऋषि, देवता और पितर ये सभी दैवयोनि हैं। भगवान् रुद्रकी उत्पति बहुत ही गंभीर विज्ञानमूलक है। सृष्टिकी आदि अवस्थामें ब्रह्मा,

विधाता नामक दो पुत्र और एक कन्या हुई। वही कन्या देवदेवनारायणकी पत्नी है ॥ ८–१४ ॥ महात्मा मेरुके आयति और नियति नामकी दो कन्याएं थीं। वे ही धाता और विधातासे व्याही गयीं। प्राण और मेरे महयशा पितृदेव मृकण्डु ये दो उनके पुत्र हैं। मृकण्डुकी पत्नी मनस्विनीके गर्भसे मैं औरस रूपसे उत्पन्न हुआ। मेरे पुत्रका नाम वेदशिरा है। प्राणके धूमवती नामकी पत्नीसे द्युतिमान् और अजरा नामक दो पुत्र हुए। इनके पुत्र-पौत्र अनेक हुए। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको प्रसव किया। उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र हुए। इनके पुत्रोंकी वंशकीर्तिका अर्थात् राजवंशका अब मैं वर्णन करूँगा। आङ्गिरसकी पत्नी स्मृतिके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी चार कन्याएं हुईं। अत्रि पत्नी अनुसूयाने सोम दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक तीन योगियोंको पुत्र रूपसे प्राप्त किया था। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि अथवा दम्भोलि की उत्पत्ति हुई थी। पूर्वजन्ममें यही अगस्तिके नामसे विख्यात था। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने कर्द्दम, अर्वरीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्रोंको प्रसव किया। ऋतुकी भार्या सन्नतिने ऊद्ध्र्वरेता साठ सहस्र वालखिल्योंको जन्म दिया था ॥ १५–२४ ॥ वशिष्ठको ऊर्ज्जाके गर्भसे रज, गात्र, ऊद्ध्र्वबाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र नामक सात पुत्र हुए। ये ही सप्तर्षिके नामसे विख्यात हैं। अभिमानी अग्नि ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र है। अग्निकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और जलाशी शुचि नामक तीन पुत्र प्रसव किये। उन पुत्रोंके पैंतालीस पुत्र हुए और तीन पुत्र जो पितृलोक कहे जाते हैं अग्निके वे पौत्र हैं, ये सब उनचास अग्नि पौत्र दुर्जय कहे गये हैं और इन्हींका पहिले पितृलोकके नामसे उल्लेख किया गया है। अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, अनग्नि और साग्नि पितृगणसे स्वधाने मेना और वैधारिणी नामकी दो कन्याएँ प्राप्त की थीं। वे दोनों ब्रह्मवादिनी,

---

विष्णु और रुद्र तीनोंका अर्थात् त्रिमूर्त्तिका आविर्भाव एक ब्रह्माण्डमें एक साथ ही हो, वही परन्तु उस समय ब्रह्मा जागते रहते, विष्णु योग निद्रामें निद्रित रहते और रुद्र दोनोंके शरीरोंमें व्यप्त रहते हैं। ब्रह्माकी सहायताके लिये विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग होती है, जैसा कि, इसी पुराणमें आगे कहा गया है। तदनन्तर रुद्रका प्राकट्य होता है। नहीं तो तीनोंका आविर्भाव एक साथ ही होता है। कोई किसीका पुत्र नहीं है तीनों अपने अपने अधिकारानुसार सगुण ब्रह्म हैं। जैसा कि, विस्तृत रूपसे पीछे कहा गया है। आयुमें ब्रह्मा पदकी आयु सबसे कम, विष्णु पदकी आयु उससे अधिक और रुद्र पदकी आयु उससे भी अधिक है। जिसका वर्णन भी आयुकी वर्ष संख्याके साथ पीछे आवेगा। दैवसृष्टिमें देव संघके अधिपति भगवान् विष्णु, पितृ संघके अधिपति भगवान् ब्रह्मा और ऋषि संघके अधिपति भगवान् रुद्र अथवा शिव भी माने गये हैं। इसी कारण भगवान् शिव ज्ञान प्रदाता, भगवान् विष्णु धर्म प्रदाता और भगवान् ब्रह्मा आधिभौतिक शक्ति प्रदाता माने गये हैं। केवल सृष्टिको चला देना ही उनका कार्य है। तदनन्तर विष्णु भगवान्का कार्य और शिव भगवानका कार्य रह जाता है। यही कारण है कि,

योगिनी, उत्तम ज्ञानसम्पन्ना और सर्वगुणालङ्कृता हैं। इस प्रकार दक्ष कन्याकी सन्ततिका वृत्तान्त है। श्रद्धावान् होकर इसका स्मरण करनेसे अपुत्रत्व या बाँझपन नष्ट हो जाता है ॥ २५-३२ ।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुद्रसर्गाभिधान नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रेपनवां अध्याय ।

—:०:*:०:—

कौष्टुकिने कहा,—भगवान् ! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तरका विषय सुनाया, वह मैंने सुना। परन्तु उसे विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है। विशेषतया मन्वन्तरोंका प्रमाण, देवता, देवर्षि और इन्द्रके विषयमें मैं सब कुछ सुनना चाहता हूं। मार्कण्डेय बोले,—मन्वन्तरोंकी प्रमाणसंख्या इकहत्तर युगोंसे कुछ अधिक होती है। मनुष्योंके प्रमाणके हिसाबसे उसे मैं स्पष्ट कर देता हूं, सुनो। तीस करोड़, सड़सठ लाख, बीस हज़ार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। इससे अधिक नहीं। देवताओंके प्रमाणसे ये वर्ष आठ सौ बावन सहस्र वर्ष होते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष ये छ मनु बीत गये हैं। इस समय वैवस्वत मनु चल रहा है। और पाँच सावर्णि तथा रौच्य और भौत्य मनु आगे होंगे। देवता, ऋषि, यक्षेन्द्र और पितृगणके विषयमें प्रत्येक मन्वन्तरकी बातें अब विस्तारपूर्वक कहता हूं ॥ १-८ ॥ स्वायम्भुव मनुकी सन्तति उत्पति, संग्रह और उस सन्ततिके क्षेत्रका विषय कहता हूँ, सुनो। स्वायम्भुव मनुके उसीके सदृश दश पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने सातों द्वीपों, पर्वतों, समुद्रों और आकरों (खानों) से युक्त पृथ्वीको कई वर्षों (भागों) में विभक्त कर दिया। पुरा कालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके त्रेतायुगके प्रारम्भमें प्रियव्रतके पुत्रों अर्थात् स्वायम्भुवके पौत्रोंने ऐसा ही किया था। कर्दम प्रजापतिकी प्रजावती नामकी कन्याके साथ प्रियव्रतका विवाह था। उससे उसे दश पुत्र और दो कन्यायें हुईं। इन दोनों कन्याओंने सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया ॥ ९-१३ ॥ प्रियव्रतने उक्त दश पुत्रोंमेंसे अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सवन नामक सात पुत्रोंको सप्तद्वीपमें अभिषक्त किया। मेधातिथिको प्लक्ष द्वीपमें, वपुष्मानको शाल्मल द्वीपमें, ज्योतिष्मान्को कुश द्वीपमें, क्रौञ्चद्वीपमें द्युतिमानको, शाकद्वीपमें भव्य

भगवान् ब्रह्माकी पूजाकी विधि क्वचित ही है। दूसरी ओर भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी पूजाकी विधि सर्वत्र देखनेमें आती है। यही कारण है कि, पिता-माता ही ब्रह्माजीके अवतार माने जाते हैं। भगवान् विष्णुके अवतार सर्वत्र होते हैं और रुद्रके अवतार भी क्वचित् ज्ञानविकाशके लिये होते हैं॥ १-३२॥

एवं पुष्कर द्वीपमें सवनको पितृदत्त अधिकार प्राप्त हुये। पुष्कराधिपतिने महवीत और घातकी नामक दोनों पुत्रोंको पुष्कर द्वीप बांटकर प्रदान कर दिया। भव्यके जलद, कुमार, सुकुमार, वनीयक, कुशोत्तर मेधावी और महाद्रुम ये सात पुत्र हुए। उन्होंने इन्हीं सातों नामोंके अनुसार शाकद्वीपमें वर्षविभाग किये। द्युतिमानके भी सात पुत्र हुए—कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि, इन्हीं सात नामोंके अनुसार क्रौञ्च द्वीपके सात विभाग हुए॥ १४—२३॥ ज्योतिषमानने अपने सात पुत्रोंके नामोंके अनुसार कुशद्वीपमें सातवर्षके विभाग किये, उनके नाम इस प्रकार हैं—उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन, धृतिमान, प्रभाकर और कापिल। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान। शाल्मलेश्वर वपुष्मानके सात पुत्र हुए; प्रत्येकके विभिन्न नामोंके अनुसार शाल्मलीद्वीपके विभक्त अंशोंका नामकरण हुआ। मेधातिथिके भी सात पुत्र हुए, जिनके नामोंके अनुसार प्लक्ष द्वीपके सात वर्ष विभक्त हुए हैं। शाक भव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव और ध्रुव नाम प्लक्ष द्वीपके सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीप तक, इन पांच द्वीपोंके प्रत्येक वर्षमें नित्य, स्वाभाविक अहिंसादिसे समलंकृत, वर्णाश्रम विभागयुक्त धर्म विद्यमान है। जिस अग्नीध्रको उनके पिताने जम्बूद्वीप प्रदान किया था उसके प्रजापतिके समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए॥ २३—३२॥ ज्येष्ठ पुत्रका नाम नाभि, द्वितीय का किंपुरुष, तृतीयका हरि, चतुर्थका इलावृत, पञ्चमका रम्य, षष्ठका हिरण्य, सप्तमका कुरु, अष्टमका भद्र, और नवमका नाम केतुपाल था। इन्हीं सब नामोंके अनुसार वर्षोंके विभाग हुए। हिमालयको छोड़कर जितने भागको किम्पुरुष कहते हैं, वहां स्वभावसे ही सिद्धि और विना यत्नके ही सुखका लाभ होता है। इसके विपरीत अथवा जरा और मृत्युका वहां कोई भी भय नहीं रहता। वहां धर्माधर्म, उत्तम, मध्यम और अधमका विभाग, चतुर्युगकी विभिन्न अवस्थाएं, ऋतु सम्बन्धी अवस्थाएँ, और विभिन्न अवस्थाएं भी नहीं है। अग्नीध्रके पुत्र नाभिका लड़का ऋषभ; ऋषभका पुत्र भरत। ऋषभने पुत्रका अभिषेक कर प्रव्रज्याका अवलम्बन किया और पुलहाश्रममें आकर तपस्या करने लगे। भरतको उनके पिताने दक्षिण वर्ष दिया था इसीलिये उनके नामानुसार उसका नाम भारतवर्ष हुआ। भरतके सुमति नामक पुत्र हुए। उन्होंने भी सुमतिको राज्य अर्पणकर वन गमन किया। इनके पुत्र और पौत्र तथा प्रियव्रतके पुत्र स्वायंभुव मन्वन्तरमें इस सप्तद्वीपा वसुन्धराका भोग करते थे। पूर्व मनवन्तरमें यह स्वायंभुवसर्ग हमने भली भांति कह दिया है। अब और अधिक क्या कहें? ॥ ३३—४२॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मन्वन्तर कथन नामक त्रेपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

———

चौवनवां अध्याय।

—०ॐ०—

क्रौष्टुकि बोले, हे महामुने! द्वीप, समुद्र, पर्वत और नदीकी संख्या क्या है? महाभूत और लोकालोकका प्रमाण क्या है? इसी प्रकार हे महामुने! चन्द्र और सूर्यके व्यास, परिमाण और गतिके विषयमें विस्तार पूर्वक कहिए। मारकण्डेय बोले,—समस्त पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है, उसके सभी स्थानोंके सम्बन्धमें कहता हूं, श्रवण कीजिये। जम्बूसे लेकर पुष्कर पर्यन्त जो सब द्वीपोंका विषय कहा है, उसीको फिर विस्तारके साथ कहता हूँ। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप ये यथा क्रम एक दूसरेसे दूने हैं। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध, और जल, समुद्रके द्वारा परिवेष्टित हैं, और यह सागर भी एक दूसरेसे यथाक्रम द्विगुण हैं। जम्बूद्वीपका आकृति परिमाण लम्बाई, चौड़ाई, और गोलाईमें एक लाख योजन है। हिमवान, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत, और शृंगी ये सात उसके वर्ष पर्वत हैं। बीचमें दो लाख योजन विस्तृत दो बड़े बड़े पर्वत हैं। उनमें दक्षिण और उत्तर दिशामें जो दो दो गिरि-स्थित हैं, वह परस्पर दश दश सहस्त्र संख्यासे न्यून है। अन्य सब दो हजार योजन उन्नत और उसी प्रकार विस्तृत हैं। इसके बीच समुद्रमें स्थित छः वर्ष पर्वत हैं। यह पृथ्वी उत्तर दक्षिणमें नीची और बीचमें उन्नत और चौड़ी है॥ ६—१२॥ तीन वर्ष दक्षिणार्ध एवं तीन वर्ष उत्तरार्धमें हैं, इन दोनोंके बीचमें अर्धचन्द्रके आकारवाला इलावृतवर्ष अवस्थित है। उसके पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल है। इलावृतके बीचमें कनकाचल सुमेरु हैं। इस महापर्वतकी ऊंचाई चौरासी सहस्र योजन है सोलह हजार योजन पृथ्वी के नीचे और उसी प्रकार सोलह हजार योजन विस्तृत है। इसका शिखर शरावेके समान बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। इस गिरिका वर्ण पूर्वकी ओर श्वेत, दक्षिणकी ओर पीला, पश्चिमकी ओर नीला और उत्तरकी ओर लाल है। उसके ऊपर पूर्वादिक आठो दिशाओंमें क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रका निवास है। उसके ऊपर इन्द्रादिक लोकपालोंकी और बीचमें ब्रह्माकी चौदह हजार योजन विस्तृत दिव्य सभा सुशोभित है॥ १३—१८॥ इसके नीचे यथाक्रम पूर्वादिक चारों दिशाओंमें दश हजार योजन ऊंचे मन्दार, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्वचार विष्कम्भ पर्वत हैं। इन चारों पर्वतों पर ध्वजाके समान शोभायमान चार वृक्ष हैं। मन्दरपर कदम्ब, गन्धमादनपर जामुन, विपुल पर पीपल सुपार्श्वके ऊपर महान् वट वृक्ष है। इन समस्त वृक्षोंका ग्यारह सौ योजन

विस्तार है । पूर्व दिशामें जठर और देवकूट पर्वत हैं, वे परस्पर विशेष और नील गिरितक फैले हैं । मेरुके पश्चिम पार्श्वमें निषध और पारिपात्र हैं, पूर्व दिशाके समान यह भी नील और निषध पर्यन्त विस्तृत हैं । दक्षिण दिशामें कैलाश और हिमवान नामक महागिरि हैं, यह पूर्व पश्चिममें फैलकर समुद्रमें प्रविष्ट हुए हैं, उत्तरमें शृंगवान और जारुधि हैं, दक्षिणके समान यह समुद्र पर्यन्त विस्तृत हैं । हिमवान हेमकूट प्रभृति यह आठों पर्वत सीमापर्वत हैं, हे द्विजोत्तम ! सो मैंने तुमसे कह दिये हैं । हिमवान और हेमकूट आदि पर्वतोंका परस्परमें नौ हजार योजन विस्तार है और मेरुके पूर्व दक्षिण आदि चारों ओर इलावृत्तमें यह स्थित हैं ॥ १६—२७ ॥ गंध मादन पर्वतके शिखर पर हाथीके देहके समान जो जम्बूफल गिरते हैं, उसीके रससे उत्पन्न नदीको जम्बूनदी कहते हैं । इसी जंबूनदसे जाम्बुनद नामक स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है । हे द्विज शार्दूल ; वह जम्बूनदी मेरुकी परिक्रमा कर फिर जम्बू-मूलमें ही आजाती है । वहांके मनुष्य उसीका जलपान करते हैं । भद्राश्वमें अश्व शिरा, भारतमें कूर्माकृति विष्णु, केतुमालमें वराह, और उत्तरमें मत्स्य रूप नारायण रहते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! उन चारों पर्वतोंमें नक्षत्र रूपसे ऋषि अवस्थित हैं, जो ग्रहोंके पूर्ण ज्ञाता हैं ।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भुवनकोषान्तर्गत जम्बूद्वीपवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पचपनवां अध्याय ।

—-०*०—-

मार्कण्डेय बोले—मन्दरादिक चार पर्वतोंमें जो चार वन और सरोवर हैं, उन्हें कहता हूं, सुनिये । पूर्व शैलमें चैत्ररथ, दक्षिणमें नन्दन; पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सावित्र नामक वन है । मेरुके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीलोद तथा उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर स्थित हैं । मन्दरकी पूर्व दिशामें शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर

टीकाः—जिस प्रकार पुराणोंमें सृष्टि प्रकरण दैवीसृष्टि, आसुरी सृष्टि और मानवी सृष्टि इस प्रकार तीनोंका साथ साथ ही वर्णन चलता है, जिसके समझनेमें कठिनता होती है, उसी प्रकार भूगोल तत्त्वके देश, नदी, पर्वत, समुद्र, आदिका वर्णन भी मिश्र हुआ करता है । क्योंकि त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी ज्ञान दृष्टिके सामने चतुर्दश भुवनका दृश्य करामलकवत् हुआ करता था, इस कारण पुराणोंमें वर्णित भूगोल शास्त्रको आजकलके लौकिक भूगोल शास्त्रसे मिलाना उचित नहीं है । जो ऐसा करते हैं वे पुराणका अपमान करते हैं, इसके लिये एक उदाहरण दिया जाता है । सात समुद्रका जो वर्णन है उसमेंसे एक लवण समुद्र लौकिक है, बाकी छः समुद्र दैवी हैं ॥ १—१२ ॥

सुकंकवान् मणि शैल वृषवान् महानील, भवाचल, विन्दु, मन्दर, वेणु तामस, निषध, और देवशैल यह सब पर्वत हैं। त्रिकूट, शिखर कलिंग पतंगक, रुचक, सानुमान, ताम्रक विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान, एकश्रृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पञ्चशैल, कैलास, और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान ये समस्त पर्वत मेरुके दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित हैं। सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर सहस्र शिखर, परिपात्र, और सश्रृंगवान, ये मेरु तथा विष्कम्भके पश्चिम दिशासे बाहर हैं। इन सब पर्वतोंका वर्णन हो चुका है, अब उत्तरके पर्वतोंका वर्णन करता हूँ सो सुनिये। शंखकूट, वृषभ, हंस, नाभ कपिलेन्द्र सानुमान, नील, स्वर्ण श्रृंगी, शातश्रृंगी, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, तथा मयूर और जारुधि, ये समस्त पर्वत मेरुके उत्तर दिशामें कहे गये हैं। इनकी कन्दराएं अत्यन्त मनोहर हैं। हे द्विजोत्तम! निर्मल वे सरोवरोंसे घिरे और वनसे शोभित हैं। सुतरां इस स्थानपर पुण्यवान् मनुष्योंका ही जन्म होता है॥४-१५॥ हे द्विज श्रेष्ठ, स्वर्गकी अपेक्षा अधिक गुणशाली यह स्थान भूस्वर्गके नामसे प्रसिद्ध है। यहां अपूर्व पुण्य पापका उपार्जन नहीं है। हे द्विज सत्तम! इन सब शीतान्तादि शैलोंका उपभोग देवताओं को भी पुण्यभोग कहा गया है। वहां विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता और गन्धर्वादिकोंका शोभायमान वासस्थान है, सदा मनोज्ञ उपवनों और सरोवरोंसे परिवेष्टित है, सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली हवा चला करती है। किसी स्थानमें भी मनुष्योंमें कुछ भी वैमनस्यका कारण नहीं दिखाई देता। इसी लिये मैंने इसे चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन किया है। भद्राश्व, भारत आदि इसके चारों पत्र है। पहले दक्षिण दिशामें जो भारतवर्षका वर्णन किया है, वही कर्मभूमि है, और किसी स्थानमें पुण्य पापकी प्राप्ति नहीं है। इसीमें सब प्रतिष्ठित होनेके कारण यह प्रधान कहकर प्रसिद्ध है। हे दिज! कर्म भूमि होनेसे ही मनुष्यगण स्वर्ग मनुष्यता, नरक, पक्षीयोनि तथा अन्यान्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं॥ १६-२३॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भुवनकोषमें पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

छप्पनवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, जगद्योनि नारायणका ध्रुवाधार नामक जो पद है उससे त्रिपथ गामिनी गंगा उत्पन्न हुई हैं। समस्त जलके आधार, सुधा योनि चन्द्रमण्डलमें प्रवेशकर, वह वहां संवर्ध्यमान सूर्यकी किरणोंकी संगतिसे पवित्र हो सुमेरु पर्वतके ऊपर गिरी हैं, और

वहांके मेरुकूटोंसे गिरती, चक्कर खाती हुई चार धाराओंमें निकली हैं। इस प्रकार अपने जलको बिखेरती हुई निरावलम्ब गंगादेवी मन्दरादि पर्वतोंमें विभक्त होकर समान भावसे गिरी हैं। तथा पर्वत शिलाओंको तोड़ते हुए उन्होंने गमन किया है। उनमें गंगा-देवीकी जो धारा पूर्व दिशामें बहती हुई चैत्ररथ वनकी ओर गई है, उसका नाम सीता है। वही सीता गंगा चैत्ररथ वनको सींचती हुई वरुणोद सरोवरमें गई है। फिर वहां से शीतान्त पर्वत और वहांसे अन्य पर्वतोंका अतिक्रमण करती हुई पृथ्वीमें जाकर भद्राश्ववर्ष होती हुई समुद्रमें जा मिली है ॥१—६॥ उसी प्रकार दक्षिणमें गंधमादन पर्वतपर गिरी हुई अलकनन्दा नामकी धारा मेरुके सन्निकट, देवताओंको आनन्द देने वाले नन्दनवनको सींचती हुई बड़े वेगसे मानस सरोवरको गई है। मानस सरोवरको आप्लावित कर गिरिराज रम्य पर्वतके शिखर और वहांसे अन्य पर्वतोंको पार करती हुई महाद्रि हिमालयमें गिरी है। वहां वृषध्वज भगवान् शंकरने उनको धारण किया और किसी प्रकार भी नहीं छोड़ा। इसके बाद भगीरथने उपवास और स्तुतिसे भगवान्की की आराधना की। शम्भुसे छूट कर उसने दक्षिण समुद्रमें सात भागोंसे प्रवेश किया है। उनमें महानदीके तीन भाग पूर्वकी ओर सींचते हुए समुद्रमें मिले हैं, और एक धारा भगीरथके रथके पीछे जाती हुई दक्षिण समुद्रमें मिली है ॥ ७—१२ ॥ सुमेरु पर्वतके पश्चिम दिशामें विपुल पादसे होकर जो धारा निकली है, उस महानदीका नाम सुरक्षु है। वह वैभ्राज पर्वतपर वैभ्राज वनका पवित्र करती हुई शीतोद सरोवरको आप्लावित करती है। फिर वहांसे त्रिशिख पर्वत, त्रिशिख पर्वतसे अन्यान्य पर्वत शिखरोंको गई है। वहांसे केतुमाल पर्वतमें होती हुई वह दक्षिण समुद्रमें जा मिली है। सुमेरुके उत्तरमें जो गंगाकी धारा गिरी है उसका नाम सोमा है; वह सोमा गंगा सवित्र वनको पवित्र कर महाभद्र सरोवरमें गई है। फिर वह महानदी शंख कूट और वृषभादि पर्वतसे होकर उत्तरके समस्त कुरुदेशको पवित्र करती हुई महासागरके साथ मिली है ॥ १३—१८ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ! मैंने तुमसे यह गंगाजी का विषय वर्णन किया है। जम्बू द्वीपके निवेषमें जो किं-पुरुषादिवर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें जो प्रजा रहती है वह प्रायः सुखी, निरातंक, एवं न्यूनता एवं अधिकता से रहित है। जो नव वर्ष कहे गये हैं, उनमें भी सात सात कुलाचल हैं, एवं प्रत्येक देशमें पर्वतसे बहनेवाली नदी विद्यमान हैं। हे द्विजोत्तम! किंपुरुषादि जो श्रेष्ठ पर्वत हैं और उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिज्ज हैं, क्योंकि इस भारतवर्षमें

टीका—त्रिलोक पावनी गंगादेवीका जो यह विस्तार कहा गया है, इसके पाठ करनेसे ही श्रद्धालु विद्वान्को विदित होगा कि, गंगादेवीका यह विस्तार स्वर्गलोक औ मृत्युलोक दोनोंका ही इकट्ठा वर्णन किया है, गंगादेवी त्रिलोक पावनी हैं इसलिये त्रिलोकमें इनकी स्थिति विद्यमान् है ॥ १—१२॥

ही मेघका जल होता है। और यह जो आठ वर्ष हैं, वहां वार्त्ती स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था, मानसी और कर्मजा यह छः प्रकारकी मनकी सिद्धि हैं। अभिलाषा प्रदान करने वाले वृत्तसे जो सिद्धि उत्पन्न होती है वह वार्त्ती सिद्धि है। स्वभावसे उत्पन्न सिद्धि स्वाभाविकी है। देशसे उत्पन्न सिद्धिका नाम देश्या और जलकी सूक्ष्मतासे जो सिद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम तोयोत्था सिद्धि है। मानसी सिद्धि ध्यान द्वारा सम्पादित होती है तथा उपासना आदिके द्वारा जो सिद्धि मिलती है वह कर्मजाके नामसे विख्यात है। हे द्विजोत्तम! इन समस्त वर्षोंमें आधि व्याधि एवं पुण्य व पापका समागम कुछ नहीं है।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें गंगावतार नामका छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्तावनवां अध्याय।

—:०:*:०:—

क्रोष्टुकि बोले—भगवन्! आपने इस जम्बू द्वीपका विषय संक्षेपसे वर्णन किया है। हे महाभाग, आपने कहा कि, भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य किसी स्थानमें कोई कर्म, पाप, व पुण्यके निमित्त अनुष्ठित नहीं होता; इसी स्थानसे स्वर्ग और मोक्ष, मध्य दशा और अन्त्य दशा समस्त प्राप्त होती हैं, अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंका कर्मानुष्ठान नहीं होता, इसीलिये हे ब्रह्मन्! भारतवर्षका विषय विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये। हे द्विज शार्दूल! इस भारतवर्षके जितने भेद हैं और उन भेदोंका जितना परिमाण है, जैसी उसकी स्थिति है, उसमें जितने देश और जितने पर्वत हैं, सभीका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १-४ ॥ मार्कण्डेय बोले, इस भारतवर्षके नौ भेद हैं वह मुझसे सुनिये। वह सब समुद्र द्वारा अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं। इन्द्र द्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नाग द्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और नवम भारतवर्ष। यह भारत नामका जो नवम द्वीप है, यह सागरसे घिरा एवं दक्षिण और उत्तरमें सहस्र योजन परिमित है। इसके पूर्व भागमें किरात और पश्चिम सीमामें यवनगण वास करते हैं एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रगण इसके मध्यभागमें रहते हैं। ये यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य आदिक अपने अपने कर्मके द्वारा पवित्र होते हैं और इन्हीं सब कर्मोंके द्वारा उनका भलीभांति व्यवहार, स्वर्गलाभ, मोक्षप्राप्ति, पुण्य पाप आदि होते हैं। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र नामक सात कुल पर्वत इसमें वर्तमान हैं। इन कुलाचलोंके सन्निकट एक एक सहस्र पर्वत हैं। उनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस

तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि रोचन, पाण्डुर, पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत और कोर पर्वत यह अत्यन्त ऊँचे मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंसे मिले हुए जनपद म्लेच्छ और आर्य नामसे विख्यात हैं ॥ ५-१५ ॥ उन जनपदोंके निवसी मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियोंका जलपान करते हैं, उनका वर्णन करता हूं, सुनिये। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्राभागा यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती, पुण्यसलिला, बाहुदा दृषद्वती, विपाशा, देविका, चक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी। हे विप्र, यह सब नदियां हिमालयसे निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृषघ्नी, सिन्ध, देवा, सानन्दनी सदानीरा, मही, पारा चर्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा और अवर्णी यह सब नदियां पारिपात्र पर्वतसे निकली हैं। महानद शोण और नर्मदा सुरक्षाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं। मन्दाकिनी और दशार्णा नदी चित्रकूट पर्वतसे निकली हैं। चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी, विपाशा, मञ्जुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती शाकुली, त्रिदिवा और आक्रम यह वेगसे बहनेवाली समस्त नदियां स्कन्दपाद या ऋक्ष पर्वतसे बहिर्गत हुई हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्वा वैतरणी, सिनिवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिरा यह पवित्र जलवाली—शुभप्रद समस्त नदियां विन्ध्यपादसे प्रसूत हुई हैं। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेण्वा, तंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्वा और महानदी कावेरी यह भी विन्ध्य पर्वतसे निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्पलावती नदी पुष्पपर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, इक्षुका और त्रिदिवा यह शीत जलवाली मलयाद्रिसे उद्भूत हुई हैं। लांगलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा

टीका—भारतवर्ष कर्मभूमि है, अन्य सब भोगभूमि है, यह वचन अति रहस्य पूर्ण है, रहस्यपूर्ण होनेपर भी अनेक पुराणोंमें ऐसा वचन पाया जाता है। जब समस्त संसार ही कर्माधीन है तो भारतवर्षकी यह प्रधानता क्यों दी गई? इस श्रेणीकी शंकाओंका सहज समाधान यह है कि, चाहे स्वर्गलोकके नाना देश हों अथवा असुरलोकके नाना देश हों अथवा भूलोकके प्रेतादि नाना देश हों अथवा मृत्युलोकमें भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देश हों सब स्थलोंमें भोगकी सम्भावना अधिक और कर्म करनेकी सम्भावना कम है। देवलोक और असुर लोकमें तो इच्छामात्रसे भोग्य पदार्थकी प्राप्ति होनेसे और नरक लोक तथा प्रेतलोकमें केवल दुःखदायी भोग रहनेसे वे सब भोग लोक ही हैं, इसमें सन्देह नहीं और इस मृत्युलोकके अन्य स्थानोंमें साधारण मानव धर्मके बहत्तर अङ्गोंके साधन करनेका पूरा अवसर न रहनेसे और केवल भारतवर्षमें नहीं साङ्गोपाङ्ग धर्मका पालन करनेका अवसर रहनेसे और भारतवर्षके वर्णाश्रमीके साथ ऋषि, देवता और पितरोंके सम्वर्द्धनका बहुत कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेके कारण इसको कर्मभूमि और धर्मभूमि करके माना है।

और पलाशिनी इन सब नदियोंका जन्म शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है । हे द्विजवर ! इन सब नदियोंके नामोंका जो वर्णन किया है वह सभी अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक जल वाली हैं । इनमेंसे कितनी ही गंगामें और कितनी सागरमें गिरी हैं ॥ १६–३० ॥ यह समस्त संसारकी माता और पापहारिणी हैं । हे द्विजोत्तम ! इनके अतिरिक्त और भी हजारों क्षुद्र नदियां हैं । उनमें कितनी ही वर्षा कालमें प्रवाहित होती हैं और कितनी ही में सर्वदा जल रहता है । मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कौशल अथर्व, आकलिंग, मलक और वृक ये समस्त जनपद प्रायः मध्य देशीय कहकर गिनाये गये हैं । सह्य पर्वतके उत्तर दिशामें गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण पृथ्वीमें यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम है । वहां महात्मा भार्गवकी गोवर्धन नामक मनोहर नगरी है और वाह्लीक, वाद्यधान, आभीर और कालतोयक ये अपरान्त देश हैं । शूद्र पल्लव, चर्मखण्डित, गांधार, यवन सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रुज, कलिंग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय, दशमालिक प्रभृति समस्त देशोंमें क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र कुल बास करते हैं । काम्बोज, दरद, बर्ब्बर, हर्षवर्धन, चीन, खार, और बहुल इन प्रदेशों-में उत्पन्न मनुष्य वहिर्देशज कहलाते हैं । आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूल-कार, चूलिक, जागुड़ औषध और अनिभद्र आदि जातिके मनुष्य किरात जातिके ही भेद विशेष हैं । तामस, हंसमार्ग, काश्मीर तंगण, शूलिक, कुहक, ऊर्ण, और दर्व आदि समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं । अब पूर्व देशोंको मुझसे सुनो ॥ ३१—४१ ॥ अधारक, मुदकर, अन्तर्गिरि, वहिर्गिरि, प्रवंग, रंगेय, मानद, मानवर्तिक, उत्तर ब्रह्म, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेय मल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध, और गोमन्त आदि समस्त देश पूर्व देशमें स्थित हैं । अब दक्षिण पथ स्थित समस्त देशोंका वर्णन करता हूं । यथा,— पुत्रक, केरल, गोलांगूल, शैलूष, मूषिक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिक्य, आटव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्य मौलेय, वैदर्भ, दत्तक, पौरिक, मौलिक, शल्मक, नैषिक कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिद और वनदारक आदि भोगवर्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कह-लाये हैं । इसके बाद पश्चिम देशकी कथा कहता हूं, सुनिये । सूर्यारक, कालिवल, दुर्ग, आलीकट, पुलिंद, सुमीन, रूपप, स्वापद और कुरुमिन इत्यादि देशोंको कटाक्षर अथवा नासिक्याव कहते हैं, और उत्तर नर्मदा भीरुकच्छ, माहेय सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त और अर्ब्बुद आदि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्य कहकर विख्यात हैं ॥ ४२—५२ ॥ अब विन्ध्यवासी देशोंका वर्णन सुनिये । सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तुम्बुरु, तुम्बुल, पटु, नैषध, अन्नज, लुष्टिकार, वीर होत्र और अवन्ति यह सम्पूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वतकी पीठमें हैं । अब उन समस्त देशोंका जो पर्वताश्रयी

अर्थात् पर्वतोंका आश्रय लेते हैं, वर्णन करता हूं । यथा,—नदीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुन्त, प्रावरण, उर्ण, दार्व, कुत्रक, त्रिगर्ण, मालव, तामस, और किरात इन सब देशोंको पार्वतीय देश कहते हैं ॥ ॥ ५३—५७ ॥ हे क्रौष्टुके ! इस प्रकार चारों सीमाओंमें स्थित भारतवर्षका कीर्तन तुमसे कर दिया है । इसमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि चारों युगोंकी विधि विद्यमान रहती है । इसे पूर्व, दक्षिण और पश्चिम धनुषाकार महासागर घेरे हुए है, तथा उत्तरमें हिमालय धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान विद्यमान है । हे द्विजवर ! यही भारतवर्ष सबका बीज स्वरूप है, इसमें ब्रह्मत्व, देवत्व और देवगण सभी वर्तमान हैं । यही मृग, पशु, आदि और अप्सराओंका उत्पन्न करनेवाला है, इसीमें सरीसृप आदि उत्पन्न होते हैं । स्थावर, जंगम आदि जितने पदार्थ हैं, सभी इसमें शुभाशुभ कर्मफलसे उत्पन्न होते हैं । समस्त लोकोंके बीचमें यह भारतवर्ष ही एकमात्र कर्मभूमि है । हे विप्रर्षे ! सभी देवगण यही इच्छा करते हैं कि 'यदि देवत्वसे कहीं भ्रष्ट होना पड़े तो पृथ्वीमें इसी भारतवर्षमें मनुष्य-योनि प्राप्त हो । क्योंकि जो कार्य मनुष्य कर सकते हैं उसे देव और राक्षस कोई नहीं कर सकते । देखिये, यह कर्मरूपी बेड़ियोंसे बँधा हुआ मानव समुदाय लेशमात्र सुखके लिये, कर्म विख्यातिके लिये उत्सुक होकर क्या नहीं करते ॥ ५८—६४ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें नद्यादि वर्णन नामक सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अट्ठावनवां अध्याय ।

—०:※:०—

क्रौष्टुकि बोले, हे भगवन्, आपने हमारे निकट भारतवर्षका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे कर दिया है एवं उस देशमें जो समस्त नदियां, पर्वत देश और वहां पर जो निवास करते हैं वह सब भली भांति वर्णन किया है । किन्तु आपने पहले कहा है कि भारतवर्षमें भगवान हरि कूर्म रूपसे वास करते हैं, इस समय उनकी स्थिति किस प्रकार है, उसे सम्पूर्ण

टीका—चतुर्दश भुवनोंमेंसे भूलोक एक भुवन है, वही मध्याकर्षण विशिष्ट है । भूलोकके चार अङ्ग हैं, यथा—मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक, और पितृलोक । अतः मृत्युलोक हमारे ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा हुआ । इसी मृत्युलोकमें चाहे देवता हों चाहे असुर हों उनके भोग समाप्तिके अनन्तर पुनः कर्मसंग्रहके लिये जन्मग्रहण करना पड़ता है और पुनः यहां शुभाशुभ कर्मफल संग्रह करके देवता गन्धर्व आदि देवयोनियों अथवा असुरयोनि आदिको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं । ऐसे मध्याकर्षण विशिष्ट मृत्युलोकका मस्तक रूप भारतवर्ष है । मृत्युलोकका भारतवर्ष उत्तमांग होनेसे और भारतवर्षकी प्रकृति सर्वाङ्गपूर्ण होनेसे इसकी इतनी महिमा कही गयी है ॥ ५८—६४ ॥

रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं । उन देव जनार्दनने कूर्मरूपमें किस प्रकार वास किया था और उनके द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ किस प्रकार होता है ? हे भगवन्, उनके मुख और चरण जिस प्रकारके हैं, उन सबका वर्णन पूर्ण रूपसे कीजिये ॥ १—३ ॥ मार्कण्डेय बोले—हे ब्रह्मन्, वही देव भगवान कूर्मरूप धारण करके नवखण्डोंमें विभक्त भारतवर्षको आक्रमण करके पूर्वको ओर मुँह किये वास करते हैं । नक्षत्र और सम्पूर्ण विषय भी नव भागोंमें विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करते हैं । हे द्विजवर ! यह सब भली भांति श्रवण कीजिये । विमाण्डव्य, वेदमन्त्र, शाल्व नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खश, सारस्वत. मत्स्य शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुड़ाश्मक, उद्देहक, पाञ्चाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि पाखण्ड, पारियात्र निवासीगण, कापिंगल, बाह्य-कुरु, उडुम्बर और गजा यह सम्पूर्ण देश कूर्मके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं । कृत्तिका रोहिणी और मृगशिरा यह तीनों नक्षत्र उन मध्यवासी मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करने-वाले हैं ॥ ४—१० ॥ वृषध्वज, अञ्जन, जम्बुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्माक, कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ्र और वदन, दन्तर समस्त पर्वत प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, समुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल, कषाय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एक पादप, वर्धमान और कौशल, यह समस्त कूर्मरूपी भगवानके मुखप्रदेशमें स्थित हैं । आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य यह तीन नक्षत्र उनके मुखमें स्थित हैं । उनके दक्षिण चरणमें जो समस्त देश हैं उनका वर्णन करता हूं, हे क्रौष्टुके उन्हें सुनिये ॥ ११–१५ ॥ कलिंग, वंग, जरठ, कौशल, मूषक, चेदि, उद्धर्धन और मत्स्य आदि जो देश विंध्य पर्वतके निकट हैं तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक व्याघ्रग्रीव महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी, कैष्किन्ध्य, हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, काकुला, लक, नग्न, निषाद देश और पर्णशवर आदि समस्त देश तथा आश्लेषा मघा और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र उनके पूर्व दक्षिण पादमें निवास करते हैं । लंका कालाजिन, शैलिक, निकट, महेन्द्र मलय और दर्दुर पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कटवन स्थित सम्पूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोंकण आभीर, वेणवानदीके तीर स्थित समस्त देश, अवन्ति, दासपुर आकरनी महाराष्ट्र कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, कोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरी और ऋष्यमूक स्थित सम्पूर्ण देश-शंख सुक्ति और वैदूर्य शैल और उसके समीपवर्ती वारिचर, कोल, चर्म-पट्ट और गणवाह्य और कृष्ण द्वीप निवासी मनुष्य समुदाय सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वतों पर रहनेवाले मनुष्य, उखावन, पिशिक, कर्मनायक दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, ताण, साश्रम, ऋषभ, सिंहल, कांची निवासी तिलंग कुञ्जर और दरी, कच्छस्थित मनुष्य, एवं ताम्र पर्णी यह सब कूर्मकी दक्षिण कुक्षिमें स्थित हैं । उत्तरा-

फाल्गुनी हस्त और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्मके दक्षिण पार्श्वमें विराजमान हैं ॥१५—२६॥ वाह्य पाद, काम्बोज, पह्लव, वड़वामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त वनितामुख, द्रावण, मार्गिग शूद्र, कर्ण, प्राधेय, वर्बर, किरात, पारद, पांत्य, पारशव, कल, धूर्तक हैम गिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविण, महार्णव, वह समस्त जनपद कूर्मके दूसरे दक्षिण पदमें स्थित हैं, स्वाती विशाखा और अनुराधा तीनों नक्षत्र इन समस्त देशोंके शुभाशुभकी सूचना देते ॥३०—३४॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्त गिरि, अपरास्तिक, हैहय शास्तिक, विप्रशास्त, कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर अङ्गतक, शकी शाल्मल, गुरुस्वर, फल्गुनक वेणुमत्त, फाल्गुक, गुरुह कलह, एकैक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, चुचुलिक और अश्वकेश, यह समस्त देश कूर्मकी पूछमें अवस्थित हैं। ज्येष्ठा मूला और पूर्वाषाढ़ा यह तीन नक्षत्र कूर्मकी पूंछमें ही विराजमान हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, ललन कुशार्त, लड़ह, स्त्रीवाह्य, वालिक, नृसिंह, वेणुमती वलावस्थ, धर्मबद्ध, उलुक, उरुकर्म स्थित मनुष्य यह समस्त देश कूर्मके बायें चरणमें स्थित हैं ॥ ३५—४० ॥ उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा यह तीनों नक्षत्र उसी स्थानमें स्थित हैं। कैलाश, हिमालय और धनुष्मान्, वसुमान और क्रौञ्च, कसत्रक, क्षुद्रवाण, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यामुन अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्निज, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिविड़, केशधारी दासेरक, वारधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात तक्षशील, अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदान्तिक, पिंगल, मानकलह, हूण, कोहल, माण्डव्य, भूति, युवक, शातक, हैमतारक, यशोमत्य, गांधार, स्वरस गर, राशि, यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामल और क्षेमधूर्त, ये समस्त जनपद कूर्मरूपी भगवान्की बाईं कुक्षिका आश्रय ग्रहण कर अवस्थित हैं ॥ ४१—४८ ॥ शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, और उत्तरा भाद्रपद, नक्षत्र वहांके शुभाशुभ सूचक हैं। किन्नर राज्य, पशुपाल काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वंगण, कुलट, वनराष्ट्रक सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द पल्हव, लोलन, दार्वाद, मरक, कुरट अन्नदारक, एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक, यवन हिंगचिर प्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, और गंधर्व यह समस्त देश पूर्व उत्तर पदमें स्थित हैं, रेवती, अश्विनी और भरणी यह तीनों नक्षत्र इसके शुभाशुभ सूचक हैं ॥ ४६—५३ ॥ हे द्विज इन समस्त नक्षत्रोंके पीड़ित होनेपर उक्त समस्त देश पीड़ित होते हैं इसी प्रकार शुभ ग्रहके भली भांति अवलोकित अथवा अवस्थित होनेपर उन्नति और शुभ होता है। जो ग्रह जिस नक्षत्रके अधिपति हैं उस ग्रहसे उस देशको भय नहीं होता। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह ग्रह ही उस देशका शुभाशुभ सूचक है। हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक देशको

टीका—इस अध्यायमें भारतवर्षके देशोंका जो भेद वर्णन है, वह उस समयके भूगोलशास्त्रके अनुकूल प्रतीत होता है। कालभेदसे अब उन देशोंका पता लगना कठिन है।

ग्रह नक्षत्रसे उत्पन्न भय अथवा शुभ मनुष्योंको होता है। अपने नक्षत्रके अशुभ होनेपर मनुष्योंको सामान्य भय होता है। अशुभ ग्रहके द्वारा उक्त नक्षत्र यदि विद्ध हो तो पीड़ा, कष्ट और अमंगल होता है। द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, सुहृत्, पुत्री, अथवा पत्नीके ऊपर पुण्य-वान् व्यक्तियोंको ग्रहजात भय होता है ॥ ५४—६० ॥ जिन मनुष्योंका पुण्य अल्प होता है, उनकी देहमें पीड़ा होती है और पापियोंको समस्त पदार्थोंमें ही ग्रह पीड़ाका भय होता है। किन्तु जो पुण्यवान हैं उन्हें कहीं भी भय नहीं। मनुष्य समुदाय दिक् देश, राजा अथवा पुत्र, इन सबके साथ नक्षत्रग्रहसे उत्पन्न शुभाशुभ भोग करता है। नक्षत्रोंके विषयमें मैंने जो कूर्म संस्थान बताये हैं वह सब देशोंमें समान शुभाशुभ सूचक हैं। सुतरां देश नक्षत्र, ग्रहकी पीड़ा, लोकवाद सब जानकर बुद्धिमान उसकी शान्ति करे। देव और दानवोंका शत्रु जब आकाशसे पृथ्वी पर गिरता है, तब लोकमें लोकवादके नामसे विख्यात होता है। अतएव बुद्धिमानको वैसा करना चाहिये, लोकवादको कभी न छोड़े। इन सबकी शान्ति करनेसे ही मनुष्योंका शुभ और दुरित क्षय होता है, शुभ उदय होता है, पापकी हानि होती है; इन सबकी शान्ति न करनेसे ये पुरुषका समस्त द्रव्य और बुद्धिकी हानि करते हैं, सुतरां लोकवादरत और शान्तिपर बुद्धिमान ग्रहपीड़ाके समय लोकवाद और शान्ति करें ॥ ६१—६० ॥ शान्ति-कालमें किसीसे द्रोह न करे, उपवास करे; देव बन्दना; जप होम दान और स्नान करे, एवं क्रोध आदिका परित्याग करे। बुद्धिमान मनुष्य समस्त प्राणियोंके साथ अद्रोह और मैत्री स्थापन करे; असत्य वाक्य और अतिवादका परित्याग करे। सपूर्ण पीड़ाओंमें मनुष्यको ग्रह शान्ति करना उचित है। हे द्विजोत्तम ! ऐसा करने पर मनुष्योंकी ग्रह नक्षत्र जनित समस्त भयंकर पीड़ायें शान्त हो जाती हैं। हे द्विजोत्तम ! भारतवर्षमें पूर्णरूपसे स्थित भगवान विष्णुका समस्त विषय मैंने कह दिया। उस अचिन्त्यात्मा नारायणके ऊपर ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रत्येक नक्षत्रमें स्थित देवताओंके वही आधार हैं। उनके मध्यमें अग्नि, पृथ्वी, और चन्द्र विद्यमान हैं। मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थलमें स्थित हैं; मिथु-नादि दो राशि उनके मुखमें विद्यमान हैं। कर्क और सिंह राशि उनके पूर्व दक्षिण चरणमें निवास करते हैं। सिंह, कन्या और तुला यह तीनों राशियां उनके ऊपर विराजमान हैं। तुला और वृश्चिक राशि उनके दक्षिण और पश्चिम पदोंमें विद्यमान हैं। वृश्चिक और धनु-राशि उनके पृष्ठ देशमें; धनु और मकरादि तीन उनके वायव्य चरणमें कुम्भ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षिमें, इसी प्रकार हे द्विजश्रेष्ठ ! उनके पूर्वोत्तर चरणमें मीन और मेष राशि आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। हे द्विजवर ! कूर्मके ऊपर देश और नक्षत्र जिस रूपसे स्थित हैं वह सब वर्णित कर दिया है। इस देशमें जिस

प्रकार समस्त राशि स्थित हैं, एवं राशि और नक्षत्रमें जिस प्रकार समस्त ग्रह विद्यमान हैं, वह सब वर्णन कर दिया गया। इस प्रकार ग्रह नक्षत्रके पीड़ित होने पर देश पीड़ा जाननी चाहिये। देश पीड़ा पोने पर स्नान कर होम दान आदि करने चाहिये। यह जो विष्णुके चरण स्वरूप ब्रह्मा ग्रह गणोंके बीचमें निवास करते हैं, यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्के कारण और जगत्प्रभु हैं ॥ ७०–८१ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें कूर्म निवेश नामका अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५८॥

उनसठवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले,—हे मुनिवर ! मैंने भारतवर्षका वर्णन यथावत् कर दिया है। इस भारतवर्षमें ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलिरूप चारों युग वर्तमान हैं; यहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका भेद है। सत्य, त्रेता आदि युगोंमें मनुष्य क्रमानुसार चारसौ, तीनसौ, दोसौ और सौ वर्ष जीवित रहते हैं। पूर्व दिशामें देवकूट नामक महापर्वतके पूर्वकी ओर जो वर्ष है, उसको नाम भद्राश्ववर्ष है; उसे मुझसे सुनिये। श्वेतपर्ण, नील, शैवाल कौरञ्ज और पर्णशालाग्र नामक पांच श्रेष्ठ कुलाचल और इनसे उत्पन्न और भी छोटे पर्वत इस वर्षमें स्थित हैं। यहां कुमुद संकाश, शुद्धसानु, सुमंगल आदि हजारों जनपद छोटे छोटे पर्वतोंके साथ भिन्न भिन्न रूपसे स्थित हैं। शीता शंखावती भद्रा, और चक्रावर्तादि अनेक शीतल वाहिनी नदियां विस्तीर्ण होकर इस वर्षमें बहती हैं। इस वर्षमें मनुष्य शंख और शुद्ध सुवर्णकी कान्ति वाले होते हैं, उनका संग उत्तम होता

टीका—भारतवर्षको जो कूर्म चक्र बनाकर उसके साथ राशि और नक्षत्र आदिका सम्बन्ध दिखलाया गया है, वह ज्योतिष शास्त्रका विषय है। पुराण शास्त्र और तन्त्र शास्त्रमें आत्मा अनात्मा-विचार अध्यात्मतत्व प्रकाश, धर्माधर्म निर्णय और लोकालोक स्वरूप कथन आदिके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र वैदकशास्त्र, शकुनशास्त्र, जीवशास्त्र आदिका वर्णन भी बहुत कुछ पाया जाता है, पुराणोंमें विज्ञान अधिक है और तन्त्रोंमें क्रियासिद्धांश अधिक है। प्रत्येक सौर जगत्के ठीक चारों ओर जो और सौर जगत् हैं, वेही विशेष विशेष श्रृंखलाके अनुसार नक्षत्र और राशि कहाते हैं। नक्षत्र समूह सौर जगत् हैं और नक्षत्रोंके वलयोंका जो विभाग है वही राशि कहाता है, जैसे अपने सौर जगत्के ग्रह और उपग्रहकी आकर्षण और विकर्षण शक्तिका प्रभाव, पृथिवीके जीवोंपर पड़ता है वैसे ही नक्षत्र और राशिका भी पड़ता है, इसी प्रभावके आधार पर फलित ज्योतिषशास्त्र पूज्यपाद महर्षियोंने बनाया है। ज्योतिष शास्त्र सत्य-विज्ञानमूलक और अतिसूक्ष्म विज्ञानसे पूर्ण है; फलित ज्योतिषकी सहायताके लिये और भारतवासियोंको सहायता देनेके लिये यह कूर्मचक्रका वर्णन है।

है। वे पवित्र रहकर सहस्र वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें कोई भी उच्च व नीच नहीं है क्योंकि वे समदर्शी हैं। वहांके मनुष्य स्वभावसे ही तितिक्षा आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं। इस भद्राश्व वर्षमें भगवान् चतुर्भुज जनार्दन हयग्रीव रूपसे शिर, हृदय, मेढ्र चरण, हस्त और तीन नेत्रोंसे युक्त होकर स्थित हैं। उन जगत्प्रभुका विषय भी इस प्रकार जानना चाहिये ॥ १-११ ॥ इसके बाद पश्चिम केतुमाल वर्षका वर्णन मुझसे सुनिये ।

टीकाः—प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चौदह प्रधान लोक होते हैं। और उन चौदह लोकोंके और अलग अलग अन्तर्विभाग भी होते हैं। हमारे इस ब्रह्माण्डके ऊपरके सात लोकोंके नाम यथाः— १ भूः, २ भुवः, ३ स्वः, ४ महः, ५ जनः, ६ तपः, ७ सत्य। इसी प्रकार नीचेके सात लोकोंके नाम यथाः—१ अतल, २ वितल, ३ सुतल, ४ तलातल, ५ रसातल, ६ महातल, ७ पाताल। ऊपरके सात लोकोंमें देवता अर्थात् देवयोनिके जीव और नीचेके सात लोकोंमें असुर अर्थात् असुरयोनिके जीव वास करते और जाते आते रहते हैं। देवराजकी राजधानी स्वर्लोकमें है और असुरराजकी राजधानी पाताललोकमें है। इन चौदह लोकोंके पुनः अनेक अन्तर्विभाग हैं। यथाः—गन्धर्वलोक भुवर्लोक का अन्तर्विभाग है। इसी प्रकार भूलोकके चार अन्तर्विभाग हैं। यथाः—हमारा मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक, इन चारोंके सञ्चालक धर्मके नियमिक भगवान् यम धर्मराज हैं. जिनकी राजधानी पितृलोकमें है। और उनके दूत अन्य तीन लोकों अर्थात् मृत्युलोक, प्रेतलोक और नरकलोककी व्यवस्था बांधते हैं। मृत्युलोक वस्तुतः चतुर्दश लोकों का केन्द्र है। यहीं मातृगर्भसे जन्म होता है। सब जीवोंको शुभ और अशुभ कर्मोंके भोगके अनन्तर मृत्युलोकमें आकर कर्मसंग्रह करना पड़ता है। क्योंकि मृत्युलोक कर्मभूमि है और यहां शुभाशुभ कर्म करने का सुभीता है। देवता और असुर, जो वहींसे आगे नहीं बढ़ सकते, उनको इस मृत्युलोकमें आकर पुनः कर्मकरके आगे बढ़ना पड़ता है। इसी कारण मृत्युलोककी ब्रह्माण्डमें प्रधानता है। इस मृत्युलोकमें भारतवर्षही उत्तमाङ्ग अर्थात् मस्तकरूप है। इसी कारण भाषाकी पूर्णता, शरीरके अङ्ग, रूपरेखा, वाणी आदिकी पूर्णता, और प्रकृतिकी पूर्णता इसी भारतवर्षके स्त्री पुरुषोंमें देखनेमें आती है। यही कारण है कि, सीता-सावित्री जैसी स्त्रियां, ध्रुव-प्रह्लाद जैसे बालक, रघु-युधिष्ठिर जैसे राजा, शिवि-दधीचि जैसे दाता वशिष्ठ-विश्वामित्र जैसे तपस्वी, भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण जैसे अवतार, याज्ञवल्क्य और पतञ्जलि जैसे योगी, मार्कण्डेय और कपिल जैसे मुनि, भरद्वाज और अत्रि जैसे ऋषि, वाल्मीकि और व्यास जैसे ग्रन्थरचयिता, अनुसूया और लोपामुद्रा जैसी तपस्विनी, मदालसा और सुकन्या जैसी गृहिणी, इसी भारत-वर्षमें प्रकट हुईं और उन्होंने इसकी महिमा बढ़ाई है। भारतकी स्थूल प्रकृतिकी पूर्णता को तो आजकलके स्थूलदर्शी साइण्टिस्ट गणभी एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि, ऐसी पूर्ण प्रकृति युक्त भूमि पृथ्वीभरमें नहीं है। सर्वोच्च और सबसे अधिक समृद्धिशाली पर्वत हिमालय भारतवर्षमें ही है। सबसे अधिक शक्तिशाली तथा दैवी विभूतियुक्त नदी गंगा भारतवर्षमें ही है, जिसको "जर्मथ्योरी" के मानने वाले साइण्टिस्टोंने भी स्वीकार किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार प्रकारकी भूमि भारतवर्षमें ही है। छः ऋतुओं का यथाक्रम होना और हर समय कहीं न कहीं विद्यमान होना, भारतवर्षमें ही देखा जाता है। सब रङ्गोंके मनुष्य भारतवर्षमें ही देख पड़ते हैं। सब देशोंके उद्भिजसे लेकर सब पशुतक भारतवर्षमें जीवित और प्रसन्न रह सकते हैं। इन थोड़ेसे दिग्दर्शनोंसे भारतकी स्थूलप्रकृतिकी पूर्णता सिद्ध होती है। भारतकी सूक्ष्म प्रकृतिकी पूर्णताका जाज्वल्यमान प्रमाण उसका धर्मज्ञान, उसका तत्त्व-

इस वर्षमें जो सात कुल पर्वत हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं, विशाल, कम्वल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, विशोक और बुद्धमान। इनके अतिरिक्त पृथ्वीके मौलिस्वरूप और भी हजारों महाकाय पर्वत हैं, उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्युलाख्य आदि अनेक प्रकारके सैकड़ों मनुष्य वास करते हैं। इस वर्षमें रंक्षु, श्यामा और कम्वला आदि सहस्रों नदी हैं। उनमें उत्तम जलवाली मनोहारिणी श्यामा ही सबसे श्रेष्ठ है। इस वर्षके मनुष्य इन्हीं सब नदियोंका जल पीते हैं। यहांके मनुष्योंकी आयुभी पहलेकी ही भांति है। इस वर्षमें भगवान् हरि वराहरूपसे निवास करते है। इनके चरण, मुख, हृदय, पृष्ठ और पार्श्व देशमें तीन तीन नक्षत्र विभक्त हैं; उनमें शुभप्रद देश स्थित रहते हैं। हे क्रौष्टुके! यह मैंने आपसे केतुमाल वर्षका वर्णन किया है॥ ११—१७॥ हे द्विजवर! अब उत्तर कुरु देशका वर्णन करता हूं, सुनिये। इस उत्तर कुरु देशमें सर्वदा फल पुष्पोंसे युक्त, मधुर फलवाले, समस्त काम और कामोंके फलको देनेवाले वृक्ष फल उत्पन्न करते हैं, और उनके फलोंसे समस्त अलंकार उत्पन्न होते हैं। वहांकी भूमि मणिमयी, सुन्दर गन्धसे युक्त और सर्वदा सुखदेने वाली है। देवलोकसे परिभ्रष्ट होकर मनुष्य वहीं जन्म ग्रहण करते हैं। वे चक्रवाकके सदृश परस्पर अनुरक्त रहते हैं और समान कालतक रहनेवाले युग्म बालक बालिकाओंको उत्पन्न करते हैं। वह साढ़े चौदह हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। इस वर्षमें चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठकुल पर्वत हैं। वहांपर पवित्र और निर्मल जलके प्रवाह वाली भद्रसेना नामकी नदी पृथ्वीमें वहती है, इसी प्रकार औरभी छोटी छोटी सैकड़ों नदियां वहां वर्तमान हैं। और जो दूसरी नदियां हैं उनमें कोई क्षीर वाहिनी और घृत वाहिनी है और कोई दधिसरोवरसे युक्त है। और इन सात कुल पर्वतोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों छोटे छोटे पर्वत हैं। वहांपर सैकड़ों और हजारों रम्य वनोंमें अमृतके समान सुस्वादु फल फलते हैं। यहां परभी भगवान् विष्णु मत्स्यरूप धारणकर पूर्वकी ओर मस्तक किये हुए वास करते हैं। यहांपर नक्षत्र नवभागोंमें विभक्त होकर तीन तीनके क्रमसे स्थित हैं। हे मुनिवर इस प्रकार समस्त देश नव भागोंमें विभक्त हैं। इस वर्षमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप

ज्ञान, उसका वेद, उसका पुराण और उसका दर्शनशास्त्र समूह है। अतः भारतवर्षही पृथ्वीका स्वाभाविक मस्तकरूप है। जैसे मस्तकमें ही सब ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र रहता है, उसी प्रकार दैवीजगत्‌के साथ घनिष्ट संबंध भारतवर्षसे ही रहता है। यही कारण है कि, कलियुगके एक सहस्र वर्षतक देवतागण यहां साधारण तौर पर प्रत्यक्ष हुआ करते थे। ऋषि, देवता और पितरों का यहां घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान रहनेके कारण चारो युगोंका इसी भारतवर्षमें प्रधान रूपसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है और उनका प्रभाव यहीं अलग अलग दिखायी दिया करता है और यहीं वर्णाश्रमकी ठीक ठीक श्रृंखला विद्यमान हैं॥ १—११॥

नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं; दोनोंही समुद्रके बीचमें स्थित और पवित्र हैं। हे ब्रह्मन्! यह मैंने उत्तर कुरु वर्षका वर्णन भली भांति कर दिया है। इसके बाद किंपुरुषादिके विषयमें कहता हूं, सुनिये ॥ १८—२६ ॥

इसप्रकार मार्कण्डे महापुराणमें उत्तरकुरुकथन नामक उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५६॥

साठवां अध्याय

—:o:*:o:—

मार्कण्डेय बोले,—इसके बाद किंपुरुष नामक जो वर्ष है, उसका वर्णन मैं करता हूं; वहां शरीरधारी मनुष्योंकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है, वहांके स्त्री और पुरुष नीरोग और शोक हीन होते हैं। वहां नन्दन वनके समान एक प्लक्ष खण्ड है। वहांके पुरुषगण उन्हीं वृक्षोंका रस पीकर सदा स्थिरयौवन और स्त्रियां कमलके समान गंधवाली होती हैं। इस किंपुरुष वर्षके बाद हरिवर्ष नामक एक और वर्ष है, वहां जो पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, वे उत्कृष्ट रजतकी कान्तिवाले होते हैं, वे समस्त देवलोकसे च्युत देवताओंके ही समान रूपवान है। हरिवर्षमें मनुष्य मधुर इक्षु रसका पान करते हैं, उन्हें जरा पीड़ित नहीं करती, इसलिये जीर्ण (दुर्बल) नहीं होते। वे जब तक जीते हैं, नीरोग जीते हैं ॥ १–६ ॥ मेरुवर्षको मैंने मध्यम वर्ष कहा है, इसे इलावृत कहते हैं, वहां सूर्य नहीं तपता और मनुष्य वृद्ध नहीं होते। वहां चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रोंकी किरणे आत्म लाभ नहीं कर पातीं, क्योंकि वहां मेरुका ही अत्यन्त प्रकाश है। वहांके मनुष्य पद्मके समान कान्ति वाले, पद्मके समान गन्ध वाले और पद्मपत्रके समान विस्तृत नेत्र वाले होते हैं; वे जम्बू रसका पान करते हैं। वहां तेरह सहस्र वर्षकी परमायु होती है। मेरुके मध्यमें इलावृत वर्षका संस्थान शरावेका समान है। वहां मेरु महा शैल है और उसीके अनुसार इलावृत मेरुवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। अब इसके बाद रम्यक नामक वर्षका वर्णन करता हूं, सुनिये। वहां भी न्यग्रोध नामक हरे पत्तों वाला एक समुन्नत वृक्ष है, वहां मनुष्य उसीके फलोंका रस पीकर जीवन धारण करते हैं। उसके फलोंको खाने वालोंकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है, वे रति क्रीणामें निपुण, सुन्दर और जरा तथा दुर्गन्धिसे हीन होते हैं। उसके उत्तरमें जो वर्ष है उसका नाम हिरण्मयवर्ष है। वहां बहुतसे कमल-पुष्पोंसे शोभित हिरण्वती नामक नदी बहती है। वहां जो मनुष्य जन्म ग्रहण करते हैं

वे अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी यक्षोंके समान स्वरूप वाले, अत्यन्त सत्वशील, धनी और प्रिय दर्शन होते हैं ॥ ७-१५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें भुवनकोषान्तर्गत किंपुरुषादि वर्णन नामक साठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

टीका:—सनातन विज्ञानके कालनिर्णयके अनुसार १७२८००० वर्षका सत्ययुग, १२९६००० वर्षका त्रेता, ८६४००० वर्षका द्वापर और ४३२००० वर्षका कलियुग होता है। इस प्रकार चारों युगोंका मिलकर ४३२०००० मनुष्य वर्षोंका एक महायुग होता है। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसमें मनुपदपर दूसरे देवता आजाते हैं। अब इस वर्ष संख्याको देखनेसे बुद्धिमान् व्यक्तिमात्र समझ सकेंगे कि, इस विपुल कालमें प्रकृतिका कितना परिवर्तन हो सकता है। साइन्सके विद्वान् यह सिद्ध करते हैं कि, दो हजार वर्ष बाद पत्थर और मकान आदिका कुछ भी पता नहीं चल सकता। उसी प्रकार अधिक कालमें नदी पर्वतादिका भी रूपान्तर हो जाता है। ऊपरके ये सब वर्णन अन्यान्य मन्वन्तरोंके हैं। अतः हमारे वर्तमान मन्वन्तरके भूगोल वर्णनके साथ ऊपर लिखित भूगोल वर्णनका बहुत कुछ पार्थक्य होगा, इसमें सन्देह ही क्या है ? इस कारण यदि इस भूगोलके साथ नवीन भूगोल वर्णनका मेल न हो, तो शङ्का करनेका अवसर नहीं है। दूसरा विचार करनेका विषय यह है कि, पुराण और हमारे इतिहास शास्त्रमें अध्यात्मिक, अधिदैव और अधिभूत तीनोंका वर्णन साथही साथ चलता है। भेद यह है कि, जिसमें अधिभूत वर्णन अधिक हो, वह इतिहास कहाता है और जिसमें अधिदैव वर्णन अधिक हो, वह पुराण कहाता है। हमारे पुराण और इतिहास आजकलके लौकिक इतिहास नहीं हैं। वह धर्मग्रन्थ हैं। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, रामायणमें रामावतारकी कथा और महाभारतमें कृष्णावतार और पञ्चपाण्डवोंकी कथा और उसी प्रकार लौकिक राजाओंके वंश वर्णन अधिक हैं। इसी कारण रामायण और महाभारत इतिहास कहाते हैं। और सब पुराण कहाते हैं। महाभारतके विषयमें शङ्का-समाधानके लिये कहा जाता है कि, महाभारतका युद्ध केवल पांच सहस्र वर्षका पुराना होनेपर भी उसमें जो दैवी घटनाका वर्णन है, उसमें अर्जुनकी इसी शरीरसे स्वर्ग जाने और असुरलोकमें जाकर असुरोंसे युद्ध करनेका जो वर्णन है, उसका कारण यह है कि, सत्ययुग, त्रेतायुग द्वापरयुग और कलियुगके एक सहस्र वर्षतक देवताओंका साधारण तौरपर मृत्युलोकमें आना जाना बना था। ऋषियोंका भी आना जाना बना था। दैवी कृपासे तत्क्षण मनुष्य पिण्डमें देवपिण्डका परिवर्तन हो सकता था। ऋषिगणोंकी सहायता प्रत्यक्ष रूपसे पुण्यवान् मनुष्योंको प्राप्त हुआ करती थी। यही कारण है कि, महाभारतमें अनेक अलौकिक और असाधारण बातोंका वर्णन पाया जाता है। इस कारण शङ्काका अवसर नहीं है। और यह तो पुराण तथा इतिहास दोनोंकी विशेषता है कि, एक गाथामें कहीं अधिभूत व्यक्ति, कहीं अधिदैव व्यक्ति और कहीं आध्यात्म व्यक्तिका वर्णन साथही साथ किया जाता है। क्योंकि हमारे इतिहास और पुराण लौकिक इतिहास नहीं हैं। वे धर्म रहस्यको प्रकाशित करनेके शास्त्र ग्रन्थ हैं। अतः प्रत्येक गाथामें यह ध्यान रखना उचित है कि, हम जब अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध और समान अस्तित्व मानते हैं, तो तीनों ही कहा जा रहा है, ऐसी धारणा रहनी चाहिये। जब हम कहें कि, हे सूर्यदेव ! तुम हममें विद्यमान हो, तो समझना चाहिये कि; हम अपने नेत्रेन्द्रिय स्थित रूप तन्मात्राको लक्ष्य कर रहे हैं। जब हम उनको कहें कि, तुम विश्वज्योति हो, तब हम अधिभूत सूर्यमण्डलको लक्ष्य कर रहे हैं। जब हम कहें

इकसठवां अध्याय ।

—:※:—

कौष्टुकिने कहा,—हे मुनिवर ! मेरी जिज्ञासाके अनुसार आपने पृथ्वी, समुद्र ग्रह नक्षत्र आदिकी स्थिति, परिमाण, एवं पृथिव्यादिक तीनों लोकों, समस्त पातालों तथा स्वायम्भुव नामक प्रसिद्ध मन्वन्तरका वर्णन किया है । इस समय उक्त मन्वन्तरके परवर्ती अन्य समस्त मन्वन्तर, उन मन्वन्तरोंके विषयके सुननेकी मेरी इच्छा है । मार्कण्डेय बोले,—मैंने तुमसे स्वायम्भुव मन्वन्तरका जो वर्णन किया है, अब उसके परवर्ती स्वारोचिष नामक दूसरे मन्वन्तरका वर्णन सुनिये ॥ १–४ ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंकी अपेक्षा अधिक रूपवान, वेद वेदांग पारदर्शी, द्विजाति प्रवर, मृदु स्वभाव सदाचारी कोई ब्राह्मण वरुणा नदीके तीर अरुणास्पद नगरमें रहता था । अतिथि उसे सर्वदा प्रिय थे, रात्रिकालमें वह आये हुए लोगोंका आश्रय था । वह मनमें विचार करता कि, अति रमणीय वन और नदियोंसे उक्त अनेक नगरोंसे सुशोभित इस वसुन्धराको मैं देखूंगा इसके बाद एक समय समस्त औषधियोंके प्रभावको जानने वाला, मंत्र विद्या विशारद एक अतिथि उसके घर आया । श्रद्धासे पवित्र चित्त उस ब्राह्मणके पूछने पर उस अतिथिने उसके निकट विविध देश, रमणीय नगर, वन, नदी, पर्वत और पवित्र स्थानोंका वर्णन किया । तब उस अरुणास्पद निवासी ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा,—हे द्विजवर ! आप अनेक देश देखकर अब श्रान्त हो गये हैं, किन्तु न तो आप वृद्ध ही हुए और न आपका यौवन ही बीता है । इतने अल्प समयमें आपने किस प्रकार पृथ्वी परिभ्रमण किया है ॥ ५–११ ॥ आगन्तुक ब्राह्मण बोला,—हे विप्र, मंत्र और औषधिके प्रभावसे अप्रतिहतगति होकर एक सहस्र योजन मैं गमन करता हूं । मार्कण्डेय बोले,—फिर उस विद्वान् ब्राह्मणके वचनोंमें श्रद्धाकर अरुणास्पद, निवासी ब्राह्मणने कहा,—हे भगवन् ! मंत्र और औषधि देनेकी कृपा मुझ पर कीजिये; क्योंकि पृथ्वी देखनेकी मेरी बहुत ही इच्छा है । उस उदार बुद्धिवाले आगन्तुक ब्राह्मणने अरुणास्पद निवासी ब्राह्मणके पैरोंमें औषधि लेपकर दिया और उसकी बतलाई हुई दिशा का उपदेश भी दिया । ॥१२—१५॥ हे कौष्टुके ! इसके अनन्तर अतिथि के पाद लेपन कर देने पर "दिनके प्रथमार्धमें एक सहस्र योजन गमन करूंगा और अप-

---

कि, हमें चतुर्भुज रूपसे दर्शन दो, तब हम अधिदैव सूर्य मूर्तिको लक्ष्यकर रहे हैं । इसी प्रकार इतिहास और पुराणकी प्रत्येक गाथाका रहस्य समझते समय इस त्रिविध विज्ञानकी धारणा अवश्य रहनी चाहिये ॥७–१५॥

रार्धमें वापस भी आजाऊंगा।" यह सोचकर अनेकों प्रस्रवणों (उपपर्वतों) के सहित वह हिमालय देखने के लिये चल दिया और अनायास ही हिमालय पृष्ठपर पहुंचकर हिमालयकी भूमिमें भ्रमण करने लगा। वहां हिमके पैरमें लगनेसे उत्तम औषधियोंसे बना हुआ वह पादलेप धुल गया। सुतरां ब्राह्मण जड़गति होगये। वह इसके अनन्तर इधर उधर घूमते हुए हिमालयके अत्यन्त मनोहर शिखर देखने लगे। सिद्ध गन्धर्वोंसे सेवित, किन्नरोंसे मनोरम, इधर उधर देवगणोंकी क्रीड़ा और विहारसे रमणीय, ।सैकड़ों दिव्य अप्सराओंके द्वारा परिव्याप्त उस हिमालयके शिखरोंको देखते देखते पुलकित होकर वह द्विजवर तृप्ति लाभ न करसके ॥ १६—२२ ॥ वह ब्राह्मण दत्तचित्त हो देखने लगे,—कहीं हिमालय पर्वत स्रोतोंसे गिरे हुए जलपातसे शोभा पा रहा है, कहीं नाचते हुए मयूरोंकी वाणीसे निनादित हो रहा है; कहीं दात्यूह (पपीहा) कोयष्टि (तीतर) आदि पक्षियोंसे परिवृत हो रहा है, कहीं कोयलकी मधुर कूकसे प्रतिध्वनित हो रहा है, और कहीं वृक्ष समूहमें खिले हुए पुष्पोंकी गन्धसे सुवासित वायुद्वारा वीजित हो रहा है ॥ २३—२५ ॥ यह ब्राह्मण पुत्र हिमालय पर्वत देखकर "कल फिर आकर देखूंगा" यह निश्चयकर घर जानेके लिये इच्छा करने लगे। वहां विलम्ब होनेके कारण उनका पादलेप भ्रष्ट हो गया था। अतएव वह जड़गति होकर सोचने लगे, "इस समय हिमजलमें हमारा पादलेप नष्ट हो गया है और हमभी अत्यन्त दूर दुर्गम हिमालय शैलमें चले आये हैं। अब बड़ा सङ्कट उपस्थित हो गया है; अग्निहोत्रादिक क्रियाकी हानि होगी, उसे यहां मैं कैसे कर सकूंगा? 'यह रम्य है, यह रम्य है' इस प्रकार इस श्रेष्ठ पर्वतपर सौ वर्षमें भी तृप्ति लाभ न कर सकूंगा ॥ २६—३० ॥ चारों ओरसे किन्नर गणोंका श्रुतिमधुर सुन्दर आलाप सुनाई देता है, कुसुमित वृक्षोंकी सुगन्धिसे घ्राणेन्द्रिय तृप्तिलाभ करती है, वायुका स्पर्श सुखकारी है और फल रसयुक्त हैं। सुन्दर सरोवर हठात् चित्त चुरालेते हैं। इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर यदि किसी तपोधनको देखपाता तो उससे घर जानेका उपदेश पा सकता।" मार्कण्डेय बोले,—पैरोंमें लगी हुई औषधिकी शक्तिके लुप्त हो जानेसे परम दुःखित होकर वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करते करते हिमालय भ्रमण करने लगे। उसी समय वरूथिनी नामक मौलैया, महाभागा और रूपवती किसी अप्सराने भ्रमण करते हुए उन्हे देखा। उन द्विजवरको देखकर कामदेवके द्वारा आकृष्ट हृदय हो, वह वरूथनी उसी समय उनसे प्रेम करने लगी। वरूथनी सोचने लगी, यह सुन्दर आकृति वाले पुरुष कौन है? यदि यह हमारा अपमान न करें तभी हमारा जन्म सफल होगा! अहा! इनकी कैसी अपूर्व रूप माधुरी है? कैसी मनोहर गति है? दृष्टिकी गम्भीरता है कहां? पृथ्वीमें और ऐसा पुरुष कहां? देव, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, और पन्नग सभीका

रूप मैंने देखा है, किन्तु उनमें इनके समान रूपवान और किसीको नहीं देखा। मैं उनके प्रति जिस प्रकार अनुरागिणी हूं, उसी प्रकार यदि वह भी मेरे प्रति अनुरक्त होजांय तो हमारे पूर्वजन्मोंके किये पुण्योंका फल प्राप्त हो जाय। यदि यह हमारे ऊपर स्नेहस्निग्ध दृष्टि डालें तो हमारी अपेक्षा त्रैलोक्यमें और कौन पुण्यवती रमणी होगी?" ॥ ३१—४१ ॥ मार्कण्डेय बोले, वह देवांगना वरूथिनी कामदेवसे पीड़ित होकर, इस प्रकार चिन्ता करते करते अपने सुन्दर अंग प्रत्यंग उस ब्राह्मणको दिखाने लगी। वह द्विजपुत्र उस रूपवती वरूथिनीको देखकर आदरके साथ आकर बोले, हे सुन्दरी! तुम्हारा वर्ण कमलगर्भकी कान्तिवाला है। तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? यहां क्या करती हो? मैं ब्राह्मण हूं, अरुणास्पद नगरसे यहां आया हूं। हे मदिरेक्षणे, मैं जिसके प्रभावसे यहां आया हूं, वह मेरा पादलेप हिंमजलसे नष्ट होकर उसीमें मिल गया है। वरूथिनी बोली, मैं वरुथिनी नामकी प्रसिद्ध भाग्य शालिनी अप्सरा हूं। इसी रमणीय महापर्वतपर सदैव विचरण किया करती हूं। हे विप्र, इस समय आपके दर्शनसे कामदेवके आधीन हो मैं लांछनेके योग्य हो गई हूं। मुझे आदेश दीजिये, मैं क्या करूं? इस समय मैं आपके आधीन हूं। ब्राह्मण बोले, हे चारुहासिनि, मैं जिस उपायसे अपने घर जा सकूं वह मुझसे कहिये। हे कल्याणि! प्रवासके वशसे इस समय हमारे सभी नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी हानि हो रही है। ब्राह्मणके लिये नित्य नैमित्तिक कार्य्योंकी हानि वहुतही अनिष्टकर होती है। अतएव हे भद्रे! इस हिमालयसे हमारा उद्धार करो। ब्राह्मणोंका प्रवास कभीभी प्रशंसनीय नहीं है। हे भीरु! मैंने कोई अपराध नहीं किया है। देश दर्शनके कौतूहलसे ही मैं प्रवासी हूँ। घरमें रहनेवाले ब्राह्मणके नित्य नैमित्तिक सभी कर्म निष्पन्न होते हैं, किन्तु प्रावासी होनेपर उन सभी कार्योंकी हानि होती है। हे यशस्विनी! अधिक बोलनेकी क्या आवश्यकता? इस समय वही कीजिये, जिससे सूर्यास्तके पूर्व ही मैं घर पहुंच सकूं। ॥ ४२-५२ ॥ वरूथिनी बोली,—हे महाभाग! ऐसा मत कहिये, वह दिवस ही उपथित न हो, जिस दिन आप मुझे छोड़ कर अपने घर जायं। हे द्विज नन्दन! स्वर्ग भी इस स्थान की अपेक्षा रमणीय नहीं है। अतएव हम लोग इन्द्र लोकको छोड़ कर यहीं रहें। हे कान्त! आप इस हिमाचलमें हमारे साथ विहार करते हुए अपने बन्धुओंका स्मरण भी नहीं करेंगे। इसी स्थानमें मैं आपको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूँगी, क्योंकि, मैं आपके आधीन हूं। हे महाभाग, इस स्थानमें वास करनेसे वीणा और वेणुका स्वर, किन्नरोंके मनोहर गीत, आल्हाद जनक संगीत, उष्ण अन्न, पवित्र अन्नजल, अभिलाषित शय्या और सुगन्धि और अनुलेप यह सभी आपको सुलभ हो जायंगे। यहां न रहनेसे अपने घरमें आपको और क्या अधिक मिलैगा? यहां रहनेसे

आप कभी भी जरा ग्रस्त नहीं होंगे। यह यौवनकी वृद्धि करनेवाली देवताओंकी भूमि है। यह कहकर उस अनुरागवती कमलनयनीने सहसा व्याकुल होकर मधुर स्वरसे "प्रसन्न होइये" कहकर उनका आलिंगन कर लिया ॥ ५३-६० ॥ ब्राह्मणने कहा, हे दुष्टे! तू मेरा स्पर्श मत कर। जो तेरे योग्य हो, तू उसके पास जा। मैंने तुझसे किसी रूपमें प्रार्थनाकी और तू उसे किसी दूसरे रूपमें ग्रहण कर मुझसे मिलनेकी चेष्टा करती है। प्रातः और सायं हवन करनेसे नित्यलोक प्राप्त होते हैं। हे मूर्खे! यह अखिल त्रैलोक्य होमके द्वारा ही प्रतिष्ठित है, अतएव उसके निर्वाहके लिये जिस उपायसे मैं घर जा सकूं, उसे शीघ्र ही कह। वरूथिनीने कहा, हे विप्र! मुझे देखकर क्या तुम्हें प्रेम नहीं होता? यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है? गन्धर्व और किन्नरोंको छोड़कर कौन व्यक्ति आपको अभीष्ट है। आप निश्चय ही यहांसे अपने घर जा सकेंगे। इस समय आप थोड़ीदेरके लिये मेरे साथ दुर्लभ भोगोंका भोग कीजिये। ब्राह्मणने कहा, गार्ह्यपत्य, आहवनीय और दक्षिण, यही तीन अग्नि हमें अभीष्ट हैं, अग्नि-गृह ही रमणीय स्थान है और विस्तरिणी देवी ही मुझे प्रिय हैं। वरूथिनीने कहा, हे द्विजवर! आठ प्रकारके आत्म गुणोंमें दया ही प्रधान है, आप सद्धर्म पालक होकर भी हमारे ऊपर दया क्यों नहीं करते। मैं आपके विना जीवित न रहूंगी, [मुझे आपके प्रति इतना अनुराग हो गया है। मैं यह झूठ नहीं कहती, अतएव हे, कुलनन्दन! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥६१-६७॥ ब्राह्मणने कहा, यदि सत्य ही तुम मुझसे प्रेम करती हो और जो मुझसे कहती हो वह यदि बनावटी नहीं है तो जिस उपायसे मैं घर पहुँच सकूं वह बताओ। वरूथिनीने कहा, आप अपने घर जा सकेंगे, यह निश्चय है, किन्तु इस समय थोड़ी देरके लिये आप मेरे साथ दुर्लभ भोगोंको भोगिये। ब्राह्मणने कहा, हे वरूथिनी! स्त्रियोंके साथ इस प्रकार चेष्टा ब्राह्मणके पक्षमें भोगके लिये उचित नहीं है, वह उन्हें इस लोकमें भी क्लेश देती है और परलोकमें भी शुभ फल देनेवाली नहीं होती। वरूथिनीने कहा,—मैं मर रह हूं, मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें पुण्यका ही फल प्राप्त होगा और अन्य जन्ममें विविध प्रकारके भोग प्राप्त होंगे। इस प्रकार परलोक और जन्मान्तर दोनों अवस्थाओंमें आप सुखी होंगे। किन्तु मुझे निराश करने पर मेरी मृत्यु होगी और आपको पाप होगा। ब्राह्मणने कहा, 'पर स्त्रीकी इच्छा न करे' यह मेरे गुरुजनोंने कहा है। इसलिये चाहे तू विलाप कर चाहे जीवनका त्याग, मैं तेरी अभिलाषा नहीं करता ॥ ६८-७३ ॥ मार्कण्डेय बोले, वरूथिनीसे यह कहकर उस नियमवान महाभाग ब्राह्मणने आचमन कर पवित्र हो, गार्ह्यपत्य अग्निको प्रणाम कर उपांशु (जो सुना न जा सके) जपके द्वारा कहा, हे भगवान् गार्ह्यपत्य अग्ने! तुम सब कर्मोंके बीज रूप हो। आपहीसे आवहनीय और दक्षिणाग्नि उत्पन्न हुई हैं, उनका और

कोई उत्पादक नहीं। तुम्हारे ही प्रसन्न होनेसे देव वृष्टि और शस्यके हेतु होते हैं। शस्यसे ही समस्त जगत् प्रतिष्ठित है और किसीसे नहीं। तुमसे ही जिस सत्यके द्वारा यह जगत् इस प्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यके द्वारा आज सूर्यके रहते अपना घर देख सकूं, जिस सत्यके द्वारा समस्त वैदिक धर्म यथोचित कालमें मुझसे नहीं छूटते, उसी सत्यके द्वारा अपने घर जाकर सूर्यका दर्शन करूँ, जिस सत्यके द्वारा मेरी मति परस्त्री और परद्रव्यकी अभिलाषा नहीं करती, उसी सत्यके द्वारा मुझे आज भी सिद्धि प्राप्त हो॥७४–७६॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिष मनूत्पत्यन्तर्गत ब्राह्मणवाक्य नामका इकसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

बासठवां अध्याय।

—::*::—

मार्कण्डेय बोले,—यह कहते कहते ही ब्राह्मण पुत्रके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने आकर अधिष्ठान कर लिया। इस प्रकार अधिष्ठित होकर प्रभामण्डलके मध्यवर्ती वह ब्राह्मण कुमार, मूर्तिमान अग्निके सदृश उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे। उस रूपमें ब्राह्मण कुमारको देखते ही उस दिव्यांगनाका और भी अनुराग बढ़ा, किन्तु गार्हपत्य नामक अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण उस समय वह ब्राह्मण कुमार पहलेकी भांति जानेके लिये शीघ्र ही प्रवृत्त हो गये। वह बड़े वेगसे चले गये। वह तन्वंगी अप्सरा उन्हें जहां तक दृष्टि गई, देखती रही। उसका गला दीर्घ निश्वाससे कंपने लगा ॥ १–५ ॥ उसी समय ब्राह्मण कुमारने तत्क्षण ही अपने घर पहुंच कर पूर्वोक्त प्रकारसे समस्त क्रियायें कीं। इसके अन्तर उस सर्वाङ्गसुन्दरी वरूथनीने उन ब्राह्मण कुमारके प्रति आसक्त मन हो, दीर्घ निश्वास लेते लेते शेष दिवस और समस्त निशा व्यतीत की। वह अनिन्दित अंगवाली मदिरेक्षणा सासें भरती हुई हाहाकार कर बार बार रोती रही, वह मंदभाग्या कह कर अपनी निन्दा करने लगी। न विहारमें, न आहारमें, न रमणीय वनमें और न रम्य कन्दराओंमें ही उसे सन्तोष मिला। दो चक्रवाकोंको रमण करते देख कर उसे भी अभिलाषा हुई, किन्तु वह वरारोहा ब्राह्मणकुमारसे परित्यक्त होनेके कारण अपने यौवनकी निन्दा करने लगी ॥ ६–१० ॥ "दुष्ट दैवके वशीभूत हो मैं इस पर्वतमें कहां आ गई? और

टीका:—यह उपर्युक्त गाथा यथावत् सत्य होनेपर भी आजकलकी बुद्धिमें नहीं समाती। इसका कारण यह है कि, यह दूसरे मन्वन्तरकी बात है। उस समयकी दैवी शक्तिका आविर्भाव और तिरोभाव और उस समयके मानवपिण्डकी उपयोगिता अवश्य ही अन्य प्रकारकी थी, जो हमारी वर्त्तमान धारणासे परे है ॥ १–७९ ॥

कहांसे वैसा पुरुष मेरे दृष्टिगत हो गया ? यदि आज वह महाभाग मेरा संग नहीं करेगा, तो इस दुःसह कामाग्निमें जलकर निश्चय ही जीवन त्याग करूँगी। जिस कोयलका शब्द पहले मुझे अच्छा लगता था, आज ब्राह्मण कुमारसे पृथक् होनेके कारण वही मुझे जला रहा है।" मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार वह कामदेवके वशीभूत हो मुनिवरको देखने लगी, उस समय उसका अनुराग प्रतिक्षण बढ़ने लगा। पूर्व समयमें, अपने ऊपर अनुरक्त कलिनामक एक गन्धर्वको वरूथिनीने दूर कर दिया था। उसने उसे इस अवस्थामें देखा। तब वह सोचने लगा, "इस पर्वतमें यह गजगामिनी निश्वास पवनसे परिम्लान हो रही है, इसे किसी मुनिने शाप दिया है क्या ? अथवा किसीने इसका अपमान किया है ? क्योंकि इसके मुख पर वाष्पाश्रु गिर रहे हैं।" इसके अनन्तर कौतूहलके कारण बहुत देर तक ध्यान धर कर समाधिके प्रभावसे उसने सभी बातें जान लीं ॥ ११-१८ ॥ मुनिके वृन्तातको जान कर कलि सोचने लगे कि, "हमारे ही पूर्व कृत पुण्योंके फलसे ही यह अभिलषित प्राप्त हुआ है। अनुरक्त होकर मेरे बार बार प्रार्थना करने पर भी इसने दूर ही रक्खा, वह आज मुझे प्राप्त होगी। यह मनुष्यके ऊपर अनुरक्त हुई है, यदि मैं भी मनुष्य रूप धारण करूँ तो यह निश्चय ही मुझसे रमण करेगी। तब विलम्ब ही क्यों ? वही करूँ।" मार्कण्डेय बोले, अपने प्रभावसे उस ब्राह्मणका रूप रख कर वह कलिनामक गन्धर्व जहां वरूथिनी बैठी थी वहीं विचरण करने लगा। उसे देख कर उस वरारोहाके नेत्र कुछ कुछ विकासित हो गये। वह पास आकर बार बार कहने लगी, "प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये ! आपसे परित्यक्त होनेपर मैं निश्चय ही जीवन छोड़ दूंगी। उससे महान् अधर्म और क्रियाका लोप होगा। इस महापर्वतकी कन्दरा में मेरे साथ रहकर, मेरी रक्षा करनेके कारण अवश्य ही धर्म लाभ करेंगे। हे महामते ! निश्चय ही मेरी आयु अभी समाप्त नहीं हुई, इसलिये मेरे हृदयको आनन्दित करनेवाले आप लौट आये हैं" ॥ १९-२८ ॥ कलिने कहा, हे कृशोदरि ! क्या करू ? यहां रहनेसे क्रियाकी हानि तो होगी ही और तुम भी इस प्रकारके वाक्य कह रही हो। इसलिये मैं संकटमें पड़ गया हूं, मैं जो कहूं वही करना यदि तुम स्वीकार करो तभी तुम्हारे साथ मेरा संग हो सकता है, अन्यथा नहीं। वरूथिनीने कहा, आप प्रसन्न होइये। जो आप कहेंगे, वही मैं करूंगी। मैं झूंठ नहीं बोलती हूं, कहिये, मुझे इस समय क्या करना चाहिये। कलिने कहा, आज वनमें सम्भोगके समय तुम मुझे देखना नहीं, नेत्र बन्द किये तुम्हारे साथ मेरा संसर्ग होगा। वरूथिनी बोली, यही हो। आपकी जैसी इच्छा है, वैसा ही होगा। मैं इस समय सभी प्रकारसे आपके आधीन हूँ ॥ २९-३१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिषमन्वन्तरमें बासठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६२॥

त्रेसठवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, वह कलि वरूथिनीको साथ लेकर पर्वतों, कुसुमित कानन, सुन्दर सरोवर, रमणीय कन्दरा, नदी तीर तथा अन्य मनोज्ञ स्थानोंमें प्रसन्न चित्त हो विहार करने लगे । अग्निसे अधिष्ठित होकर उस ब्राह्मणका जैसा तेजस्वी स्वरूप हो गया था, सम्भोगके समय वरूथिनी नेत्र बन्द कर वैसा ही रूप चिन्तन करने लगी । हे मुनि सत्तम ! उस गन्धर्वके वीर्यसे उस अप्सराने गर्भ धारण किया, ब्राह्मणके चिन्तनसे उसका रूप भी वैसाही तेजस्वी हुआ । इसके बाद गर्भिणी वरूथिनीको सान्त्वना देकर, उससे बिदा ले वह विप्ररूपधारी गन्धर्व चला गया । सूर्यके समान अपनी किरणोंसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी एक बालक उत्पन्न हुआ । स्वरोचि अर्थात् अपनी अंग प्रभासे प्रकाशित होनेके कारण वह बालक स्वरोचि नामसे प्रख्यात हुआ ॥ १—७ ॥ चन्द्रमाकी कलायें जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन बढ़ती हैं, उसी

टीका—मैथुनी सृष्टिमें ध्यानके साथ सृष्टिका असाधारण घनिष्ठ सम्बन्ध है इसको प्राचीन आर्यगण अच्छी तरह समझते थे। अबतो साइंटिसगण कुत्ते आदिकी सृष्टिमें इस विज्ञानको काममें लाते हैं। छोटी जातिके कुत्ते और छोटी जातिकी कुतियाके सामने बड़ी जातिका कुत्ता बांध देते हैं। वह ऐसी बड़ी जाति का कुत्ता होता है कि जिससे उस छोटी जातिकी कुतियामें गर्भ नहीं रह सकता । इस सुकौशल पूर्ण क्रिया का नित्य फल कुत्तेकी सृष्टिमें साइंटिस्ट लोग प्राप्त करते हैं । उससे यह फल होता है कि ऐसी नवीन ढंगकी सृष्टिके कुत्ते देखनेमें उसी बड़ी जातिके कुत्तेके समान होते हैं, परन्तु शरीरसे छोटे होते हैं । पश्चिमी साइंटिस्ट अभी इस विद्याको इतना ही समझे हैं, परन्तु हमारे त्रिकालदर्शी महर्षि गण इस विद्याके पारंगत थे, अश्वमेध यज्ञका जो घोड़ा पैदा किया जाता था; वह इसी तरहसे किया जाता था । अश्वमेधमें जैसे चित्र विचित्र रंगके घोड़ेकी आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकारका सुन्दर घोड़ा मिट्टीका बनाकर सामने रक्खा जाता और उसके सामने किसी अच्छी घोड़ीको खड़ा कर अन्य घोड़े से संगम कराया जाता था उस से ठीक आवश्यकताके अनुसार अश्व पैदा हो जाता था । इस विज्ञानकी व्यवस्था शास्त्रोंमें पायी जाती है । केवल अश्व शास्त्रमें ही इस सृष्टि व्यवस्थाको बांधकर हमारे पूज्यपाद ऋषिगण निश्चिन्त नहीं हुए। उन्होंने मनुष्यकी उत्पत्तिके विषयमें इसी सृष्टि विज्ञानके आधारपर अनेक आचारकी व्यवस्थाकी है अभीतक उन सब सदाचारोंकी श्रृंखला हमारे गृहस्थोंमें पायी जाती है । ऋतुमती स्त्री चतुर्थदिवसके स्नानके अनन्तर पतिका मुख पहिले देखती है । पतिके अनुपस्थित होनेपर देवर आदिका मुख देखती है । सद्गृहस्थोंके शयनागारमें देवता ऋषि और अवतारोंके चित्र रखनेकी आज्ञा है । इस पुराणके इस स्थलपर ऋषिके प्रेम में अप्सराको धोखा देकर यक्षने जो ऋषिका रूप बनाकर स्त्री संसर्ग किया उस समय अप्सराको ऋषिका ही ध्यान रहा, और उस ध्यानके बलसे उसके गर्भमें ऋषिके तुल्य रूप वाला पुत्र ही नहीं हुआ बल्कि उनके गुण भी आगये । यह गाथा अति सूक्ष्म विज्ञान मूलक है ॥ १-७ ॥

प्रकार उस महाभाग बालकके गुण-समूह आयुके साथ साथ प्रतिदिन बढ़ने लगे। उन महाभाग स्वरोचिषने क्रमसे चारों वेद, समस्त शास्त्र और धनुर्वेदसे शिक्षित होकर यौवन की सीमामें पदार्पण किया। उन सुन्दर चेष्टा वाले स्वरोचि ने किसी समय मन्दर पर्वतपर भ्रमण करते हुए एक गिरि प्रस्थ पर एक भयभीत कन्याको देखा। इन्हें देखकर उसने 'रक्षा करो' यह वाक्य कहा। उन्होंने उस भयभीत नेत्रों वाली कन्यासे कहा 'डरो मत'। उन महात्मा ने वीरजनोचित वाक्यमें पूछा, क्या बात है? इसपर वह कन्या हांफनेके कारण अस्पष्ट अक्षरोंमें कहने लगी, इन्दीवर नामक विद्याधरके औरस पुत्र मरुधन्वाकी कन्यासे मेरा जन्म हुआ है, मेरा नाम मनोरमा है। विभावती और कलावती नामकी मेरी दो सखी हैं। पहली तो मन्दार नामक विद्याधरकी कन्या है, और दूसरी पार मुनीकी ॥८-१४॥ मैंने उन लोगोंके साथ एक दिन कैलासके किनारे जाकर वहां एक मुनिको देखा। वह अत्यन्त दुर्बल थे; उनका शरीर तपके कारण अत्यन्त कृश हो गया था, भूखसे उनका कण्ठ क्षीण हुआ जाता था, उनके नेत्रकी पुतलियां मानों बाहर निकली आती थीं। मेरे उपहास करने पर, क्रुद्ध हो, अत्यन्त क्षीण स्वरसे, होठोंको कुछ कुछ कंपाते हुए उस तपस्वीने मुझे यह शाप दिया 'ऐ दुष्ट तापसि अनार्ये। तूने मेरा उपहास किया है, इस लिये तू शीघ्रही किसी राक्षस द्वारा पराभूत होगी, मुनिके इस प्रकार अभिषाप देनेपर वे दोनों सखी मुनिकी भर्त्सना कर कहने लगीं,–'तुम्हारे क्षमाहीन ब्राह्मण धर्मको धिक्कार है, तुम जो तपस्या करते हो वह सब व्यर्थ है, क्योंकि ब्राह्मण धर्मका आधार क्षमा, और क्रोधका संयम ही तप है, तपस्यामें तुम अभी पूर्ण नहीं हुए और इसी बीचमें क्रोधके वशीभूत हो नष्ट होगये। यह सब सुनकर उन अतुलप्रभाववाले मुनिने उन्हें भी शाप दिया। एकसे बोले 'तुम्हारे सर्वाङ्गमें कुष्ट हो' और दूसरीसे उन्होंने कहा 'तुम्हारे क्षय रोग हो। मुनिके कहनेके अनुसार ही उसी क्षण उनके वह रोग होगये और मेरे पीछे भी एक महाराक्षस लग गया ॥ १५—२१ ॥ आज तीन दिन हो गये, किसी प्रकार भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता, वह निकट ही गर्जन कर रहा है, क्या आप नहीं सुन रहे हैं? समस्त अस्त्रों के सारसे निर्मित यह प्रसिद्ध अस्त्र आपको प्रदान कर रही हूं, हे महामते! आप इसके द्वारा इस राक्षस से मेरी रक्षा कीजिये। इस अस्त्रको पहले पिनाक पाणि रुद्रने स्वायंभुव मनुको दिया था, स्वायंभुव मनुने उसे सिद्ध श्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रदान किया, उन्होंने मेरे नाना चित्रायुधको इसे दिया। मेरे पिताको यौतुक (दहेज) के स्वरूपमें स्वयं श्वसुरने इसे प्रदान किया। हे वीर! बाल्यकालमें मैंने अपने पिताके निकट समस्त अस्त्रोंके सारभूत, शत्रुओंको विनास करनेवाले इस अस्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। उसी समस्त अस्त्रोंके आश्रय स्वरूप इस वेगगामी अस्त्रको ग्रहणकर इस ब्रह्मघाती राक्षसका हनन कीजिये।

॥ २२—२७ ॥ मार्कण्डेय बोले,—इसके अनन्तर स्वरोचि के स्वीकार करलेने पर उस विद्याधरीने आचमन कर रहस्य और निवर्तनके सहित वह अस्त्र हृदय [मंत्र] प्रदान किया। इसी बीचमें वह भीषणकृति राक्षस, बड़ाभारी गर्जन करते हुए वहां बड़े वेगसे आ उपस्थित हुआ। स्वरोचि ने देखा, वह कह रहा था—"मेरे आक्रमण करने पर कौन रक्षा करेगा? अब विलम्बकी आवश्यकता ही क्या? शीघ्र आओ, मैं भक्षण करूं।"उसको आया देखकर स्वरोचि चिन्ता करने लगे. "यह राक्षस इसे ग्रहण करे तो उस महामुनि के वचन सत्य होंगे।" उनके यह सोचते सोचते ही उस राक्षस ने विद्याधरीको आकर पकड़ लिया, वह सुमध्यमा रक्षा करो रक्षा करो, कहकर करुण विलाप करने लगी। इसके अनन्तर क्रोधित होकर स्वरोचि, अत्यन्त भैरव प्रचण्डास्त्रको संयोजित कर, निर्निमेष दृष्टिसे उस राक्षसको देखने लगे ॥ २८—३३ ॥ उस समय उनकी दृष्टिसे भय विह्वल होकर वह निशाचर, मनोरमाको छोड़, स्वरोचि से कहने लगा,—'प्रसन्न होइये' अस्त्रको शान्त कीजिये। सुनिये मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं। हे महाद्युते! बुद्धिमान ब्रह्ममित्रने जो दुरन्त शाप दिया था, आपने मुझे उससे मुक्त कर दिया है। हे महाभाग! आपसे अधिक मेरा और कोई उपकारी नहीं है, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त क्लेशकर ब्रह्मशापसे मुक्त किया है। स्वराचि ने पूंछा,—'महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुम्हें किस लिये और कैसा शाप दिया था। राक्षसने कहा,—ब्रह्ममित्र मुनिने अथर्व वेदके त्रयोदश अधिकारका ज्ञान प्राप्तकर, आठ भागोंमें विभक्त समस्त आयुर्वेदका अध्ययन किया था। मेरा नाम इन्दीवर है मैं इस कन्याका पिता और खड्गधारी नल नाभ नामक विद्याधरका पुत्र हूं। मैंने पहले उक्त ब्रह्ममित्र मुनिके निकट यह प्रार्थनाकी कि, हे भगवन्! आप हमें अशेष आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये। हे वीर! विनयावनत होकर मेरे बार बार प्रार्थना करने परभी जब मुनिने मुझे आयुर्वेद विद्या प्रदान न की, तब हे अनघ! शिष्योंके पढ़ाते समय छिपकर वह आयुर्वेद विद्या ग्रहण की। आठ मासके अन्तरमें विद्या ग्रहण करलेने पर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ और बार बार हास्य करने लगा ॥ ३४—४३ ॥ हास्यसे सब जानकर, क्रोधित हो मुनिने, कंधे कंपाते हुए मुझसे यह कठोर शब्द कहे,—"हे दुर्मते! तूने राक्षसके समान अदृश्य होकर विद्याकी चोरी और मेरा उपहास किया है, अतएव तू मेरे शापसे अपने अधिकारसे च्युत होकर सात रात्रिमें ही भयंकर राक्षस होगा, इसमें सन्देह नहीं। ऐसा कहनेपर प्रणिपातादिक अनेक उपायोंसे उन्हें प्रसन्न किया। थोड़ी देर हीमें प्रसन्न चित्त हो, उन्होंने मुझसे फिर कहा,—'हे गन्धर्व! मैंने जो कहा है, वह अवश्यही होगा, उससे अन्यथा नहीं; किन्तु तुम राक्षस होकर फिर अपनी देह प्राप्त करोगे। नष्टस्मृतितथा तथा क्रोधित हो राक्षसके रूपमें जब तुम अपनीही पुत्रीके खाने

की इच्छा करोगे तब उसीके अस्त्राग्निसे तापित हो फिर स्मृति और अपने शरीरको प्राप्त करोगे। उसी प्रकार गन्धर्व लोकमें तुम्हारा स्थान भी तुम्हें मिलेगा।" हे महाभाग! आपने इस समय मुझे इस निशाचरत्वके महाभयसे मुक्त किया है, इस लिये हे वीर! मेरी एक प्रार्थना और कीजिये। हे महामते! यह कन्या मैं आपको सम्प्रदान करता हूं; आप इसे भार्यारूपमें ग्रहण कीजिये और मैंने जो उन मुनिके पाससे समस्त अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त किया है, उसेभी प्रदान करता हूं ग्रहण कीजिये॥ ४४—५२॥ मार्कण्डेय बोले,—दिव्याम्बर और दिव्यभूषण, युक्त पूर्व शरीरमें स्थित होकर उस गन्धर्वने विद्या प्रदानकर जब कन्यादानका उपक्रम किया, तब वह कन्या निजरूप धारी अपने पितासे बोली,—"हे तात! इन महात्माके दर्शन करनेके समयसे ही मुझे इनके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है; और इस परभी इस समय यह हमारे उपकारी हैं। किन्तु हमारी दो सखियां हमारे लिये दुःख भोग रही हैं, अतएव इनके साथ मुझे भोगोंके भोगनेकी अभी अभिलाषा नहीं है। मनोहर स्वभाव वाले पुरुषभी जब ऐसा नृशंस आचरण नहीं कर सकते, तब मेरे सदृश स्त्री कैसे कर सकती है। वे कन्यावस्थामें मेरे लिये जिस प्रकार दुःखसे पीड़ित हो रही हैं, उसी प्रकारमैं भी उनके दुःखमें शोकानलसे जला करूंगी॥ ५३—५८॥ स्वरोचिने कहा,—हे सुमध्यमे! अपने इस शोकका परित्याग करो आयुर्वेद शास्त्रके प्रसादसे मैं तुम्हारी दोनों सखियोंको रोगसे मुक्त करूंगा। मार्कण्डेय बोले;—इसके अनन्तर स्वरोचिने उस पर्वतमें पितासे समर्पित उस चारु लोचना कन्याके साथ विवाह किया। कन्यादानके अनन्तर गन्धर्व पुत्रीको सांत्वना देकर दिव्य गतिसे अपने लोकको चला गया। स्वरोचिनेभी उस कृशांगीके साथ उस उद्यानको गमन किया, जहां दोनों कन्याएं मुनिके शापसे रोगातुर हो वास कर रहीं थीं। इसके अनन्तर आयुर्वेदके तत्वको जानने वाले विजयी स्वरोचिने रोगको नाश करने वाली औषधियों और रसोंसे दोनो सखियोंके शरीरको नीरोग कर दिया। तब व्याधिसे मुक्त अति रूपवती उन दोनों कन्याओंके शरीरकी प्रभासे वह पवत प्रकाशित होने लगा॥ ५८—६३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें त्रेसठवां अध्याय समाप्त हुआ॥ ६३॥

चौसठवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार रोगसे विमुक्त होकर प्रसन्न चित्त हो एक कन्या स्वरोचि से कहने लगी कि, हे प्रभो! मेरे वचनोंको श्रवण कीजिये, मैं मन्दार नामक विद्याधरकी कन्या हूं, मेरा नाम विभावरी है। आपने जो मेरे साथ उपकार किया है, उसीके प्रतिदान स्वरूप मैं आत्म सम्प्रदान करती हूं, और वह विद्या भी दूंगी जिसके द्वारा सब प्राणियोंका स्वर जाना जा सकता है। आप कृपा पूर्वक गृहण कीजिये। मार्कण्डेय बोले, धर्मज्ञ स्वरोचिके 'एवमस्तु' कहकर स्वीकार कर लेनेपर द्वितीय कन्या उस समय यह वाक्य कहने लगी 'कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्य व्रतधारी, वेद वेदांगके पारदर्शी महात्मा पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं॥ १—५॥ पुंस्कोकिलके अलापसे रमणीय वसन्त ऋतुमें पहले किसी समय उनके समीप पुञ्जिकास्तना नामकी एक प्रसिद्ध अप्सरा आयी। उस समय वह मुनिपुङ्गव कामके वशीभूत होगये। उनके संयोगसे इसी महापर्वत पर उस अप्सराके गर्भसे मैं उत्पन्न हुई हूं। इसके अनन्तर मेरी माता मुझे व्याल और श्वापदसे व्याप्त इस निर्जन वनमें भूपृष्ठपर अकेली छोड़कर चली गयी, तब एक महात्मा गंधर्व मुझे लेजाकर पालन करने लगे। वहां शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई चन्द्रकलासे परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाती किन्तु कृष्ण पक्षमें जब चन्द्रकी कला कलाक्षीण होती उस समय मेरी कला नहीं; यह देखकर उन प्रतिपालक गन्धर्वने मेरा नाम कलावती रक्खा॥ ६—१०॥ कुछ दिनों बाद एक दिन अलि नामक एक असुरने आकर महात्मा पिताके निकट मेरे लिये प्रार्थना की। उस समय उन्होंने मुझे जब उस राक्षसको प्रदान नहीं किया, तब उसने मेरे पिताको शाप देकर मार डाला। तब मैं अत्यन्त दुःखके कारण दृढ़ प्रतिज्ञ हो आत्मविनाशके लिये उद्यत हो गई, तब शम्भुपत्नी सतीने मुझसे निवारण कर कहा; हे सुभ्रु! शोक मत करो। 'स्वरोचि नामक एक महात्मा तुम्हारे भर्ता होंगे, उनके पुत्र मनु होंगे और समस्त निधियां तुम्हारी आज्ञाका सादर पालन करेंगी। हे शुभे! तुम्हारी इच्छाके अनुसार वह धन प्रदान करेंगी; किन्तु हे वत्से! जिस विद्याके प्रभावसे समस्त निधियां तुम्हारी आज्ञानुवर्तिनी होंगी, महा पद्मसे पूजित पद्मिनी नामकी उसी विद्याको मुझसे ग्रहण करो॥ ११—१५॥ सत्यपरायण दक्षकी सुता सतीने मुझसे यह कथा कही है; वह कभी भी झूंठ न बोलेंगी; अतएव आप निश्चय ही वही स्वरोचि हैं। मैं आपको देह, प्राण और वह विद्या अर्पण करती हूं; आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो ग्रहण कीजिये।

मार्कण्डेय बोले,—इसके बाद स्वरोचिने कलावतीसे 'ऐसाही हो' कहा। फिर स्निग्ध दृष्टिके द्वारा विभावरी और कलावती दोनोंकी अनुमति पाकर देवताओंके सदृश कान्ति वाले स्वरोचिने उनका भी पाणि ग्रहण किया। विवाहके समय देवताओंके वाद्य बजने और अप्सराओंका नृत्य होने लगा ॥ १६—१६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वरोचिष मन्वन्तरमें चौसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६४॥

पैंसठवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर देवताओंकी कान्तिवाले स्वरोचि अपनी पत्नियोंके साथ उस शैलेन्द्रके रमणीय कानन और निर्झर प्रदेशमें रमण करने लगे। हे महाभाग क्रौष्टुके! निधिगण पद्मिनी विद्याके वशवर्ती होकर उपभोग करनेके योग्य विविध रत्न, सुमधुर मद्य, माल्य, वस्त्र, अलंकार सुगन्धि, अनुलेपन, आसन, रजत, काञ्चन, कमण्डलु, सुवर्णनिर्मित विविध पात्र एवं दिव्य आस्तरण युक्त विविध शय्या आदि वस्तु इच्छानुसार प्रदान करने लगीं। स्वरोचि दिव्य सुगन्धिसे सुवासित और रत्नादिसे प्रकाशित पार्वत प्रदेशमें तीनों पत्नियोंके साथ विहार करने लगे ॥ १—५ ॥ स्वर्गके समान उस रमणीय श्रेष्ठ पर्वत पर स्वरोचिके साथ विहार करती हुई उक्त तीनों पत्नियां भी अत्यन्त आल्हाद प्राप्त करने लगीं। उसी समय स्वरोचि और उनकी पत्नियोंका वैसा प्रेम देखकर उसीके अनुरूप प्रणयकी इच्छा करती हुई एक कलहंसी दूसरी जल स्थित कलहंसीसे कहने लगी, "यह जो युवक अपनी स्त्रियोंके साथ इच्छित भोग्य विषयोंको भोग रहा है, यही धन्य है, यही पुण्यवान है। इस जगतीतलमें रूप और यौवनसे युक्त ऐसे अनेक सुपुरुष हैं, जिनकी पत्नियां रूपवती नहीं। किन्तु पति और पत्नी दोनों हीं सुन्दर हों, ऐसे दम्पति विरल हैं; किसीको पत्नी प्रिय है, किसी स्त्रीको पति प्रिय है किन्तु दोनोंको परस्पर अनुराग हो, ऐसे दम्पति अत्यन्त दुर्लभ हैं; अतएव अपनी पत्नियोंका प्रियतम यह युवक धन्य है, इसकी प्रियतमा पत्नियें भी धन्य हैं; क्योंकि जो धन्य हैं, उन्हींमें परस्पर अनुराग होता है॥६-११॥ कलहंसीके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर चक्रवाकी बहुत विस्मित न होकर उससे बोली,—"हे सखि! यह स्वरोचि धन्य नहीं है। एक स्त्रीके समीप रहते यह अन्य स्त्रीसे सम्भोग करता है, सुतरां इसे कुछ भी लज्जा नहीं है। इसका मन भी सब जगह बराबर नहीं रहता; क्योंकि चित्तका अनुराग जब एक ही स्थानमें अधिष्ठित रहता है, उस समय यह अन्य स्त्रियोंसे समान अनुरागी कैसे होगा? यह पत्नियां भी इसको प्रिय नहीं हैं और न यह पति ही इनको

प्रिय है; अन्य परिजनोंके समान यह भी एक विनोद मात्र है। यदि यह सभीको प्रिय है तो प्राणोंको क्यों नहीं छोड़ता है? एक स्त्री जब इसका ध्यान करती है, उस समय यह दूसरीका आलिंगन करता है; विद्याओंके ग्रहण करनेके कारण, उसके मूल्यमें बिका हुआ-सा यह नौकरके समान आचरण करता है; क्योंकि बहुत स्त्रियोंमें समान प्रेम नहीं रहता। ॥१२—१७॥ हे कलहंसि! मेरा पति धन्य है और मैं धन्य हूं; क्योंकि मैं उसकी एक मात्र पत्नी हूं, उसका चित्त एक मात्र मुझमें और मेरा चित्त एक मात्र उसीमें लगा रहता है।" मार्कण्डेय बोले,—सब प्राणियोंके स्वरको जाननेवाले अपराजित स्वरोचि इसे सुनकर लज्जित हो चिन्ता करने लगे, 'जो यह कहती है, वही सत्य है, झूठ नहीं है।' इसके अनन्तर उस महापर्वत पर रमण करते हुए स्वरोचिके जब सौ वर्ष बीत गये तब उन्होंने एक दिन सामने मृगियोंके झुण्डके साथ विहार करते हुए स्निग्ध एवं पुष्ट अंगोंवाले एक मृगको देखा। कस्तूरीकी गंधसे सुवासित हिरणियोंसे वह घिरा हुआ था॥ १८–२१॥ उस समय हरिणियोंका झुण्ड नाक सिकोड़ सिकोड़ कर मृगके शरीरको सूंघ रहा था, उक्त मृग उनसे कहने लगा, पत्नियों, अब तुम जाओ, तुमने लज्जा छोड़ दी है। हे सुन्दर नेत्रोंवाली, मैं स्वरोचि नहीं हूं, न उसकी तरह मेरा स्वभाव ही है। स्वरोचिके समान तुम्हें अनेक निर्लज्ज मिलेंगे उन्हींके पास जाओ। एक रमणी अनेकोंके अनुगत होनेपर जिस प्रकार हास्यास्पद होती है, उसी प्रकार भोगके लिये अनेक स्त्रियोंके द्वारा निरीक्षित पुरुष भी हास्यास्पद होता है; उस समय प्रति दिन उसकी क्रियाकी हानि होती है। वह व्यक्ति एक

टीकाः—वैदिक विज्ञानका यह सिद्धान्त है, और कर्ममीमांसा शास्त्र इसको सिद्ध करता है कि सृष्टिमें प्रथमसे ही दो धारा चलती हैं; एक स्त्री-धारा और दूसरी पुरुष-धारा। उद्भिज्जमें यही दो धारा विद्यमान हैं, स्वेदज, अण्डज आदिमें भी यही क्रम है। मनुष्यमें यही दोनों धारा मिलकर सृष्टिकी पूर्णता सम्पादन करती हैं। इस कारण पुरुष भी असम्पूर्ण रहता है और स्त्री भी असम्पूर्ण रहती है। जब विवाह संस्कारसे दोनों मिल जाते हैं तभी सब वैदिक संस्कार और याग यज्ञादिका वह दम्पति अधिकारी होता है। इस कारण चाहे प्रेमके विचारसे हो, चाहे धर्मके विचारसे हो, और चाहे सुख शान्तिके विचारसे हो स्त्रीके लिये एक पतिव्रत और पुरुषके लिये एक पत्नीव्रत ही परम मंगलकर रूपसे शास्त्रोंमें माना गया है। यही शुद्ध सनातन धर्म है। और यही आदर्श गृहस्थ धर्म है, जिसको भगवान् रामचन्द्रने अपने जीवनमें आदर्शरूपमें स्पष्ट किया है। शंका समाधानके लिये यह कहा जा सकता है कि स्त्री जातिके लिये तपोधर्म प्रधान आधार होनेसे स्त्रीके लिए दूसरे पुरुषोंकी चिन्ता करना भी अधर्म है। परन्तु पुरुष जातिका धर्म यज्ञप्रधान होनेसे पुत्र प्राप्तिके लिये पितरोंके उद्धारके निमित्तसे सन्तति न होनेपर दूसरी पत्नीका भी ग्रहण शास्त्रानुमोदित है। परन्तु यह गौणधर्म है, मुख्य नहीं है। केवल कामके विचारसे अन्य पत्नीका ग्रहण करना कामज कार्य होगा, धर्मज नहीं। यही आदर्श धर्म है। इसी धर्मका यहां प्रतिपादन किया गया है॥ १२—१७॥

भार्याका संग होनेपर दूसरी भार्याकी सदैव कामना करता है, अतएव परलोकसे पराङ्मुख स्वरोचिके स्वभाववाला जो कोई दूसरा नर हो उसको कामना करो। तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचिके तुल्य नहीं हूं ॥२२–२६॥

इस प्रकार मारकण्डेय महापुराणमें स्वरोचिषमन्वन्तरमें पैंसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६५॥

छासठवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार हरिणके द्वारा मृगांगना निरस्त हो गई, स्वरोचि यह सब सुनकर अपनेको पतित समझने लगा। हे मुनि सत्तम! उसने चक्रवाकी और मृगके वाक्य सुनकर और मृगके आचरणसे अपनेको निन्दनीय समझकर उसी समय पत्नियोंके परित्यागकी अभिलाषा की; किन्तु फिर उनके साथ मिलकर, कामदेवके प्रबल होनेके कारण उनका वैराग्य दूर होगया और उन्होंने छः सौ वर्ष तक रमण किया। किन्तु उदार बुद्धिवाले स्वरोचिसे पत्नियोंके साथ विषयोंका भोग करते समय भी धर्माश्रित समस्त क्रियाओंको यथा विधि सम्पन्न करते ॥ १—४ ॥ इसके अनन्तर विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नामक स्वरोचिके तीन पुत्र हुए। इन्दीवर विद्याधरकी कन्याके गर्भसे विजय, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और कलावतीके गर्भसे प्रभावका जन्म हुआ। समस्त भोगोंको देनेवाली पद्मिनी नामकी विद्याके प्रभावसे पिता स्वरोचिने तीन नगरोंका निर्माण किया। पूर्वकी ओर कामरूप पर्वतके ऊपरके प्रदेशपर बने हुए विजय नामक श्रेष्ठ पुरको पहले विजय नामक पुत्रको प्रदान किया। इसके अनन्तर उत्तर दिशामें अत्यन्त ऊंचे वप्र प्रकार से परिवेष्टित नन्दवती नामकी विख्यात पुरी मेरुनन्दकको एवं दक्षिणदिशामें तालनामक नगर कलावतीके पुत्र प्रभावको स्वरोचिने प्रदान किया ॥ ५—१० ॥ हे विप्र! इस प्रकार वह नर श्रेष्ठ तीनों पुत्रोंको तीनों नगरोंमें प्रतिष्ठित कर मनोहर प्रदेशोंमें विहार करने लगे। एक समय धनुष लेकर वनमें विहार करते समय उन्होंने अत्यन्त दूरमें एक वाराह देख धनुष चढ़ाया। उसी समय एक हरिणी उनके समीप आकर बार-बार कहने लगी, इस वाणको मेरे ऊपर छोड़ो; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। इस वाराहको मारनेसे क्या होगा? शीघ्र ही मेरा वध कीजिये। आपका चलाया हुआ बाण दुःखसे मेरी रक्षा करेगा ॥ ११—१४ ॥ स्वरोचिने कहा, मुझे तुम्हारा शरीर रुग्ण नहीं दिखाई देता! क्या कारण है कि तुम अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहती हो? मृगी बोली, जिसका हृदय अन्य रमणीसे

आसक्त है, उसी पर मेरा मन अनुरक्त है, उसके बिना मृत्यु ही मेरी औषध है, विशेष क्या? स्वरोचिने कहा, हे भीरु! तुम्हारी कौन अभिलाषा नहीं करता और तुम किसपर अनुरक्त हो, जिसके न मिलने पर तुमने प्राण छोड़नेका संकल्प किया है। मृगीने कहा, मैं तुम्हारी ही इच्छा करती हूं। आपका कल्याण हो। आपने ही मेरा चित्त चुराया है। इसी कारण मैं मृत्युकी आकांक्षा करती हूं, आप शीघ्र ही मेरे ऊपर वाण छोड़िये ॥ १५—१८ ॥ स्वरोचिने कहा, तुम चंचल अङ्गोवाली मृगी हो, हम मनुष्यरूपधारी हैं; अत एव मेरे सदृश मनुष्यके साथ तुम्हारा संयोग कैसे होगा? मृगीने कहा, यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हो गया हो तो मेरा आलिङ्गन कीजिये। यदि आपका चित्त शुद्ध है, तो जैसी आपकी इच्छा होगी वैसा ही कार्य करूंगी। इस प्रकार आपके द्वारा मेरा अत्यन्त सम्मान होगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर स्वरोचिने उस हरिणांगनाका आलिङ्गन किया। किन्तु उनके आलिङ्गन करते ही वह दिव्य देह धारिणी होगई। तब आश्चर्य चकित, हो स्वरोचिने पूंछा, "तुम कौन हो?" उसने प्रेम एवं लज्जाके कारण गद्गद स्वरसे कहा, मैं इस काननकी अधिदेवता हूं; देवताओंने मुझसे प्रार्थना की है, इसलिये मैं आपके निकट आई हूं। हे महामते! आपको मेरे गर्भसे मनु उत्पन्न करना चाहिये। आपके प्रति मैं अनुरागिणी हूं, इस लिये भूलोकका प्रतिपालक पुत्र मुझसे उत्पन्न कीजिये, यह मैंने देवताओंके कथनानुसार आपसे कहा है ॥१६—२४॥ मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर स्वरोचिने उस वनदेवताके गर्भसे उसी क्षण समस्त लक्षणोंसे युक्त, अपने समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। उसके उत्पन्न होते ही देववाद्य बजनेलगे; गन्धर्वपति गान करने लगे; अप्सरायें दल बांधकर नृत्य करने लगीं, दिग्गज जलके बूंदोंसे सींचने लगे; इसी प्रकार तपोधन ऋषि और देवगण चारोंओर पुष्प वृष्टि करने लगे। उसके तेजको देखकर पिताने स्वयं नाम-संस्कार किया। उसके तेजसे समस्त दिशायें

टीका—मनुपद इन्द्र, वरुण, आदिके समान देवपद हैं। कालप्रमापक देवपद मनु कहाता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें उस देवपदके अधिकारी व्यक्ति बदल जाते है। मन्वन्तर कितने वर्षोंका होता है। सो पहले कहा जा चुका है। यहां जो सृष्टिका वर्णन है वह भी दैवी सृष्टिका वर्णन है। मानवी वैजी सृष्टिका वर्णन नहीं है। इसको स्मरण रक्खा जाय। वह मृगी वनदेवी थी। वनदेवी पशुओंका रूप धारण कर सकती है। स्वर्गादिमें भी आरूढ पतित जीवोंकी पशुसृष्टि रहती है, वहांके कोकिल मृगादि जन्तु आरूढ पतित जीव होते हैं। अतः मृगीके द्वारा देवऋषिके औरससे स्वारोचिष मनुष्य जन्म होना दर्शनशास्त्रके विरुद्ध नहीं होगा और इस कारण इस विषयमें शंकाका अवसर नहीं है। जिस प्रकारकी सृष्टि इस मृत्युलोकमें होती है, उसकी तुलना देवलोककी सृष्टिके साथ नहीं हो सकती। वहांकी गर्भधारण प्रथा, वहांकी सन्ततिकी उत्पत्ति आदिका ढंग और प्रकारका है। विशेषतः यह सब समाधिसे प्राप्त गाथायें अन्य मन्वन्तरकी होनेसे इनमें विचित्रता अवश्य ही होगी ॥ २५—३० ॥

प्रकाशित होने लगीं, इसलिये उस महा बल और पराक्रमशील बालकका 'द्युतिमान' नाम रक्खा गया। स्वरोचिके पुत्र होनेके कारण उसका 'स्वारोचिष' भी नाम उड़ा। किसी समय रमणीयगिरि निर्झरोंमें विचरण करते करते उक्त स्वरोचिने अपनी पत्नीके सहित एक हंसको देखा ॥२५—३०॥ उस समय हंस साभिलाष हंसीसे बारबार कहने लगा हे जलचरि! अपने मनको निवृत्त करो, तुम्हारे साथ हमने बहुत देर विहार किया है। चिरकाल तुम्हारे साथ भोग करनेसे ही क्या होगा? वृद्धावस्था आगई है, हमारे और तुम्हारे दोनोंके विषय वासना छोड़नेकी यह काल है। हंसीने कहा, भोगमें अकाल कैसा? यह समस्त जगत् ही भोगमय है, क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणभी भोगके ही लिये यज्ञादिक करते हैं, इसी प्रकार विवेकी पुरुष दृष्ट और अदृष्ट भोगोंकी कामना करते हुए दान देते और पूर्ण धर्मके अनुष्ठान करते हैं। संयतात्मा और विवेकी पुरुषोंके कर्मोंका फल भी जब भोग ही है, तब हम सरीखे तिर्यग् जातिके लिये कहना ही क्या? अब उसी भोगकी तुम इच्छा नहीं करते, सो क्यों? ॥ ३१—३५ ॥ हंसने कहा, जो भोगमें अनासक्त चित्त हैं, उनकी मति परमात्मानुगामिनी है; बन्धुवर्गके सहित रहनेवाले व्यक्तिकी वैसी मति कब और कैसे हो सकती है? पुत्र, मित्र और स्त्री आदिमें आसक्त प्राणिगण तालावके दलदलमें फंसे हुए वनगजके समान दुःख प्राप्त करते हैं। हे भद्रे! क्या तुम नहीं देखती हो, यह जात संग स्वरोचि बचपनसे ही काममें आसक्त और स्नेहके दलदलमें मग्न है। यौवनमें स्त्रियोंमें और इस समय पुत्र और नातियोंमें निमग्न स्वरोचिके मनका किस प्रकार उद्धार होगा? हे जलेचरि! मैं स्वरोचिके समान स्त्रियोंमें बंधा हुआ नहीं हूं; मैं विवेकवान हूं, इस समय भोगसे निवृत्त होगया हूँ। मार्कण्डेय बोले, पत्नीके कहे हुए इन वाक्योंको सुनकर स्वरोचिको उद्वेग हुआ; वह तीनों पत्नियोंको लेकर दूसरे तपोवनमें चले गये, वहां स्वरोचिने पत्नियोंके साथ घोर तपश्चरण करते हुए समस्त पापोंसे मुक्त होकर विमल लोकोंको गमन किया ॥ ३६—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वरोचिष मनवन्तरमें छासठवां अध्याय समाप्त हुआ॥६६॥

सरसठवां अध्याय।

इसके अनन्तर भगवानने द्युतिमान स्वारोचिषको प्रजापति मनु बनाया, उनका मन्वन्तर सुनिये। उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो समस्त देवता मुनि और मनुपुत्र भूपाल गण हुए, उन्हें कहता हूं, आप मेरे निकट श्रवण कीजिये। उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें

देवगण पारावत और तुषित नामसे तथा इन्द्र विपश्चितके नामसे विख्यात थे। ऊर्ज, स्तम्ब प्राण, दण्डालि, ऋषभ, निश्चर, और अर्वरीवान नामक सप्तर्षि थे। महात्मा स्वारोचिष मनुके चैत्र, किम्पुरुष आदिक महापराक्रमी पृथ्वीका भरण करने वाले सात पुत्र हुए। जितने समय तक उनका मन्वन्तर रहा, उतने समय तक उनके वंशके राजागण पृथ्वीका भोग करते रहे। मन्वन्तरोंमें स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय हैं। इस स्वारोचिषके चरित्र एवं स्वारोचिष मनुके जन्मके श्रवण करने पर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है ॥ १—२०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सरसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

अरसठवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा, हे भगवन्! स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुका जन्म वृत्तान्त आपने मुझसे सविस्तर कहा है। अब समस्त भोगोंको देनेवाली पद्मिनी नामकी विद्याके आश्रित जो समस्त निधियां हैं, उनके विषयमें मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये। हे गुरो! आठ प्रकारकी निधियोंका स्वरूप और द्रव्य संस्थिति आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूँ। मार्कण्डेय बोले, पद्मिनी नामकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है, यह विद्या ही आठ प्रकारकी निधियोंका आधार स्वरूप है। मैं उसे कहता हूं, आप श्रवण कीजिये ॥ १—४ ॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंख नामक आठ निधियां इस पद्मिनी विद्याके आश्रित हैं। समृद्धि होनेपर यह निधिसमूह एवं उनकी सिद्धि प्राप्त होती है। हे क्रौष्टुके! यह आठ प्रकारकी निधियां तुम्हारे निकट कह दी गई हैं। देवताओंके प्रसादसे और साधुओंकी सेवासे यह निधियां मनुष्योंके धनको सदैव देखा करती हैं। इनका जैसा स्वरूप है, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनिये। पद्म नामक निधि पहले मय दानवके एवं उसके पुत्र, पौत्र, और प्रपौत्रोंके आधीन रहा। इससे अधिष्ठित होनेपर पुरुष दाक्षिण्यवान्, सत्वगुणसम्पन्न और महाभोगी होता है, क्योंकि यह निधि सात्विक है ॥ ५—१० ॥ पद्मसे अधिष्ठित होने पर पुरुष विपुल सुवर्ण, रौप्य और ताम्र आदिक धातुओंका प्रतिग्रह तथा क्रय और विक्रय करता है, अनेक प्रकारके यज्ञकर विपुल दक्षिणा प्रदान करता है। वह एकाग्र चित्त हो सभा और मन्दिरका निर्माण करता है। महापद्म नामक निधि सत्वाधार कहकर प्रसिद्ध है; उससे अधिष्ठित होनेपर पुरुष भी सत्व प्रधान होता है। महापद्मनिधिसे अधिष्ठित होनेपर पुरुष पद्मरागादि रत्न मौक्तिक और प्रवालोंका स्वामी होता है एवं उन्हींका क्रय तथा विक्रय करता है। जो योगी

हैं उन्हें आवास और जनोंको उत्साह प्रदान करता है, और स्वयं भी योगशील है। उसके पुत्र पौत्रादिक वंशोत्पन्न उसीके समान शीलवान् होते हैं; पूर्वकी अपेक्षा दूसरेमें आधे परिमाण में रहकर यह सात पीढ़ीमें ही परित्याग नहीं करती ॥ ११—१६ ॥ मकर नामक निधि तामस्र है। उससे अधिष्ठित पुरुष तमोगुण प्रधान और सुशील होता है। इससे अधिष्ठित पुरुष धनुर्वाण खड्ग, चर्म का परिग्राही होता है, भोज्य वस्तुके आस्वाद ग्रहण करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ होता है; राजाओंकेसाथ उसकी मैत्री होती है; वह भूपालप्रिय, शौर्यवृत्तिवाले पुरुषोंको दान देकर संतुष्ट होता है; वह शस्त्रोंके क्रय और विक्रयके अतिरिक्त और किसी कामसे प्रसन्न नहीं होता; वह द्रव्यके लोभमें डाकुओंके हाथसे अथवा युद्धमें मारा जाता है। मकरनिधिवाला यह पुरुष एक ही का अनुगामी होता है, उसके बादकी पीढ़ीका नहीं। कच्छप नामक जो निधि है उससे निरीक्षित पुरुष तमोगुण प्रधान होता है, क्योंकि यह निधि तामस है। वह पुरुष पुण्ययुक्त समस्त आचार और समस्त अदृष्ट पदार्थोंका भोग करता है, किसीका विश्वास नहीं करता एवं कच्छप जिस प्रकार अपने अंग छिपा लेता है उसी प्रकार अपने चित्तको समेट कर वह अपने मनको संयममें रखता है। विनाशके भयसे धनका न वह स्वयं उपभोग करता है और न दूसरोंको दान देता है। यह निधि एक पीढ़ी पर्य्यन्त ही पृथ्वीपर रहती है॥ १७—२४ ॥ हे द्विज! मुकुन्द नामक जो दूसरी रजोगुण नामक निधि है, उससे अवलोकित पुरुष रजोगुणसे सम्पन्न होता है। वह वीणा, वेणु, मृदंगादिक चार प्रकारके बाजोंका परिग्रह करता है; गायक नर्तकोंको प्रचुर धन प्रदान करता है; वन्दी, सूत, विट् (लम्पट) और लास्यपाठी (नर्तनाभिज्ञ) मनुष्योंको अभिलाषित भोगोंको प्रदान करता और उन्हींके साथ स्वयं उनका उपभोग करता है; इस पुरुषकी कुलटा और वैसे पुरुषोंके साथ प्रीति नहीं होती। जिस पुरुषकी यह निधि सेवा करती है, केवल उसीकी अनुगामिनी होती है। नन्द नामक महानिधि रज और तम दोनों गुणोंसे सम्पन्न होती है, उससे अवलोकित पुरुष अत्यन्त जड़ताको प्राप्त होता है; वह धातु रत्न और धान्यादि पवित्र द्रव्यों का परिग्रह एवं क्रय विक्रय करता है॥२५–३०॥ हे महामुने! वह व्यक्ति स्वजन आगत और अभ्यागतोंका आश्रय रूप होता है, वह थोड़ेसे भी अपमानके शब्द नहीं सहन कर सकता है, प्रशंसा करनेपर अत्यन्त प्रसन्न होता है, अर्थिगण जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, वह उन्हें वही प्रदान करता है। वह स्वयं मृत्यु स्वभाववाला होता है, उसके सुखके लिये अत्यन्त सुन्दर पुत्रवती अनेक स्त्रियां होती हैं। हे सत्तम! अष्टम भागसे वृद्धि करता हुआ यह निधि सात पीढ़ी तक अनुगामी होता है, यह अपने आश्रित पुरुषको दीर्घायु करता है। यह बन्धुओंका और दूरसे आये हुए पुरुषोंका भरण पोषण करता है, परन्तु परलोकमें इसका आदर नहीं

होता, पड़ोसियोंके प्रति इसका स्नेह नहीं होता, पहिलेके मित्रोंमें शिथिलता एवं नवीन मित्रोंमें स्नेह संस्थापन करता है ॥३१-३६॥ सत्व और रजोगुणसे सम्पन्न महानिधिका नाम नीलनिधि है, इससे अधिष्ठित पुरुष सत्त्व और रजोगुणसे युक्त होता है, वह वस्त्र, कपास धान्यादि, फल और पुष्पका परिग्रह करता है; मुक्ता, मूंगा, शंख, शुक्ति आदि तथा काष्ठ एवं जलसे उत्पन्न वस्तुओंका क्रय विक्रय करता है, उसका और जगह मनही नहीं लगता। वह व्यक्ति तालाब, पुष्करिणी, और नदियोंके पुलको बनवाता है; वृक्षोंको लगवाता है, वह अङ्गलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओंका उपभोग करता है। यह नीलनिधि तीन पीढ़ी तक अनुगमन करती है ॥ ३७—३९ ॥ शंख नामक जो निधि है, वह रज और तमोगुणसे युक्त है, उससे अधिष्ठित पुरुष भी उन्हीं गुणोंसे युक्त होता है। यह निधि एक ही पुरुषका अनुगमन करती है, अन्यपुरुषको नहीं प्राप्त होती। हे क्रोष्टुके! जिस पुरुषकी निधि शंख है, उसका स्वरूप सुनिये। वह पुरुष स्वयं उपार्जित उत्कृष्ट अन्नको खाता एवं उत्कृष्ट वस्त्र पहनता है, किन्तु उसके परिवारको कुत्सित अन्न एवं कुत्सित वस्त्र मिलते हैं। शंखनिधि-वाला पुरुष, मित्र, कलत्र, माता, पुत्र और पुत्रवधू आदिके भरणपोषणके लिये कुछ नहीं देता, वह सदा अपने ही पोषणमें तत्पर रहता है। यह निधि मनुष्योंकी अर्थदेवताके नामसे प्रसिद्ध है। मिश्रावलोकनसे अर्थात् एक साथ कई निधियोंके देखनेसे यह मिश्र-फल देनेवाली होती हैं, अलग देखनेसे अपने ही स्वभावके अनुकूल फल देती हैं। हे द्विज! श्रीरूपिणी पद्मिनी नामकी विद्या उक्त आठ प्रकारकी निधियोंकी स्वामिनीके पदपर अधि-ष्ठित है ॥ ४०—४७

इसप्रकार मार्कण्डेयमहापुराणमें निधिनिर्णय नामक अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

टीका—यह सब निधियां स्वयं ही दार्शनिक विज्ञानसे युक्त हैं। इन निधियोंके विज्ञानको समझ लेनेसे मनुष्य चरित्रवेत्ता, पण्डित और ज्योतिष आदि बहुत कुछ मनुष्य सम्बन्धी ज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीनकालमें इस भारतभूमिमें क्या योगविद्या, क्या अध्यात्मविद्या, क्या मानव विज्ञान, क्या नानाजीवतत्त्व विज्ञान, क्या स्त्रीविज्ञान क्या पुरुषविज्ञान, क्या पदार्थविज्ञान, क्या पारलौकिक विज्ञान सब विषयोंका पूर्णज्ञान पुस्तकोंके द्वारा प्राप्त होता था। अब हमारी उन पुस्तकोंका सहस्रांश भी नहीं मिलता ॥ १—४७ ॥

उनहत्तरवां अध्याय ।

—०:*:०—

कौष्टुकिने कहा—हे ब्रह्मन्, मेरे पूछने पर आपने मुझसे स्वारोचिषमन्वन्तर तथा आठों निधियोंका वर्णन विस्तार पूर्वक कर दिया है, अब उत्तम नामक तृतीयमन्वन्तर मुझसे कहिये। मार्कण्डेय बोले—सुरुचि नामक रानीके गर्भसे उत्तानपादके महाबली एवं पराक्रमशील उत्तम नामक एक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। वह धर्मशील, महात्मा और पराक्रमके धनी राजा हुए, सूर्यके समान उनका पराक्रम सब प्राणियोंको अतिक्रमण करके प्रकाशित होता था। हे महामुने! वह भूपति शत्रु-मित्र एवं प्रजा पुत्रको समान दृष्टिसे देखते थे; वह दुष्टको शत्रुके सदृश और साधुको चन्द्रमाके सदृश थे ॥ १—५ ॥ इन्द्रने जिस प्रकार सब लोकोंमें विख्यात शचीसे विवाह किया था, उसी प्रकार धर्मके जाननेवाले उत्तानपादके पुत्र उत्तमने बभ्रु की बहुला नाम्नी कन्यासे विवाह किया। चन्द्रमा जिस प्रकार रोहिणीके प्रति आसक्त रहता है, उसी प्रकार प्रसिद्ध बहुलाके प्रति उनका मन भी आसक्त रहने लगा। उनका मन और कहीं भी मुग्ध नहीं होता था; स्वप्नमें भी वह उसीका ध्यान धरते थे। वह उस सुन्दर अवयवोंवाली पत्नीका दर्शन करते ही स्पर्श करते, और स्पर्श करते ही तन्मय हो जाते थे। किन्तु रानीको भूपतिके वाक्य उद्वेग उत्पन्न करनेवाले और अत्यन्त सम्मान उसको अपमानजनक प्रतीत होता था॥५-१०॥ वह प्रदान की हुई माला तथा अत्यन्त सुन्दर आभूषणोंके प्रति अवज्ञा प्रकट करती; उसके अत्यन्त उत्कृष्ट आसवपान करते समय वह उठ जाती, मानो उसके अंगोंमें पीड़ा उत्पन्न होने लगी हो। भोजन करते समय यदि राजा थोड़े समयके लिये उसका हाथ पकड़ लेते तो वह बहुत हर्षित न हो थोड़ासा खा लेती। इस प्रकार महात्मा पतिके अनुकूल होनेपर भी वह अनुकूल न रहती और इसपर भी राजा उसपर अधिकाधिक अनुराग प्रकट करते थे। कभी एक समय स्वयं आसवपान कर राजाने सुरासे पवित्र पानपात्रको आदर पूर्वक मनस्विनी रानीके हाथमें दे दिया। उस समय बहुतसे भूपालोंके समक्ष संगीतमें निपुण श्रेष्ठ वारांगनाएं मधुर स्वरसे गान कर रही थीं। सुरासे पराङ्मुख रहनेवाली उस रानीने राजाओंके सम्मुख उस पात्रको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की। इसपर सर्पके समान निश्वास छोड़ते हुए क्रुद्ध होकर राजाने द्वारपालको बुलाकर कहा,—इस प्रियतमा देवी बहुलाने अपने अप्रिय पतिको अपमानित किया है; तुम इसे विजन वनमें लेजाकर शीघ्र ही छोड़ आओ। मेरे आदेशमें तुम्हें सन्देह करनेकी आवश्यता नहीं ॥११—१८॥ मार्कण्डेय

बोले,—राजाके वचनोंको अविचार्य्य समझकर द्वारपालने उस सुभ्रूको रथमें बैठाकर वनमें लेजाकर छोड़ दिया। इस प्रकार वह रानी राजाके द्वारा वनमें छोड़ दी गई; उसने भी अदृश्यमान रहनेके लिये राजाके इस कार्यको परम अनुग्रह समझा। इधर उत्तानपादके पुत्र राजाका हृदय रानीके प्रति प्रगाढ़ अनुरागी होनेके कारण संतप्त रहने लगा; उन्होंने दूसरी भार्य्याका ग्रहण नहीं किया; केवल दुःखित चित्त हो उसी सुन्दरांगीका स्मरण करने लगे। वह इस प्रकारकी अवस्थामें भी प्रजाका पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य करते थे। जिसप्रकार पिता अपने औरस पुत्रका पालन करता है, उसी प्रकार वह भी प्रजाजनका पालन कर रहे थे। इसी समय किसी एक सन्तप्तचित्त ब्राह्मणने आकर उनसे कहा,—महाराज! मैं अत्यन्त दुःखी हूं; जो मैं कहता हूं, उसे सुनिये। क्योंकि राजाके अतिरिक्त और कहीं भी मनुष्योंका दुःखोंसे परित्राण नहीं होता। मैं सो रहा था, उसी समय किसीने द्वार खोलकर मेरी स्त्रीका अपहरण कर लिया है; उसे बुलवा देना ही आपको उचित है॥१६—२५॥ राजाने कहा,—हे द्विज! आपकी पत्नीका किसने अपहरण किया है, और कहां लेगया है; आप कुछ नहीं जानते हैं। मैं किसके साथ विरोध करनेका प्रयत्न करूँ और उसे कहांसे लाऊं? ब्राह्मणने कहा—द्वार बन्द थे; मैं सो रहा था तौ भी मेरी पत्नीका अपहरण हो गया, क्यों और किसने किया यह आप ही जानते हैं। क्योंकि आप राजा हैं और हम आपके रक्षित हैं। धर्मका षष्ठांश आपका वेतन है, इसीलिये मनुष्य रात्रिमें निश्चिन्त होकर सोते हैं। राजाने कहा—मैंने तुम्हारी स्त्री नहीं देखी, उसकी कैसी आकृति है, क्या वय है और उस ब्राह्मणी का कैसा स्वभाव है, मुझसे कहिये। ब्राह्मणने कहा,—हे भूपाल! उसके नेत्र कठोर हैं, शरीर लंबा है; हाथ छोटे हैं; मुंह कृश है, वह अत्यन्त कुरूपा है तौभी मैं उसकी निन्दा नहीं करता। हे भूप! बोलनेमें वह अत्यन्त कर्कश है और स्वभावसे भी वह सौम्य नहीं है; मैंने अपनी भार्य्याका रूप कह दिया है, वह देखनेमें अच्छी नहीं है, और उसका पूर्व वयस भी कुछ कुछ व्यतीत हो चुका है। मेरी पत्नीका यही स्वरूप है, मैंने आपसे सत्यही कहा है॥ २६—३२॥ राजाने कहा,—हे ब्राह्मण! उसे रहने दीजिये; मैं आपको दूसरी पत्नी देता हूं; अच्छे लक्षणोंवाली पत्नी सुखके लिये होती है, वैसी कुलक्षणा पत्नी तो दुःखका ही हेतु है। हे विप्र! सुन्दर स्वरूप और उत्तमशीलही मंगलके हेतु हैं, इसलिये जो रूप और शीलसे हीन है उसका परित्याग ही उचित है। ब्राह्मणने कहा,—हे महीपाल! 'पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये' यही श्रुति मुझे अवगत है। भार्य्याकी रक्षा करनेसे संन्ततिकी भी रक्षा होती है। हे नरेश्वर! पत्नीके गर्भमें अपनी ही आत्मा जन्म ग्रहण करती है, अतएव उसकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि सन्ततिकी रक्षा करनेसे अपनी आत्माही की

रक्षा होती है । हे महीपाल ! पत्नीकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होगी, ऐसा होने पर वह मनुष्य अपने पितृगण को स्वर्गसे नीचे गिराता है । भार्य्यासे हीन हो जानेके कारण मेरी प्रतिदिन धर्मकी हानि होती है; नित्यक्रियाकी हानि भी मेरे पतनके लिये ही होगी ॥ ३३—३८ ॥ हे पृथ्वीपाल ! उस पत्नीके गर्भसे होनेवाली मेरी सन्तति आपको धर्मसे षष्ठांश देगी । हे प्रभो ! इसीकारण मैंने आपसे कहा है कि, अपहरण की हुई मेरी पत्नीको आप मंगवा दीजिये । क्योंकि आपही रक्षा करनेके लिये नियुक्त हुए हैं । मार्कण्डेय बोले,—ब्राह्मणके वचनको सुनकर और विचार कर समस्त उपकरणोंसे युक्त महारथ पर राजाने आरोहण किया फिर वह इधर उधर पृथ्वीका परिभ्रमण करने लगे । उसी समय उन्होंने महारण्यमें एक उत्तम तापसके आश्रमको देखा । रथसे उतरकर उन्होंने आश्रममें प्रवेश किया, वहां उन्होने कुशासनमें बैठे हुए प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी एक मुनिको देखा । राजाको आया हुआ देखकर उन्होंने शीघ्रता पूर्वक उठकर सादर स्वागतके लिये शिष्यसे कहा,—'अर्घ लाओ' । यह सुनकर शिष्यने उसी समय धीरेसे पूंछा,—'हे मुने ! क्या इन्हें अर्घ देना चाहिये, आप विचार कर कहिये, मैं आपकी आज्ञाका पालन इसी समय करता हूं ।' इसके अनन्तर उन मनस्वी मुनिने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल आसन और सम्भाषणके द्वाराही राजाका सम्मान किया ॥ ३९—४६ ॥ ऋषिने कहा,—'मैं जानता हूं आप उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं, आप यहां किस लिये आये हैं और क्या चाहते हैं ? राजाने कहा,—हे मुने ! ब्राह्मणकी स्त्रीको किसीने अपहरण कर लिया है, उसका स्वरूप अविदित है । मैं उसी स्त्रीकी खोजमें यहां आया हूं । हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे कुछ पूछता हूं, मैं आपके घरमें अभ्यागत हूं, आप कृपाकर मुझसे उसका ठीक ठीक उत्तर दीजिये । ऋषिने कहा, हे पृथ्वीनाथ ! जो कुछ आपको पूछना है, उसे निःशंक होकर आप पूछिये, यदि मुझे कहना उचित होगा तो मैं ठीक ठीक कह दूंगा ! राजाने कहा,—हे मुनिवर ! घर आजाने पर, आप मुझे देखतेही पहले अर्घ देनेके लिये उद्यत हुए थे, उस अर्घको क्यों फिर वापस कर लिया ? ऋषिने कहा—हे नृप ! आपको देखतेही जब जल्दीमें मैंने इसे आज्ञा दी थी, उसी समय इस शिष्यने मुझे सावधान कर दिया । जिसप्रकार मुझे भूत, वर्तमान और भविष्यत्, प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सभी ज्ञात हैं, उसीप्रकार मेरे प्रसादसे यह शिष्य भी इस संसारमें जो कुछ अनागत है सब जानता है । शिष्यके 'विचार कर कहिये' कहने पर मैंने सब कुछ जान लिया । इसीलिये मैंने आपको विधिपूर्वक अर्घ नहीं दिया । हे राजन् ! यह सत्य है, आप अर्घ देनेयोग्य हैं, आप स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हैं तौ भी हमलोग आपको अर्घ देने योग्य नहीं समझते ॥ ४७—५५ ॥ राजाने

कहा,—हे ब्रह्मन् ! ज्ञान वा अज्ञान पूर्वक मैंने ऐसा क्या किया है, जिसके कारण अभ्यागत होता हुआ भी मैं आपसे अर्घ पानेके योग्य नहीं हूं । ऋषिने कहा,—हे नृप ! आपने अपनी पत्नीका वनमें जो परित्याग कर दिया है, क्या आप उसे भूलगये हैं ? आपने उसीके साथ अपने समस्त धर्मोंका परित्याग कर दिया है ! और भी देखिये, जब विएमूत्रादि (विष्ठा) के स्पर्शसे वार्षिकी क्रियाकी हानि होती है तो उसी समय मनुष्य अस्पर्श्य हो जाता है; आपकी तो पत्नीके बिना नित्य ही कर्मकी हानि हो रही है ! हे नर नाथ ! पतिके किसी भी स्वभावके होने पर भी उसीके अनुकूल होना जिसप्रकार पत्नीका कर्तव्य है, उसीप्रकार दुःशील पत्नीकी रक्षा करनाभी पतिका धर्म है । ब्राह्मणकी जिस पत्नीका अपहरण हो गया है, वह उसके प्रति प्रतिकूल ही रहती है, तौभी केवल धर्मकी इच्छासे ही उसने आपको उद्यत किया है । हे महापते ! औरोंके विचलित होनेपर आप उन्हें धर्ममें प्रतिष्ठित करते हैं, किन्तु

टीका—पति पत्नी सम्बन्धसे शुद्धाशुद्ध विवेक और उभयकी धर्मरक्षाके विषयमें धर्मविज्ञान दुर्ज्ञेय है । शुद्धाशुद्ध विचारका जो शास्त्रोंमें वर्णन है, उसका कारण मनुष्यके कर्मके सम्बन्धसे ही जाना गया है । उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, जननाशौच मरणाशौच अथवा चन्द्र सूर्य्य ग्रहणका आशौच जब होता है तो उसका प्रभाव मनुष्यके मनोमयकोष पर पड़ता है । मनोमयकोषके उस समय प्रभावित हो जानेसे कर्ममें बाधा होती है । विष्ठामूत्रादिकी अपवित्रता भी अन्नमयकोषके द्वारा प्रभावित होकर अन्यकोषोंको प्रभावित करती है । उसके द्वारा कर्मके साधन और संस्कारके संग्रह दोनोंमें विघ्न उत्पन्न होता है । अतः कर्म्मोपासना यज्ञादिमें आशौचके बाधक होनेसे उसका निवारण करना आवश्यक होता है । यह शुद्धाशुद्ध और स्पृश्यास्पृश्य विवेकका वैज्ञानिक रहस्य है । इसी प्रकार पुरुष और स्त्री दोनोंके मिलने पर मानवप्रकृति पूर्णताको प्राप्त करती है । प्रकृतिराज्यसे परे आत्माके स्वरूपकी उपलब्धिकी बात और है, परन्तु जहांतक प्राकृतिक राज्य है, जहांतक सृष्टि प्रपञ्च है, वहां तक प्रकृति और पुरुष दोनोंका परस्पर सम्बन्ध अपरिहार्य है । परमपुरुष परमात्मा और ब्रह्मप्रकृति महामाया दोनोंका सगुण अवस्थाका जो सम्बन्ध है वही सृष्टि स्थिति और लयका कारण है । सृष्टि दशा अर्थात् द्वैतदशामें चिन्मय पुरुष और त्रिगुणमयी प्रकृति दोनोंका युगल सम्बन्ध विद्यमान रहता है । महादेवी-आलिंगित महादेव दोनों मिलकर सगुण दशाको उत्पन्न करते हैं, वही सगुण ब्रह्मकी दशा है, तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सशक्ति हो अपना अपना काम करते हैं, उनकी प्रकृति ब्राह्मी, वैष्णवी, और रौद्री माया या शक्ति कहाती है । जीवधारामें वही दो शक्ति अर्थात् चिन्मयी और त्रिगुणमयी होकर नियमित कार्य करती हैं । वही दोनों शक्तियां पुनः पुरुषधारा और स्त्रीधारा होकर उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चारों भूत संघ में अलग अलग प्रवाहित होती रहती हैं । मनुष्यपिण्ड और देवपण्डिमें वही दोनों मिलकर पूर्णता प्रदान करती हैं । देवताओंमें बिना शक्तिके ब्रह्मा विष्णु महेशसे लेकर रुद्र, वसु, आदित्य आदि और इन्द्रादिक कोई भी अपने अपने कार्यके करनेमें समर्थ नहीं होते हैं और न पदके उपयोगी होते हैं । उसी प्रकार मनुष्यक्षेत्रमें मनुष्य सस्त्रीक होकर ही सब प्रकारके प्रवृत्ति धर्मोंका अधिकारी होता है । दूसरी ओर स्त्रीके द्वारा पुरुष और पुरुषके द्वारा स्त्री कार्यकारिणी होती है और अपने अपने धर्मपालनका अभ्युदय और निःश्रेयसका मार्ग सरल कर सकती हैं । बिना स्त्रीके न पुरुषकी

आपको अपने धर्मसे विचलित होजानेपर फिर कौन प्रतिष्ठित करेगा ॥ ५८—६१ ॥ मार्कण्डेय बोले, उन बुद्धिमान् ऋषिके ऐसा कहने पर राजाने लज्जित होकर सब स्वीकार किया और ब्राह्मणकी अपहृत पत्नीके विषयमें पूछा,—हे भगवन्! ब्राह्मणकी पत्नीको कौन ले गया है? वह कहां है? क्योंकिसंसारमें भूत और भविष्यत् आप यथार्थ रूपमें जानते हैं। ऋषिने कहा,—हे भूपते! उसका अपहरण अद्रिके पुत्र वलाक नामक राक्षसने किया है, आप आजही उसे उत्पलावत नामक वनमें देखेंगे। शीघ्रप्रस्थान कीजिये, और उन द्विजवरको उनकी पत्नीसे शीघ्रही मिला दीजिये। जिससे उक्त द्विजवरको प्रतिदिन पापका भागी न होना पड़े ॥ ६२—६५ ॥

इस प्रकार, मार्कण्डेय महापुराणमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय।

—०:❀:०—

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर उन महामुनिको प्रणाम कर रथपर बैठ उनके बताए हुए उत्पलावत वनकी ओर राजाने गमन किया। वहांपर राजाने पतिके कथनानुरूप स्वरूपवाली ब्राह्मणकी पत्नीको श्रीफल खाते हुए देखा। उन्होंने उससे पूछा, हे भद्रे! आप इस वनमें क्यों आयी हैं? स्पष्ट कहिये, क्या आप विशालके पुत्र सुशर्माकी पत्नी हैं? ब्राह्मणीने कहा, मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्रकी पुत्री हूं; जिनका नाम अभी आपने लिया है, उन्ही विशालके पुत्रकी पत्नी हूं। दुरात्मा बलाक नामक राक्षस मुझे हर लाया है; मैं उस समय मां और भाईसे हीन सोयी हुई थी। जिसने मुझे इस प्रकार माता, भ्राता तथा अन्य परिजनोंसे वियुक्त कर दिया है, वह राक्षस भस्मीभूत हो जावे! मैं यहां अत्यन्त दुःखी हूं। वह इस गहन वनमें लाकर मुझे, नहीं जानती, किस कारणसे छोड़ गया है। न वह मेरा उपभोग ही करता है, और न खाता ही है ॥१—७॥ राजाने कहा, —हे द्विज नन्दिनि!

रक्षा हो सकती है और न विना पुरुषके स्त्रीकी रक्षा हो सकती है। सृष्टिकार्यमें जैसे दोनोंकी आवश्यकता होती है, सृष्टिकी रक्षामें भी वैसेही दोनोंकी आवश्यकता होती है। और लयरूपी मुक्ति कार्यमें भी स्त्री ही प्रवृत्तिधर्ममें पुरुषको सुरक्षित रखकर जब अभ्युदय कराती है तब वह निःश्रेयसका मार्ग प्राप्त करता है। निःश्रेयसका तो केवल पदमात्र है और आत्मोन्नतिका सारा मार्ग अभ्युदयका है, उस अभ्युदय करानेका सारा भार तभी उठाया जाता है जब पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर उठावें। जब दोनोंकी दोनोंको पूर्ण अपेक्षा है, तो पुरुषके लिये एक पत्नीव्रत और स्त्रीके लिये एक पतिव्रतका धारण करना ही प्रशंसनीय और मुख्य धर्म है। पूर्व मन्वन्तरोंमें इस आदर्शकी प्रतिष्ठा थी, गाथाओंसे ऐसा ही प्रकट होता है ॥२६–६५॥

वह राक्षस आपको छोड़कर कहां गया है, क्या आपको यह मालूम है ? मैं आपके पतिके ही द्वारा यहां भेजा गया हूँ। ब्राह्मणीने कहा, वह निशाचर इसी वनके प्रान्तभागमें रहता है; यदि उससे आप भय नहीं करते तो जाकर देखिये। मार्कण्डेय बोले, इसके बाद राजाने ब्राह्मणीके दिखाये हुए मार्गसे जाकर परिवारसे युक्त राक्षसको देखा। उन्हें दूरसे देखते ही वह राक्षस, मस्तकसे पृथ्वीका स्पर्श करता हुआ बड़े वेगसे उनके पैरोंके समीप पहुंचा। उसने कहा, मेरे मकान पर आकर महाराजने बड़ा अनुग्रह किया है; आदेश कीजिये, मैं क्या करूं। मैं आपके ही राज्यमें निवास करता हूं। यह मेरा अर्घ्य ग्रहण कीजिये; यह आसन है, बैठिये। आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूं; आप मुझे निश्चिन्त हो आज्ञा दीजिए। राजाने कहा,—हे निशाचर! तुमने सभी कर्त्तव्य कर्म किये हैं; समस्त अतिथिसत्कार भी किया है, फिर ब्राह्मणकी भार्य्याको आप क्यों लाये हैं ? यह सुन्दरी नहीं है; यदि पत्नी बनानेके लिये लाये हैं, तो आपके अनेकों पत्नियां हैं। अगर आप उसे खानेके लिये लाये हैं, तो खाते क्यों नहीं, यह मुझसे कहिये॥ ८—१५॥ राक्षसने कहा, हे नृप! हम मनुष्याहारी राक्षस नहीं हैं, वे राक्षस और होते हैं। हमलोग सुकृतोंके फलका ही भोजन करते हैं। अपमानित या सम्मानित, हो हम पुरुष और स्त्रियोंके स्वभावका ही भोजन करते हैं। हमलोग जन्तुओंके खाने वाले नहीं हैं। जब हम मनुष्योंके क्षमागुणको खालेते हैं, तब वह क्रोधित होते हैं, और हमारे दुष्ट स्वभावके खालेने पर वे गुणवान् होजाते हैं। हे, नृप! हमारे अनेकों राक्षसी प्रमदायें अप्सराओंके समान रूपवती हैं, उनके रहते मानुषी स्त्रियोंमें हमें कैसे प्रेम हो सकता है॥१६-१९॥ राजाने कहा,—हे निशाचर! यदि यह उपभोगके लिये भी नहीं और आहारके लिये भी नहीं, तो इसे ब्राह्मणके घर घुसकर क्यों हर लाये ? राक्षसने कहा, हे नृप! वह द्विज श्रेष्ठ मंत्रोंका जाननेवाला है, वह प्रतियज्ञमें जाकर राक्षसोंके मारनेवाले मन्त्रोंको पढ़कर मेरा उच्चाटन करता है। उसके मन्त्रोच्चाटन कर्मसे हम भूखे रहते हैं, कहां जायं ? वह ऋत्विग् ब्राह्मण तो सभी यज्ञोंमें रहता है, इसीलिये मैंने यह विकलता उसमें उत्पन्न करदी है, क्योंकि पत्नीके बिना कोई भी पुरुष यज्ञकर्मके योग्य नहीं होता है॥ २०—२३॥ मार्कण्डेय बोले, उस महामति ब्राह्मणकी विकलताके वाक्यसे वह राजा अत्यन्त खिन्न होगये। ब्राह्मणकी विकलताको कहता हुआ यह हमारी ही निन्दा करता है, उन मुनिसत्तमने भी मुझे अर्घके अयोग्य ही कहा, यह राक्षस भी मेरे समान पत्नी-विहीन उस ब्राह्मणकी विकलताकी बात कह रहा है। इस समय मैं बड़ेभारी संकटमें पड़ गया हूं, इस प्रकार जब वह राजा चिन्ता कर रहा था, उसी समय हे मुने! फिर राक्षसने राजाको नम्रता पूर्वक प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर कहा, हे नरेन्द्र! मैं आपके राज्यमें रहता हूं, आपका

विनम्र सेवक हूं। आप आज्ञा प्रदान करनेका मुझ पर अनुग्रह प्रकट कीजिये ॥२४—२८॥ राजाने कहा, हे निशाचर! 'मैं स्वभावका भोजन करता हूँ' यह तुमने कहा है, इससे मैं जिस कार्यसे यहां प्रार्थी बनकर आया हूँ, उसे कहता हूं सुनो अभी तुम इस ब्राह्मणीकी दुश्चरित्रताका भोजन करलो, जिससे तुम्हारे द्वारा दुःस्वभावके खा लिये जानेपर, यह उस ब्राह्मण के प्रति विनीत हो जाय, फिर यह जिनकी पत्नी है उन्हींके घर उसे पहुंचा आओ। ऐसा कर लेनेपर अभ्यागतके प्रति तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो जायगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर उस राक्षसने अपने मायाबलसे उस ब्राह्मणीके अन्तःस्तलमें प्रवेश कर राजाके आदेशानुसार दुःस्वभावका भोजन कर लिया। तब अत्यन्त प्रचण्ड दुःस्वभावसे परित्यक्तहोनेपर उस ब्राह्मणकी पत्नीने राजासे कहा, अपनेही कर्मफलके परिपाकसे मैं अपने महात्मा स्वामीसे पृथक् हो गई हूं, यह निशाचर तो उसका कारणमात्र था। न तो इसकाही दोष है और न मेरे महात्मा पतिका ही। मेरे अतिरिक्त और किसीका दोष नहीं। क्योंकि कर्मोंके फलका उपभोग अवश्यही करना पड़ता है। किसी दूसरे जन्ममें मेरे द्वारा किसीका विच्छेद हुआ है, उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ, इसमें और किसीका दोष नहीं है। राक्षसने कहा, हे प्रभो! आपके आदेशसे इसे इसके पतिके घर इसी समय पहुंचाता हूं। हे पृथ्वीपते! आज्ञा दीजिये, और आपका क्या कार्य है? राजाने कहा, हे निशाचर! इस कार्यके कर देनेपर तुमने सभी कार्य कर दिये। हे वीर! कार्यके समय जब मैं तुम्हारा स्मरण करूं, तुम आ जाना। मार्कण्डेय बोले, 'ऐसाही हो' कहकर वह राक्षस उस समय दुःस्वभावके चले जानेसे पवित्र उस ब्राह्मणकी पत्नीको लेकर उसके पतिके घर पहुंचा आया ॥ ३३—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणान्तर्गत उत्तम मन्वन्तरमें द्विजभार्यानयन नामक सत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, उस स्त्रीको अपने पतिके घर भेज निःश्वास छोड़ते हुए राजाभी चिन्ता करने लगे, अब क्या करनेसे भला होगा! बड़े दुःखकी बात है, उन महामना मुनिने मुझे अर्घके योग्य नहीं कहा; इस निशाचरने भी ब्राह्मणके बहाने मुझे विकलताके योग्य कहा है। मैंने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया है, अब मैं क्या करूं? या उन्ही ज्ञानदृष्टिसम्पन्न मुनिसे जाकर पूछूं? यह सोचकर वह भूपाल रथपर बैठकर वहीं

पहुंचे जहां वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा मुनि थे। रथसे उतरकर वह उनके पास आये और प्रणामकर उन्होने, राक्षसका मिलन, ब्राह्मणीका दर्शन, दुःस्वभाव का विनाश, पतिके घर उसका भेजा जाना तथा अपने आनेका कारण भी उनसे कहा ॥ १—६ ॥ ऋषि बोले, हे नराधिप! जो तुमने किया है और जिसलिये तुम यहां आये हो, मुझे यह सब पहिलेसे ही विदित है। 'क्या करना चाहिये' यह तुम्ही मुझसे पूछो, इसी लिये मेरा मन उद्विग्न था। अब तुम आगये हो। तुम्हारा क्या कर्तव्य है, हे महीपाल! इसे कहता हूं, श्रवण करो। मनुष्योंके धर्म अर्थ और कामका मुख्य कारण स्त्री है; उसे परित्याग करनेवाला पुरुष धर्मका विशेषरूपसे परित्याग करता है। हे नृप, ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, पत्नीविहीन अपने कर्मोंके योग्य नहीं होता। आपने पत्नीका परित्याग कर अच्छा कार्य नहीं किया, जिस प्रकार पत्नीके लिये पति अ-त्याज्य है, उसी प्रकार पत्नी पतिके लिये है ॥ ७—११ ॥ राजाने कहा,—हे भगवन्! मैं क्या करूं? यह मेरे कर्मोंका विपाक है। मेरे अनुकूल होते हुए भी वह अनुकूल नहीं रहती थी, इसीसे मैंने उसका परित्याग कर दिया। हे भगवन्! उसके वियोगके कारण उत्पन्न दुःखसे मेरी अन्तरात्मा भयभीत रहती थी। इसी लिये व्यथित चित्त होकर भी वह जो कुछ करती मैं क्षमा कर देता था। इस समय वह वनमें छोड़ दी गई है, नहीं जानता वह कहां गई अथवा वनमें सिंह व्याघ्र या राक्षसने उसे खा लिया। ऋषिने कहा,—हे भूपाल! उसे सिंह व्याघ्र या राक्षसने नहीं खाया। वह इस समय रसातलमें रहती है, उसका चरित्र पवित्र है ॥ १२—१५ ॥ राजाने कहा,—हे विप्र! उसे पातालमें कौन ले गया है? वह वहां निष्कलंक कैसे है? यह अत्यन्त अद्भुत बात है, आप मुझसे भलीभांति कहिये। ऋषिने कहा,—हे राजन्! पातालमें कपोतक नामक विख्यात नागराज हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त रूपवती युवती पत्नीको महावनमें भ्रमण करते हुए देखा, तब वह अपना प्रयोजन समझकर उसे पातालमें ले गये। हे महीपते! उन बुद्धिमान् नागराजकी सुन्दर भौहोंवाली कन्याका नाम नन्दा और पत्नीका नाम मनोरमा है। उसने उस सुन्दरीको अपनी माताकी भावी सपत्नी समझ, अपने घर लेजाकर अन्तःपुरमें छिपाकर रक्खा है ॥ १६—२०॥ नागराजके मांगनेपर नन्दा उन्हे कुछ उत्तर नहीं देती थी, तब पिताने अपनी पुत्रीसे कहा, 'तुम गूंगी हो जाओगी।' हे भूपते! इस प्रकार पितासे शाप पाकर वह कन्या, और नागराजके द्वारा उपनीत एवं उसकी कन्याके द्वारा गुप्त आपकी सती पत्नी वहीं है। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजाने अत्यन्त हर्षित होकर उन द्विज श्रेष्ठसे प्रियाके प्रति अपने दुर्भाग्यका कारण पूछा। राजाने कहा,—हे भगवन्! समस्त लोकका मुझपर परम स्नेह है, पत्नी मुझसे प्रेम नहीं करती इसका

क्या कारण है? हे महामुने! वह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, किन्तु मेरे प्रति उसका व्यवहार अच्छा नहीं, इसका क्या कारण है? हे द्विज! मुझसे कहिये। ऋषिने कहा,—विवाहके समय आपके ऊपर रवि, मंगल और शनैश्चरकी दृष्टि एवं आपकी पत्नीके ऊपर शुक्र और वृहस्पतिकी दृष्टि थी और उसी समय आपकी पत्नीके चन्द्र और आपके बुध अत्यन्त विरुद्ध हो गये थे। इस समय आप जाइये और धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन कीजिये एवं पत्नीकी सहायतासे समस्त धार्मिक क्रियायें सम्पादित कीजिये। मार्कण्डेय बोले, महामना ऋषिके यह कहनेपर भूपाल उत्तम उन्हे प्रणामकर रथपर आरूढ़ हो अपने नगरको आये ॥ २१—२८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय-महापुराणान्तर्गत उत्तममन्वन्तरमें इकहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७१ ॥

बहत्तरवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले—इसके अनन्तर अपने नगरमें आकर राजाने शीलवती पत्नीके सहित प्रसन्न चित्त ब्राह्मणको देखा। ब्राह्मणने कहा, हे राज श्रेष्ठ! मैं कृतार्थ हो गया हूं क्योंकि आप धर्मज्ञ हैं, आपने मेरी पत्नीको लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है। राजाने कहा,—हे द्विज श्रेष्ठ! अपने धर्मके पालन करनेसे आपतो कृतार्थ हुए हैं, किन्तु मैं सङ्कटमें पड़ गया हूं, क्योंकि मेरी पत्नी घरमें नहीं है। ब्राह्मणने कहा,—यदि वनमें उसे किसी हिंसक जन्तुने खा लिया हो तो उसे रहने दीजिये, किसी दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते? क्रोधके वशीभूत होकर आपने धर्मकी रक्षा नहीं की। राजाने कहा, मेरी पत्नीको किसी हिंसक जन्तुने नहीं खाया, वह जीवित है, उसका चरित्र निष्कलंक है; मैं कैसे क्या करूं? ब्राह्मणने कहा,—यदि आपकी पत्नी अभी जीवित है और व्यभिचारिणी नहीं है तब पत्नीके परित्यागका पाप आप क्यों करते हैं? राजाने कहा,—हे विप्र! यहां बुलाने परभी वह सदैव मेरे प्रतिकूल ही रहेगी, वह मेरे दुःखके ही लिये होगी सुखके लिये नहीं। उसका सौहार्द्य मेरे उपर कभी न होगा। वह जिस प्रकार मेरे वशमें रहे आप वही उपाय कीजिये। ब्राह्मणने कहा,—मित्रताकी इच्छा करनेवाले जिस उपकारी यज्ञको करते हैं, मैं आपकी और आपकी पत्नीकी प्रीतिके लिये उसी 'मित्रविन्दा' नामक यज्ञको करूंगा। हे मनुजेन्द्र! परस्पर प्रीति न करनेवाले दम्पतियोंमें प्रीति कराने वाली एवं उत्पादिका-शक्ति-दायिनी वह इष्टि मैं आपके लिये करूंगा। आपकी

पत्नी जहां इस समय है, हे महीपते! वहांसे आप उसे बुला लाइये। वह आपसे अत्यन्त प्रीति करेगी। मार्कण्डेय बोले, इस कथनसे उन भूपति उत्तमने समस्त वस्तु मगांदी और उन ब्राह्मण श्रेष्ठने वह यज्ञ किया। उन्होंने राजाके प्रति पत्नीका प्रेम सम्पादन करनेके लिये बार बार सातबार इष्टि की। उन महामुनिने जब पत्नीको अपने पतिके प्रति अनुरागिणी समझ लिया, तब राजासे कहा,—हे नरश्रेष्ठ! आप अपनी प्रिय पत्नीको अपने समीप लाकर उसके साथ सांसारिक सुखोंका उपभोग तथा समाहृत होकर यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये। मार्कण्डेय बोले,—ब्राह्मणके यह कहने पर राजा विस्मित हो गये, उन्होने तब उस पराक्रमशील सत्यप्रतिज्ञ राक्षसको स्मरण किया। स्मरण करतेही तत्क्षण उपस्थित हो राजाको प्रणामकर उस राक्षसने कहा, 'क्या, करूं?' हे महामुने! इसके अनन्तर उन नरेन्द्रके उससे सविस्तर सब वृत्तान्त कहने पर वह पाताल जाकर राजपत्नीको लेआया। रानीने आकर हार्दिक प्रेमके साथ राजाको देखा और बार बार प्रसन्न होकर कहने लगी, 'प्रसन्न होइये।' तब राजाने उस मानिनीको बड़े वेगसे आलिंगन कर कहा,—हे प्रिये, मैं तो प्रसन्न ही हूँ, तुम बार बार ऐसा क्यों कहती हो? पत्नीने कहा,—हे नरेन्द्र! यदि आपका मन मेरे ऊपर प्रसन्न है, तो मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूं, आप उसे मेरे सम्मानके लिये कीजिये॥ १५—२०॥ राजाने कहा, मुझसे तुम्हारी जो अभिलाषा हो, उसे तुम निःशंक होकर कहो। वह तुम्हारे लिये अलभ्य न होगी। मैं तुम्हारे आधीन हूं, अन्यथा नहीं। पत्नीने कहा,—मेरे लिये उस नागने मेरी सखीको शाप दिया है कि तुम मूक होगी; और वह मूक होगई है। यदि मेरी प्रीतिसे आप उसका कुछ प्रतीकार, मूकताकी शान्तिके लिये, करसकें तो आपने मेरे लिये क्या नहीं किया? मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजाने ब्राह्मणसे पूछा—मूकताको दूर करनेके लिये इसमें कौनसी क्रिया होगी? तब उस ब्राह्मणने राजासे कहा, राजन्! आपके वचनसे मैं सारस्वती इष्टि करता हूं, जिससे आपकी पत्नी सखीकी वाणी ठीक हो जानेके कारण उऋण हो जावे॥२१—२५॥ मार्कण्डेय बोले, उन द्विजश्रेष्ठने उसके लिये सारस्वती इष्टि की और सावधान चित्त हो सारस्वती सूक्तका जप किया। इसके अनन्तर उसकी वाणी फिर ठीक हो गई, तब रसातलमें गर्गने उससे कहा, तुम्हारी सखीके पतिने यह दुष्कर उपकार किया है। इस प्रकार सब जानकर नागकन्या नन्दाने शीघ्रगतिसे पुरमें आ अपनी सखीका आलिंगन किया। आसन ग्रहण करलेनेके अनन्तर सुन्दर उक्तियोंसे बारम्बार राजाकी स्तुति करती हुई वह मधुर वचन बोली,—आपने इस समय जो बड़ा उपकार मेरे साथ किया है, उसके कारण मेरा हृदय आपकी ओर आकृष्ट हो गया है। हे वीर! मैं जो कहती हूं, उसे सुनिये। हे नराधिप! आपके एक

बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा । इस भूमण्डलमें वह अबाधित राज्य करेगा । समस्त शास्त्रोंके तत्त्वको जानने वाला, धर्मानुष्ठानमें तत्पर आपका वह बुद्धिमान् पुत्र निश्चय ही मन्वन्तरेश्वर मनु होगा। इस प्रकार वह नागकन्या राजाको वर देकर और अपनी सखीका आलिंगन कर पाताल चली गई ॥ २६—३३ ॥ इसके अनन्तर रानीके साथ सुख भोगते और प्रजाका पालन करते हुए राजाका बहुत सा समय व्यतीत हो गया; तब पूर्णिमाके सम्पूर्ण चन्द्रमण्डलकी तरह सुन्दर एक पुत्र रानीके गर्भसे उन महात्मा राजाको उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होतेही समस्त प्रजाको हर्ष हुआ, देव दुन्दुभी बजाने लगे और पुष्प वृष्टि होने लगी । उसके मनोहर शरीर और भावी शीलको देखकर समागत ऋषियोंने उसका नाम 'उत्तम' रक्खा। यह उत्तम वंशमें और उत्तम कालमें उत्पन्न हुआ है; इसके अवयव उत्तम हैं, अतएव यह उत्तम होगा । मार्कण्डेय बोले, उत्तमका वह पुत्र 'उत्तम' के ही नामसे प्रसिद्ध हुआ । हे भागुरे ! वह मनु हुए, उनका प्रभाव मुझसे सुनिये । जो उत्तम मनु और उत्तम नृपतिके आख्यानको नित्य सुनता है उसे कभी भी विद्वेष नहीं होता; जो उसे नित्य सुनता है उसका अपने इष्ट, पत्नी, पुत्र अथवा बन्धुसे कभी भी वियोग नहीं होता । इसके मन्वन्तरके समय इन्द्र, देव, और ऋषि कौन थे, मैं कहता हूं, हे विप्र ! आप श्रवण कीजिये ॥ ३३—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें उत्तममन्वन्तरमें बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवां अध्याय ।

—o:*:o—

मार्कण्डेय बोले,—हे मुने ! उत्तम प्रजापतिके इस तीसरे मन्वन्तरमें इन्द्र, देव और ऋषियोंके सम्बन्धमें मैं कहता हूं, उसे आप श्रवण कीजिये । अपने नामके ही अनुरूप गुणवाले प्रथम गणके देव स्वधामा नामक है; द्वितीय गणके देव सत्य नामसे प्रसिद्ध हैं । हे मुनि सत्तम ! तृतीय गणके देवताओंके नाम शिव हैं, उनका स्वरूप कल्याणमय है; उनके श्रवणमात्रसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं। हे मुनिवर ! देवताओंका चतुर्थगण प्रदर्शन नामक है; पांचवां वशवर्ती नामक देवताओंका गण हैं, हे द्विज ! वे सभी अपने अनुकूल गुणस्वरूपवाले हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! इस मन्वन्तरमें यज्ञके भागी देवोंके यही पांच गण हैं, जिनमें प्रत्येकमें बारह देवता हैं; ॥ १—७ ॥ उनका सुशान्ति नामक महाभाग इन्द्र सौ यज्ञोंको करके त्रैलोक्य गुरु हुआ है । उपसर्गके विनाश करनेके

निमित्त मनुष्यगण भूतल पर आज भी उसके नामाक्षरसे विभूषित गाथाका गान करते हैं, वह कान्तिमान् देवराज सुशान्ति शिव सत्यादिकके सहित सुशान्ति प्रदान करें, वैसा ही उनके वशवर्ती देव भी करें। इन मनुके अज, परशुचि और दिव्य नामक तीन देवोपम, बलवान् और पराक्रमी पुत्र हुए; जितने समय तक उन उत्तम तेज मनुका मन्वन्तर रहा तवतक उन्हींके वंशज नरेश्वर होकर पृथ्वीका पालन करते रहे ॥ १—११ ॥ सत्य त्रेतादिक युगोंको गिनाते समय जो संख्या मैंने कही है उससे कुछ अधिक इकहत्तर युगोंका एक मनु होता है। अपने तेजसे ही श्रेष्ठ वरिष्ठ नामक महात्माके सात पुत्र ही उस मन्वन्तरमें सात ऋषि हुए। मैंने आपसे तीसरा मन्वन्तर कह दिया है; अब तामस नामक चतुर्थ मन्वन्तर कहता हूँ, जिन वियोनि जन्मा मनुके यशसे यह संसार प्रकाशित है, उसीका मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। समस्त मनुओंका चरित्र इन्द्रियगम्य नहीं होता, उन महात्माओंका जन्म वृत्तान्त और प्रभाव अवश्य जानना चाहिये ॥ १२—१६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें उत्तम मन्वन्तर नामक तिहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले, अनेक यज्ञोंको करनेवाले, युद्धमें अपराजित ज्ञान सम्पन्न एव पराक्रमी सुराष्ट्र नामक एक भूमण्डलमें विख्यात राजा हुए; मंत्रीकी आराधनासे सूर्यने उसे दीर्घायु प्रदान की थी। हे द्विज! उसके सौ सुन्दरी रानियां थीं। किन्तु हे मुने!

टीका—यह सब गाथायें उत्तम नामक मन्वन्तर तककी हैं। प्रत्येक मन्वन्तर मनुष्यके ३०६-७२०००० वर्षका होता है। अतः इतने बड़े कालके अनन्तर क्या चतुर्विध भूतसंघका, क्या मनुष्य सृष्टिका, क्या देवसृष्टिका, सबमें ही बड़ा भारी अनन्तर होना सम्भव है, इसमें सन्देह ही क्या है। अतः काल विशेषमें पशु पक्षियोंकी शक्तिमें भेद होना, मनुष्योंकी शक्तिमें भेद होना, मनुष्य लोक और नागलोकादिमें अथवा असुरलोक और देवलोकादिमें जानेकी शक्ति होना भी सम्भव है। इस कारण इस प्रकारकी गाथाओंमें जो कुछ आश्चर्यजनक घटनायें पायी जायं उससे सन्देह होनेका कारण नहीं। दूसरी ओर जिस प्रकार स्थूल राज्यके चालक नाना देवता और असुर होते हैं वे देवांश और असुरांशको धारण करके कार्य करते हैं उसी प्रकार वृत्तिराज्यके भी चालक देवता और असुर होते हैं इस कारण दैवी शक्तिके द्वारा वृत्तियोंका पलट जाना भी सम्भव है। और उस मन्वन्तरमें वृत्ति अर्थात् स्वभाव भोजी बलाक नामक अधिदैवका होना असम्भव नहीं है ॥ १—१६ ॥

उस दीर्घायु नृपतिकी पत्नी दीर्घायु न थीं, वे मन्त्री और भृत्य सभी समय पाकर मर गये; पत्नी, सेवक और अपने साथियोंके वियोगसे राजा अत्यन्त उद्विग्न होगये, उनका पराक्रम प्रति दिन क्षीण होने लगा । उनको इस प्रकार दुर्बल और विश्वस्त सेवकोंसे हीन देखकर पड़ोसी विमर्द नामक राजाने उन्हें राज्यच्युत कर दिया ॥ १-५ ॥ वह महाभाग राजा भी राज्यसे च्युत होकर खिन्न मनसे वनमें जाकर वितस्ता नदीके किनारे तप करने लगे । उन्होंने ग्रीष्ममें पञ्चाग्निमें;वर्षामें मेघोंके नीचे खुले स्थानमें,शीत ऋतुमें जलमें लेटकर निराहार संयत भावसे व्रत किया । वर्षा ऋतुमें जब वह तप कर रहे थे, उसी समय प्रतिदिन निरन्तर मेघोंके बरसनेसे पानीकी बाढ़ आ गई; पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर आदि दिशायें भी नहीं जानी जाती थीं; सभी अंधकारमें ही मानों मिल गये । अत्यन्त वेगशालिनी नदीकी उस बाढ़से हटकर प्रार्थना करने पर भी वह राजा तटको नहीं पा सके ॥ ५-१० ॥ तब जलके वेगसे बहुत दूर जाकर राजाने पानीमें एक रौही (एक प्रकारकी मृगी) को पाया, उन्होंने उसकी पूंछ पकड़ ली । इसके अनन्तर जलप्लवसे खिंच कर राजा पृथ्वीको ओर चले और इधर उधर अन्धकारमें उन्होंने तटको पाया । मृगीके द्वारा खिंचकर वह राजा बड़े भारी दुस्तर दलदलको पार करते हुए दूसरे किसी रमणीय वनमें पहुंचे । पूंछमें लगे हुए अस्थिमात्र शरीरवाले उन दुर्बल भूपतिको वह रौही मृगी वहां अन्धकारमें खींचने लगी । उस अन्धकारमें घूमते-घूमते राजाका मन कामसे आकृष्ट हो गया; वह उस मृगीके स्पर्शसे उत्पन्न उत्तम आनन्दको पाने लगे । अपनी पीठको बार बार छूनेके कारण राजाके अनुरागको जानकर वह मृगी उनसे बोली,—हे भूपाल कांपते हुए हाथसे आप मेरी पीठको क्यों छूते हैं, इस कार्यको कुछ दूसरी ही गति हो गई है । हे प्रभु ! आपका मन किसी अनुचित स्थानमें नहीं गया; मैं आपके लिये अगम्या नहीं हूं । किन्तु आपके साथ समागम करनेमें यह लोल विघ्न व बाधा देता है । मार्कण्डेय बोले, उस मृगीके इन वचनोंको सुनकर राजाको कौतूहल उत्पन्न हुआ; वह रौहीसे कहने लगे, तुम कौन हो ? मृगी होकर मनुष्यके समान किस प्रकार बोलती हो और यह लोल कौन है,जो तुम्हारे साथ संग करनेमें मुझे बाधा देता है ? मृगीने कहा,—हे भूप ! मैं दृढ़-धन्वाकी पुत्री सैकड़ों पत्नियोंमें श्रेष्ठ आपकी प्यारी उत्पलावती नामकी पहले पत्नी थी । राजाने कहा—तुमने ऐसा कौन सा काम किया है जिससे तुम्हें ऐसी दशा प्राप्त हुई है ? वह तो पतिव्रता और अपने धर्ममें लगी रहती थी, उसकी यह दशा कैसे हुई ॥१०-२२॥ मृगीने कहा,—मैं पिताके घर बाल्यावस्थामें एक बार सखियोंके सहित वनमें खेलनेके लिये गई, वहीं मृगीके साथ समागम करते हुए एक मृगको देखा । तब मैंने निकट जाकर मृगी पर प्रहार किया; वह मुझसे डर कर दूसरी जगह चली गई, तब मृग मुझसे बोला,—'हे

मूढ़े ! तू क्यों इतनी उन्मत्त हो गई है ? धिक्कार है तेरी दुःशीलताको ! तूने मेरा यह गर्भाधानका समय निष्फल कर दिया ।' मनुष्यके समान बोलते हुए उसके वचनको सुनकर मैं डर गई । मैं उनसे बोली, आप इस मृगयोनिमें कौन हैं ? तब उन्होंने कहा,— 'निर्वृत्ति चक्षु मुनिका पुत्र हूं । मेरा नाम सुतपा है । मृगीके प्रति इच्छा होनेके कारण मैं मृग हो गया हूं । वनमें इसने मेरी इच्छा की, तब प्रीतिसे मैंने इसका अनुगमन किया था । हे दुष्टे ! तूने उसका वियोग करा दिया है, इसलिये मैं तुझे शाप देता हूँ । मैंने कहा,—हे मुने ! मैंने अज्ञानसे आपका यह अपराध किया है, आपको मुझे शाप न देना चाहिये, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों !' हे महीपते ! यह कहने-पर वह मुनि मुझसे इस प्रकार बोले, 'यदि तू आत्मप्रदान करदे तो मैं शाप न दूंगा' ॥२३—३०॥ मैंने कहा, 'मैं मृगीका रूप धारण करनेवाली मृगी नहीं हूं, आप दूसरी मृगी पा जायंगे, मुझसे अपना भाव हटा लीजिये, यह कहने पर उनकी आंखे क्रोधसे लाल हो गईं, उन्होंने होंठ कंपाते हुए कहा, 'तूने कहा है कि मैं मृगी नहीं हूं इस लिये हे मूढ़े तू मृगी होगी । तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो, अपने ही रूपमें स्थित अत्यन्त क्रुद्ध उन मुनि-वरको प्रणाम कर बार बार कहा, 'आप प्रसन्न हों । मैं बालिका हूँ. वाक्योंके बोलनेमें अनभिज्ञ हूं । इसी लिये मैंने ऐसा कहा है । क्योंकि पिताके न होने पर ही स्त्रियां स्वयं वर चुनती हैं । हे मुनि सत्तम ! पिताके रहते हुए मैं किस प्रकार वरण करूँ । इसपर भी यदि मैं अपराधिनी हूं तो मैं आपको प्रणाम करती हूं आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ।' इस प्रकार प्रार्थना करने पर उन मुनि श्रेष्ठने मुझसे कहा, 'मेरा कहा हुआ वाक्य कभी भी झूठ नहीं होता । तुम इसी जन्ममें मरकर इस वनमें मृगी होगी । हे भामिनि ! मृगीके अवस्थामें ही सिद्धवीर्य मुनिका लोल नामक दीर्घबाहु पुत्र तुम्हारे गर्भमें उत्पन्न होगा । उनके गर्भमें आजाने पर तुम अपनी जातिका स्मरण करनेवाली हो जाओगी और स्मृति पाकर तुम मनुष्यकी बोली बोलोगी । उनके जन्म ग्रहण करनेपर मृगीकी योनिसे छूटकर पतिके द्वारा पूजित हो तुम उन लोकोंको प्राप्त करोगी जिन्हे दुष्कर्मके करनेवाले नहीं पाते । फिर वह महावीर्य लोल भी पिताके शत्रुओंको पराजित कर तथा समस्त पृथ्वीको जीतकर मनु होंगे ।'इस प्रकार शाप पाकर मृत्युके पश्चात् मैं तिर्य्यग् योनिमें आई और आपके संस्प-र्शसे मेरे जठरमें वह गर्भ उत्पन्न होगया है । इसीलिये मैं कहती हूं कि मेरे प्रति अनुरक्त होने के कारण आपका मन किसी अनुचित स्थानमें नहीं गया । मैं भी अगम्य नहीं हूं; यह गर्भ-स्थित लोल ही विघ्न करता है ॥३०—४०॥ मार्कण्डेय बोले,—इस प्रकार यह कहे जानेपर कि, यह पुत्र मेरे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीमें मनु होगा । वह राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए । इसके उपरान्त उस मृगीने सुन्दर लक्षणोंसे युक्त पुत्रको प्रसव किया । उसके उत्पन्न

होनेपर समस्त प्राणी प्रमुदित हुए । उस बनमें पुत्र उत्पन्न होनेपर राजाको विशेष आनन्द हुआ, वह मृगी भी शापसे मुक्त होकर उत्तम लोकोंको प्राप्त हुई । इसके अनन्तर हे मुनि सत्तम ! सब ऋषियोंने एकत्र होकर उस महात्माकी भावी समृद्धिको देखकर नाम करण संस्कार किया । अन्धकारसे आच्छादित लोकमें यह तामसीयोनिको प्राप्त हुई माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ है इस कारण यह बालक 'तामस' नामसे विख्यात होगा, इसके अनन्तर वनमें तामसने पिताके द्वाराही वृद्धि पायी । हे मुनिसत्तम ! बुद्धि उत्पन्न होनेपर वह पितासे बोले,—हे तात ! आप कौन हैं ? मैं आपका पुत्र कैसे हूं और मेरी माता कौन है ? आप किस लिये यहां आये हैं, यह सब मुझसे सत्य सत्य कहिये ॥ ॥ ४३—५० ॥ मार्कण्डेय बोले,—उन महाबाहु जगतीपति पिताने पुत्रसे राज्यसे भ्रष्ट होनेसे लेकर सभी समाचार जैसेके तैसे कह दिये । तामसने भी सब सुन, सूर्यकी आराधनाकर समस्त दिव्य अस्त्र और उनके संहार प्राप्त किये । अस्त्रोंमें निपुण हो, वह शत्रुओं को जीतकर पिताके पास ले आए और उनकी आज्ञा पाकर सबको मुक्तकर अपने धर्मका पालन किया । उनके पिताने भी पुत्रका मुख देखकर सुखपूर्वक देहको छोड़ तप और यज्ञके द्वारा अर्जित अपने लोकोंको प्राप्त किया । वह तामस नामक भूपति सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर तामस नामक मनु हुए, उनका मन्वन्तर सुनिये । उस मन्वन्तरमें जो जो देवता, देवताओंके अधिपति इन्द्र, ऋषि और उन मनुके जिन जिन पुत्रोंने पृथ्वी का पालन किया, उसे सुनिये । हे मुने ! इस मन्वन्तरमें सत्यगण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण यह चार प्रकारके सत्ताइस सत्ताइस संख्यावाले देवताओंके गण हैं । महाबल महावीर्य शिवी नामक इन्द्र सौ यज्ञ करके उन देवताओंके प्रभु हुए । हे ब्रह्मन् ! ज्योतिधर्मा पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर यह सात सप्तर्षि हुए । नर, क्षान्ति,

---

टीका—तामस मन्वन्तरके कालाधिपति देवता मनुके जन्मवृत्तान्त सुननेपर नाना शंकायें पाठकोंके हृदयमें उत्पन्न हो सकती हैं । उन शंकाओंका समाधान स्वतःही हो सके, इस कारण कुछ इंगित करना आवश्यक है । प्रत्येक मन्वन्तर मनुष्यके कितने वर्षोंका होता है यह इससे पहलेके मन्वन्तर की टीकामें कहा गया है । अतः मृत्युलोककी सृष्टि और देवलोककी सृष्टि दोनोंमें ही अनेक अन्तर हो जाना सम्भव है । दूसरी बात विचारने योग्य यह है कि, विभिन्न मन्वन्तरोंमें सहजपिण्ड, मानवपिण्ड और देवपिण्ड इन तीनोंकी शक्तिका तारतम्य होनेसे तीनों पिण्डोंमें ही तीनों तरहकी सृष्टिके उत्पन्न होनेकी शक्तिका होनाभी सम्भव है । जैसे—मृगरूपी सहजपिण्डमें देवपिण्डकी तरह इच्छामात्रसे गर्भ उत्पन्न हो जाना । उसी तरह सहजपिण्डसे अथवा मानवपिण्डसे तुरतही देवपिण्डको प्राप्त करना ये सब शक्ति वैलक्षण्यका ही फल है । इस कालमें मानवपिण्डसे हटकर तब जीव पापके फलसे सहजपिण्डमें दण्डके रूपमें प्रवेश करता है । अथवा पुण्यके बलसे देवता बननेके लिये देवपिण्डमें प्रवेश कर सकता है । इस युगमें इससे अधिक शक्ति किसी पिण्डमें प्रकट नहीं दिखायी देती । इसकारण ऐसी शंकाये हुआ

शान्त, दान्त, जानु, जंघा आदि तामस मनुके महाबली और पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए। ॥ ५०—६२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें तामस मन्वन्तरनामक चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, हे ब्रह्मन्! रैवत नामक पांचवे मनु भी प्रसिद्ध हुए हैं; उनकी उत्पत्ति मैं आपसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनिये। ऋतवाक् नामसे प्रसिद्ध एक महाभाग ऋषि थे, वह पहिले पुत्रहीन थे। बादमें उनके रेवती नक्षत्रके अन्तमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे मुने! ऋषिने उस पुत्रकी जातकर्मादिक क्रिया और उपनयनादिक संस्कार यथाविधि किये। किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं हुआ। क्योंकि जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ तभीसे वह मुनिश्रेष्ठ दीर्घकालिक रोगसे ग्रस्त रहने लगे। उसकी माता भी कुष्ठादिक रोगसे पीड़ित होकर परम दुःख भोगने लगी। तब दुःखी होकर पिता सोचने लगे, ऐसा क्यों हुआ? उसके अत्यन्त दुर्मति पुत्रने भी किसी दूसरे मुनिपुत्रके सम्मुख ही उसकी भार्याको ग्रहण कर लिया। तब खिन्न मनसे ऋतुवाक्ने कहा, मनुष्यकी कु-पुत्रतासे अ-पुत्रता श्रेष्ठ है। क्योंकि कुपुत्र मातापिताके हृदयको सदा ही दुःख देता है और स्वर्गस्थित अपने पितरोंको भी नीचे गिराता है। उसके द्वारा न मित्रोंका ही उपकार होता है और न पितरोंकी ही तृप्ति। माता पिताके दुःखके ही लिये दुष्कर्मकारी पुत्रका जन्म होता है, उसे धिक्कार है! जिसकी सन्तान सम्पूर्ण मनुष्योंसे आदृत परोपकारी, शान्तप्रकृति और सत्कर्ममें अनुरक्त होती है, वही धन्य है। हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रावलम्बी और असन्तुष्ट यह मन्द जन्म केवल नरकके ही लिये है, सद्गतिके लिये नहीं। कुपुत्र निश्चय ही सुहृदोंको दीन, शत्रुओंको प्रसन्न और असमयमें ही माता पिताको वृद्ध कर देता है ॥ १–१२ ॥ मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके चरित्रसे मन ही मन जलते हुए मुनिने गर्ग मुनिसे समस्त वृत्तान्त पूछा।

करती हैं परन्तु पूर्व मन्वन्तरोंमें देशकाल और पात्रके विलक्षण होनेसे शक्ति वैलक्षण्यभी होता था। कर्मकी गति दुर्ज्ञेय होती है, इसी कारण इस मन्वन्तरमें मानवपिण्डधारी पिता और सहजपिण्डधारी मातासे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो पराक्रमशाली राजा हुआ और अन्तमें इतना तपस्वी हुआ कि देवपिण्ड प्राप्त करके उसने मनुरूपी देवपदको प्राप्त किया ॥ १—१२ ॥

ऋतवाक्ने कहा,—पहले मैंने सद्व्रत पूर्वक यथाविधि वेदोंको ग्रहण किया है। वेदाध्ययन समाप्त कर विधिपूर्वक मैंने पत्नी ग्रहण की है। श्रौत, स्मृति और वषट्कारकी वह क्रिया जो सपत्नीकको करनी चाहिये, हे महामुने! आज तक मैंने उनमें कुछ भी त्रुटि नहीं की। हे मुने! पुन्नाम नरकके भयसे गर्भाधानविधानसे यह पुत्र उत्पन्न किया है, कामके वशमें होकर नहीं। हे मुने, क्या यह मेरे पुत्र दोषसे अथवा अपने ही दोषोंसे हम लोगोंको दुःख और अपने दुःस्वभावसे बन्धु गणोंको शोक देनेवाला उत्पन्न हुआ है ॥ १२–१७ ॥ गर्गने कहा,—हे मुनिश्रेष्ठ! यह आपका पुत्र रेवती नक्षत्रके अन्तमें उत्पन्न हुआ है। यह दुष्टकालमें उत्पन्न हुआ है, इसी लिये सबको दुःख देता है। न माताके और न कुलके ही अपचारसे यह दुष्ट स्वभावका है, इसका कारण तो रेवतीका अन्तभाग ही है। ऋतवाक्ने कहा,—जब कि, रेवत्यन्तके कारण मेरा एकमात्र पुत्र दुःशील हुआ, तो यह रेवती शीघ्र ही गिर पड़े। उनके इस प्रकार शाप देने पर सब लोगोंके आश्चर्यचकित चित्तसे देखते देखते ही रेवतीनक्षत्र नीचे गिर पड़ा। कुमुद पर्वतमें रेवतीनक्षत्रके गिरनेके कारण वन, कन्दरा और निर्झर सहसा प्रकाशित हो गये। उसके गिरनेसे कुमुद पर्वत भी रैवतक नामसे विख्यात हुआ। वह भूधर समस्त पृथ्वी भरमें अत्यन्त रमणीय है। उस नक्षत्रकी कान्तिसे कमलोंसे युक्त एक सरोवर उत्पन्न हुआ और उससे अत्यन्त रूपवती एक कन्याने जन्म ग्रहण किया। हे भागुरे! प्रमुचमुनिने उस कन्याको रेवतीकी कान्तिसे उत्पन्न देख कर उसका नाम रेवती रक्खा। वह महाभाग उस पर्वत

टीका—यह पहले बार बार कहा गया है कि, पुराणको समझनेके लिये समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीय भाषा इन तीनों भाषाओंका रहस्य और उनकी वर्णनशैली और भावविन्यास समझने योग्य है। तथा आध्यात्मिकवर्णन, आधिदैविकवर्णन और आधिभौतिक वर्णन इन तीनोंका भी रहस्य हर समय ध्यान देने योग्य है। इस रेवती नक्षत्र और अलौकिक कन्या-उत्पत्तिकी गाथाको समझनेके लिये इन छः बातोंकी पर्य्यालोचना आवश्यक है। यह वर्णन शैली लौकिकी भाषा और परकीय भाषा उभयसे गुम्फित है और दूसरी ओर आधिदैविक विज्ञान और आधिभौतिक विज्ञान दोनोंसे मिश्रित है। रेवती नक्षत्रका टूट पड़ना यह आधिदैविक रहस्य है अर्थात् रेवती नक्षत्र की अधिदैव देवीका अंश अवतार रूपसे इस मृत्यु लोकमें कन्या बनी। ऐसे अवतार भगवान् विष्णु रुद्रसे लेकर सब देवताओंके, ऋषियोंके और देवियोंके हुआ करते हैं। ऐसे अवतार प्राप्त होनेसे वह असल देवपद नष्ट-भ्रष्ट नहीं होता है। लौकिक भाषा और परकीयभाषाका रहस्य इस कन्याके जन्मादि वर्णनमें लौकिक भाषा और अन्यान्य कर्म वर्णनमें परकीय-भाषाका परिचायक है। महर्षिगण पुराण लिखते समय जब समाधिस्थ होते हैं तो सविकल्प समाधिकी अवस्थामें विचारानुगत अवस्थासे ये सब बातें प्राप्त होती हैं तब अन्य कल्पोंकी अथवा अन्य मन्वंतरादिकी ये घटनाएं उनके अन्तःकरणपटलमें अपने आप ही उदय हो जाती हैं। योगयुक्त अन्तःकरणवाले समाधिसिद्ध योगीगण इसको समझ सकते हैं कि,

में अपने आश्रमके समीप उत्पन्न हुई उस कन्याका पालन पोषण करने लगे ॥ १८—२६ ॥ रूप और यौवनसे युक्त कन्याको देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका भर्ता कौन हो? हे मुने! इस प्रकार चिन्ता करते हुए उनका बहुतसा समय बीत गया, किन्तु उन महामुनिको उसके अनुरूप कोई भी वर नहीं मिला। तब उन्होंने वरके बारेमें पूछनेके लिये अग्निके समीप अग्निशालामें प्रवेश किया। पूछने पर हुताशनने मुनिसे कहा,— महाबल, महावीर्य, प्रियवक्ता तथा धर्मवत्सल दुर्गम नामक महीपति इसके भर्ता होंगे ॥ २७—३० ॥ मार्कण्डेय बोले, हे मुने! इसके बाद स्वायंभुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रतके वंशमें तथा कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न, विक्रमशीलके पुत्र, महाबल पराक्रमशील एवं बुद्धिमान् वह नरपति शिकार खेलते खेलते आश्रममें गये। आश्रममें प्रवेशकर जब उस राजाने ऋषि को नहीं देखा तो उस कृशांगी कन्याको 'प्रिया' कहते हुए बुलाकर पूछा। राजाने कहा,—हे सुन्दरी! वह भगवान् मुनिवर इस आश्रमसे कहां गये हैं? मुझसे कहो, मैं उन्हें प्रणाम करने की इच्छा करता हूं। मार्कण्डेय बोले, ब्राह्मण अग्निशालामें गये थे; वह राजाके कहे हुए वाक्य और 'प्रिया' के सम्बोधन को सुनकर शीघ्रही बाहर आगये। उन्होंने सामने ही राजाके लक्षणोंसे युक्त, विनयसे झुके हुए महात्मा राजा को देखा। फिर वह गौतम नामक शिष्यसे बोले,—गौतम! शीघ्रही इन राजाके लिये अर्घ लाओ। एक तो यह राजा बहुत दिनोंके बाद आये हैं, दूसरे यह दामाद होनेके कारण मेरे विचारमें विशेषकर अर्घ देनेके योग्य हैं ॥३१-३८॥ मार्कण्डेय बोले, इसके बाद राजा 'दामाद' कहनेका कारण सोचने लगे, किन्तु कुछ समझ न सके; तब उन्होंने चुप-चाप अर्घ ग्रहण किया। उन महामुनिने अर्घ ग्रहणकर आसन पर बैठे हुए राजासे स्वागत करते हुए पूछा,—हे नरेश्वर! आपके घर, खजाना, सेना, मित्र, भृत्य तथा अमात्यगण सभी कुशली हैं न? हे महाबाहो! आपही सबके आधार हैं, आप भी कुशली हैं न? आपकी पत्नी यहां कुशल पूर्वक रहती है, इसीसे उसके विषयमें मैंने कुछ नहीं पूछा है, किन्तु आपके यहां की अन्य स्त्रियां तो सकुशल हैं न? राजाने कहा,—हे सुव्रत! आपके प्रसादसे मेरा कहीं भी अमंगल नहीं, किन्तु हे मुने! मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। यहां मेरी पत्नी कौन है? ऋषि बोले, हे राजन्! त्रैलोक्यसुन्दरी महाभागा रेवती आपकी पत्नी है; आप उस वरारोहा को नहीं जानते क्या? ॥३९—४४॥ राजाने कहा,—हे विभो! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा,

---

अस्मितानुगत अवस्थासे आनन्दानुगत अवस्था और आनन्दानुगत अवस्थासे विचारानुगत अवस्थामें पहुंचते ही ऐसी स्मृति आ सकती है ॥ १८—२६ ॥

विपाठा तथा नन्दिनी इनमेंसे प्रत्येक पत्नीको मैं जानता हूं। हे द्विज ! वे सब मेरे घरमें ही रहती हैं। हे भगवन् ! रेवती को मैं नहीं जानता; यह कौन है? ऋषि बोले,—हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनीको आपने प्रिया कहा है, वही आपकी गृहिणी है! क्या आप उसे भूल गये? राजाने कहा,—मैंने यह कहा सही है, किन्तु हे मुने? उसमें मेरा कोई बुरा भाव नहीं है। इसके लिये आप मेरे ऊपर क्रोध न करें, यह प्रार्थना है। ऋषि-बोले, आपने कहा, 'मेरा कोई बुरा भाव नहीं है' यह ठीक है, किन्तु हे नृपते ! यह आपने अग्निका ही प्रेरणासे कहा है। हे भूपाल ! मैंने अग्निसे पूछा था कि, इसका भर्ता कौन होगा तब अग्निने यही उत्तर दिया कि आपही इसके पति होंगे। हे नराधिप ! अब आप क्या विचार करते हैं? जिसे आपने 'प्रिया' कहकर बुलाया है उस कन्याको मैं देता हूं, आप ग्रहण कीजिये ॥ ४५—५१ ॥ मार्कण्डेयने कहा, इसके अनन्तर ऋषिके यह कहने पर राजा चुप हो गये। ऋषिभी कन्याके विवाहकी तैयारी करने लगे। हे महामुने ! पिता को विवाहके लिये तैयार देखकर विनयसे मस्तक झुकाए हुए वह कन्या बोली,—हे तात ! यदि आप मुझे प्यार करते हो, तो मुझपर कृपा कीजिये। आप प्रसन्न हो मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें करें। ऋषिने कहा,—हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र इस समय चन्द्रमासे युक्त नहीं है। हे सुभ्रु ! विवाहके दूसरे नक्षत्र तो हैं। कन्याने कहा,—हे तात ! रेवती नक्षत्रके बिना मुझे सभी समय विफल प्रतीत होता है। मेरे सदृश कन्याका विवाह विफल कालमें कैसेहो सकता है? ऋषिने कहा,—ऋतवाक् नामक प्रसिद्ध तपस्वीने रेवती नक्षत्रके प्रति क्रोध किया था; उन्होंने उसे नीचे गिरा दिया है। इसके अतिरिक्त इस मदिरेक्षणाको भार्यारूपमें देनेकी भी प्रतिज्ञा है किन्तु इस समय तुम विवाहकी इच्छा नहीं करती हो, यह मेरे लिये बड़े ही संकटका समय उपस्थित होगया है। कन्याने कहा,—ऋतवाक् मुनिने कौनसी ऐसी तपस्याकी थी, वह क्या आपने नहीं की? मैं क्या ब्रह्मबन्धु की कन्या हूं? ऋषि बोले,—तुम ब्राह्मणाधमकी कन्या नहीं हो। हे बाले ! उस तपस्वीकी अर्थात् मेरी कन्या हो, जो दूसरे देवताओंको बनानेका उत्साह करता है ॥ ५२-६० ॥ कन्याने कहा,—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं तो उस नक्षत्रको आकाशमें स्थापित कर मेरा विवाह उसीमें क्यों नहीं करते? ऋषिने कहा,—हे भद्रे ! ऐसा ही होगा। तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रसन्न रहो। मैं तुम्हारे लिये रेवती नक्षत्रको चन्द्र मार्गमें स्थापित करता हूं। मार्कण्डेय बोले, हे द्विजोत्तम ! इसके अनन्तर महामुनि प्रमुचने तपस्याके प्रभावसे रेवती नक्षत्रको पहलेकी भांति चन्द्रमासे संयुक्त कर दिया। फिर विधिवत् मंत्रोंसे कन्याका विवाह कर प्रसन्न हो दामादसे कहने लगे। वह बोले,—मैं विवाहके यौतुकमें तुम्हें क्या दूं? हे भूपाल ! आपही कहें। मैं दुर्लभ वस्तु भी दूंगा। मेरी तपस्या अखण्ड है। राजाने कहा,—हे

मुने! मैं स्वायंभुव मनुके कुलमें उत्पन्न हुआ हूं। आपके प्रसादसे मैं मन्वन्तरका अधिपति पुत्र प्राप्त करूं, यही वर मैं मांगता हूँ। ऋषिने कहा,—हे भूपाल! यह तुम्हारी कामना पूरी होगी। तुम्हारा पुत्र मनु होगा। वह समस्त पृथ्वीका भोग करेगा। वह धर्मज्ञ भी होगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजा उसे लेकर अपने नगरको चले गये। उनके रेवतीके गर्भसे रैवत नामक पुत्र मनु हुए। वह समस्त धर्मसे युक्त और मनुष्योंसे न हारनेवाले थे, समस्त शास्त्रोंके अर्थके ज्ञान और वेद विद्याके मर्मके वेत्ता भी थे। हे ब्रह्मन्! उनके मन्वन्तरके देवता, मुनि, इन्द्र और भूपालगणके सम्बन्धमें कहता हूं, आप सावधान होकर सुनें। हे द्विज! सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अभिताभ यह चौदह चौदह देवोंके चार देवगण हैं। इन चारों देवगणोंके ईश्वर, सौ यज्ञोंके कर्ता विभुनामक इन्द्र हैं। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्ववाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि पर्जन्य तथा वेद वेदांग पारगामी महाभाग वसिष्ठ यही रैवतमन्वन्तरमें सप्तर्षि हैं। बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक आदि रैवत मनुके पुत्र हुए। रैवत मनु तकका जो वर्णन मैंने आपसे किया है, स्वारोचिष मनुके अतिरिक्त वह सभी मनु स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए हैं॥ ६१–७६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें रैवत मन्वन्तर नामक
पञ्चहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ॥ ७५॥

टीका—सूर्य और चन्द्र ग्रहणके विषयमें पुराणोंमें वर्णन है कि राहु सूर्य और चन्द्रको ग्रास करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूर्यलोक अथवा चन्द्रलोक राहुके उदरमें चले जाते हों। राहुभूतछायारूपी क्रियाका अधिदैव असुर है, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें भी सन्देह नहीं है कि ग्रहणके समय पृथ्वीपर आने वाली सूर्यशक्ति और चन्द्रशक्तिका अवरोध हो जाता है। इसी कारण हमारे पृथ्वीलोकके सम्बन्धसे सूर्य और चन्द्रका राहु द्वारा ग्रास होना स्वतःसिद्ध है। परन्तु उस समय सूर्यलोक और चन्द्रलोक ज्योंके त्यों रहते हैं और उनके अधिदैव भी ज्योंके त्यों रहते हैं। केवल उनकी शक्ति, जो ग्रहणके समय पृथ्वी लोकमें कार्य नहीं करती थी, वह शक्ति ग्रहणके अन्तमें करने लगती है। इसी उदाहरणसे औदाहरण समझने योग्य है। ऋषिके तपःप्रभावसे और रेवतीके कर्मप्रभावसे जो रेवती नक्षत्रकी शक्तिमें बाधा हुई थी इस समय इस कन्याके पिता महर्षि प्रमुचके तपःप्रभावसे वह बाधा दूर हुई। ऐसा समझने पर पुराण-पाठकोंको शंका का अवसर नहीं रहेगा॥ ६१—६९॥

छिहत्तरवां अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले, मैंने आपसे पांचवें मन्वन्तरका वर्णन किया है । अब चाक्षुष मनुका छठवां मन्वन्तर मुझसे सुनिये । हे द्विज ! अन्य जन्ममें यह ब्रह्माके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे अतएव इस जन्ममें भी यह चाक्षुष कहलाए । महात्मा राजर्षि अनमित्रकी पत्नीका नाम भद्रा था, उन्हींके गर्भसे विभु, पवित्र तथा जातिको स्मरण करनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ । माता नवजात शिशुको अपनी गोदीमें लेकर हार्दिक आनन्दसे खिलाती फिर आलिंगन करती और पुनः खिलाती थी । इस पर माताकी गोदीमें बैठा हुआ वह जातिस्मर पुत्र हंस पड़ा, तब माता क्रोधित होकर बोली,—हे वत्स ! मैं डर गई हूं, तुम्हारे बदनमें यह हंसी कैसी है ? असमयमें ही तुम्हें ज्ञान होगया है ? क्या इसमें तुम्हें कोई मंगल दिखाई पड़ता है ? पुत्रने कहा,—क्या तुम नहीं देखती हो ? सामने यह मार्जारी (बिल्ली) तथा अदृश्य जातहारिणी मुझे खाजाना चाहती है और आप पुत्र-प्रेमके कारण मुझे हार्दिक स्नेहसे देखती हैं; खिला खिलाकर बार बार मुझे आलिंगन करती हैं; आनन्दसे आपके रोएं खड़े हो जाते हैं; स्नेहसे आपके नेत्रोंमें आंसू आजाते हैं; इसीलिये मुझे हंसी आगई। इसका कारण भी सुनिये, स्वार्थमें लगी हुई मार्जारी और अन्तर्हित जातहारिणी मुझे देख रही हैं ॥१-१०॥ स्वार्थके लिये जिस प्रकार मुझसे इन दोनोंका हृदय स्नेहशील होगया है, उसी प्रकार मुझे आपका भी प्रतीत होता है । मार्जारी और जातहारिणी मेरा ही उपभोग करना चाहती हैं और आप मेरे द्वारा धीरे धीरे उपभोग्य फलका । आप नहीं जानती कि मैं कौन हूं; मैंने आपका कोई उपकार भी नहीं किया; बहुत दिनका नहीं केवल पांच सात दिनका संग है तो भी आप मुझसे स्नेह करती हैं; आखोंमें आसू भरकर आलिंगन करती हैं; तात, भद्र, वत्स आदि व्यर्थके सम्बोधन करती हैं । माताने कहा,—हे वत्स, किसी उपकारके लिये मैं तुम्हारा आलिंगन नहीं करती, केवल प्रीतिसे ही करती हूं; यदि तुम इससे प्रसन्न नहीं होते तो मैं तुमसे छोड़ ही दी गई हूं । मैंने भी तुम्हारे द्वारा अपना सारा स्वार्थ छोड़ दिया । यह कहकर वह शरीरसे जड़ और अन्तःकरणसे शुद्ध उस पुत्रको छोड़ कर सूतिकागृहसे बाहर चली गई । तब माताके द्वारा परित्यक्त उस पुत्रका जातहारिणीने अपहरण कर लिया ॥ ११-१७ ॥ वह उसे चुराकर विक्रान्त नामक राजाकी नवप्रसूत पत्नीकी शय्यामें रख कर उसके पुत्रको ले आयी फिर उसे दूसरेके घरमें लेगयी और उसके लड़केको उठा लिया, इस प्रकार उस जातहारिणीने तीसरेके लड़केको

खा लिया। वह क्रूरा अपहरण करती हुई तीसरे पुत्रको ही खाती है। वह प्रतिदिन इसी प्रकारका बदला किया करती है॥ १८-२०॥ इसके अनन्तर महीपाल विक्रान्तने भी वह सभी संस्कार किये जो क्षत्रियोंके होते हैं। अत्यन्त आनन्दसे युक्त होकर उसके पिता विक्रान्त महीपतिने विधिपूर्वक उसका नाम 'आनन्द' रक्खा। उपनयन होजानेके अनन्तर गुरुने उस कुमारसे कहा,—पहले माताको उठकर प्रणाम करो। गुरुका यह वाक्य सुनकर वह हंसकर बोला,—मैं किसे प्रणाम करूं, जननीको अथवा पालन करनेवालीको? गुरुने कहा, हे महाभाग! यह जारूथकी पुत्री ही तुम्हारी माता है, यह विक्रान्तकी प्रधान रानी और इसका नाम हैमिनी है। आनन्दने कहा, यह विशाल ग्रामवासी विप्रश्रेष्ठ बोधके पुत्र चैत्रकी जननी है, वही इसके पुत्र हैं। मेरा तो अन्यत्र जन्म हुआ है। गुरुने कहा, हे आनन्द! तुम कहांसे आये हो? वह चैत्र कौन हैं जिनकी तुमने बात कही है? तुम क्या कह रहे हो, तुमने कहां जन्म लिया है? मुझे तो बड़ा भारी संकट मालूम पड़ रहा है। आनन्दने कहा,—हे द्विज! मैं अनमित्र नामक राजाके घर उनकी पत्नी गिरिभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूं। जातहारिणी मेरा अपहरण कर मुझे यहां छोड़ गई है और हैमिनीके पुत्रको वह उन द्विज श्रेष्ठ बोधके घर ले गई; वहां उसने उनके पुत्रको खा लिया। हैमिनीपुत्र वह ब्राह्मणके संस्कारोंसे संस्कृत हुआ है। हे महाभाग! हम यहां पर आपसे संस्कृत हुए हैं। मुझे आपका कहना करना चाहिये, आप गुरु हैं। कहिये, मैं किसे प्रणाम करूं? गुरुने कहा,—यह बड़ा भारी संकट उपस्थित हो गया है, मैं कुछ नहीं समझता, मोहके कारण मेरी बुद्धि चक्कर खा रही है॥ २१-३२॥ आनन्दने कहा,—इस प्रकारके व्यवस्थित जगत्‌में मोहका विराम हां क्या? हे विप्रर्षे! कौन किसका पुत्र है? जब जन्मसे लेकर ही मनुष्योंके सम्बन्धी प्राप्त होते हैं तब तो कोई किसीका बन्धु ही नहीं है। दूसरे सम्बन्धी भी मृत्युके द्वारा अलग कर दिये जाते हैं। यहां पर उत्पन्न हुए मनुष्योंका जो बान्धवोंके साथ सम्बन्ध है, उसका देहके साथ ही अन्त हो जाता है, यही समस्त संसारका क्रम है। इसीसे कहता हूं संसारमें रहनेवालेका कोई बान्धव नहीं है। कौन चिर बन्धु है? क्यों आपकी बुद्धि भ्रममें पड़ रही है। देखिये, इसी जन्ममें मुझे दो पिता, दो मातायें मिलीं तब अन्य जन्ममें ऐसा ही हो तो आश्चर्य ही क्या? इसलिये मैं तप करूंगा, आप विशाल ग्रामसे इन भूपतिके पुत्र चैत्रको ले आइये। मार्कण्डेयने कहा, इसके बाद आश्चर्य चकित होकर राजाने स्त्री बन्धुओंके साथ माताको छोड़ कर उसे वन जानेकी अनुमति दी॥ ३३-३८॥ जिस ब्राह्मणने चैत्रको पुत्र समझकर पाला था, उसे सम्मानित कर राजाने पुत्रको लाकर राज्यके योग्य बनाया। वह आनंद भी विमुक्तिके बाधक कर्मोंके क्षयके लिये बाल्यावस्थामें ही उस महावनमें तपस्या करने

लगे। तब देव प्रजापतिने तपस्या करते समय उनसे कहा,—हे वत्स! तुम किस लिये यह कठिन तप कर रहे हो, मुझसे कहो। आनन्द बोले,—हे भगवन्! मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या कर रहा हूँ। मेरे जो कर्म मुझे बांधनेके लिये हैं, मैं उनके नाशके लिये तत्पर हूं। ब्रह्माने कहा, जिसके अधिकारोंका क्षय हो गया है वह पुरुष मुक्तिके योग्य होता है, कर्मवान् नहीं। आप सत्वाधिकारवाले पुरुष हैं, आप मुक्ति कैसे पायेंगे। अब आपको जाकर वही करना चाहिये जिससे आप छठे मनु हों, आपको तपस्याकी आवश्यकता नहीं; वैसा करने पर आप मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥ ४०—४५ ॥ मार्कण्डेय बोले, ब्रह्माके यह कहने पर 'ऐसा ही हो' कहकर वह महामति उस कर्मके लिये अग्रसर हुए, उन्होंने तपस्या छोड़ दी। ब्रह्माने उन्हे तपस्यासे निवृत्त कर उनका पूर्व नाम चाक्षुष रक्खा। इसके अनन्तर वह विख्यात चाक्षुष मनु हुए। उन्होंने उग्र नामक महीपति की कन्या विदर्भासे विवाह कर उसके गर्भसे अनेकों विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये। हे द्विज! उस मन्वन्तराधिपतिके मन्वन्तरमें जो देवता, जो ऋषि, जो इन्द्र और जो उनकी सन्तति हुई है, उसे सुनिये। हे विप्र! इस मन्वन्तरमें देवताओंका प्रथम गण आर्य नामक है, उस गणमें विख्यात कर्मवाले यज्ञमें हव्यभोजी आठ देवता थे। प्रख्यात बलवीर्य-वाले, प्रभामण्डलके मध्यवर्ती, दुर्दर्श देवताओंका प्रसूत नामक दूसरा गण है। इसमें भी आठ

टीका—पूर्व कर्मसे प्राप्त जो श्रेष्ठ अधिकार जीवको प्राप्त होते हैं, उनके क्षीण होनेका तात्पर्य कर्म-बन्धनसे बचना है। यह विषय बहुत गूढ़ रहस्यपूर्ण है। मुक्ति तीन प्रकारकी होती है। सहज कर्मकी मुक्ति जीवनमुक्तदशामें इसी मृत्युलोकमें होती है, जनकादि राजा और व्यास वसिष्ठ आदि महर्षि इसके उदाहरण हैं। दूसरे प्रकारकी मुक्ति जैव कर्मसे होती है; जीव जब उग्र तपके अनन्तर आत्मज्ञानका अधिकारी होता है और इस लोकमें शरीर छोड़कर शुक्लगतिका अवलम्बन करके सप्तम ऊर्द्ध्वलोकमें पहुंच कर मुक्तिपदका अधिकारी होता है, वह दूसरे प्रकारकी मुक्ति है। इसका ज्वलन्त उदाहरण ब्रह्मचारी भीष्मपितामह हैं। तीसरे प्रकारकी मुक्ति कुछ उभय विलक्षण है, जो जीव अपने उग्र शुभ कर्मके प्रभावसे भगवान् यम धर्मराज, भगवान् मनु अथवा त्रिमूर्ति पदमें पहुंच कर उच्चसे उच्च देवपदाधिकारको प्राप्त करके उन अधिकारोंमें और उनसे आरब्ध किये हुए कर्मोंमें निर्लिप्त रहते हैं, वे उक्त पदोंमें रहते हुए भी ब्रह्मभूत हैं और उन अधिकारोंको छोड़कर भी ब्रह्मभूत ही होते हैं। वे शरीर रहते हुए सगुण ब्रह्म हैं और पदत्यागके अनन्तर स्वस्वरूपमें लय होकर ब्रह्मभूत ही हो जाते हैं। इस स्थल पर इसी मुक्तिश्रेणीको इङ्गित किया गया है। मनुपद देवपद है और कालरक्षक देव-पद होनेसे बहुत बड़ा देवपद है; इस पदपर जो महापुरुष पहुंचते हैं वे पूर्णज्ञानी स्वरूपस्थित और अलौकिक शक्तिमान् होते हैं। वे पद पर रहते हुए भी मुक्त रहते हैं और अपने पदको छोड़कर भी स्वस्व-रूपमें विलीन हो जाते हैं। यह मुक्ति ऐश कर्मकी मुक्ति कहाती है। पूर्व दोनों कर्मोंकी मुक्तिका वर्णन शास्त्रोंमें जहां तहां है, परन्तु यह उभय विलक्षण मुक्ति अलौकिक और असाधारण है ॥ ४०—४५ ॥

देवता हैं । इसी प्रकार आठ देवताओं वाला भव्य नामक तीसरा गण है । चौथे गणका नाम यूथग है । हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें पांच देवगण लेख नामका है, उसके देवता अमृताशी हैं । सौ यज्ञोंको करके यज्ञांश भोजी 'मनोजव' नामक इन्द्र उनके अधिपति हुए, सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अति, और सहिष्णु यह सात सप्तर्षि हुए । चाक्षुष मनुके उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि महाबलशाली पुत्र पृथ्वीके स्वामी हुए । हे द्विज ! छठे मन्वन्तरका विषय एवं चाक्षुष मनुका जन्म तथा चरित्र मैंने तुमसे कहा है । अब वैवस्वत नामक जो सातवें मनु इस समय वर्त्तमान हैं उनके मन्वन्तर और देवतादिकका विषय मुझसे सुनिये ॥ ४६–५८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें चाक्षुष मन्वन्तर नामक
छिहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, हे महाभाग ! विश्वकर्माकी संज्ञा नाम्नी कन्या सूर्य भगवान्‌की पत्नी हैं, उनके गर्भसे सूर्यने प्रख्यात यशस्वी एवं बहु ज्ञानसम्पन्न मनुको उत्पन्न किया । विवस्वतके पुत्र होनेके कारण यह मनु वैवस्वत नामसे विख्यात हुए । रविके देखने पर संज्ञा अपने नेत्र बन्दकर लेती थी, इसलिये क्रोधित होकर सूर्यने निष्ठुरता पूर्वक कहा, मुझे देखकर तुम सदैव नेत्रका संयम करती हो, अतएव प्रजाके संयमन करनेवाले यमको

टीका—मन्वन्तरकी जितनी कथाएं इस पुराणमें कही गयी हैं वह सब दैवी सृष्टिकी कथायें हैं और उस उस समयके देवलोकसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं । ये सब गाथायें समाधि द्वारा ऋषियोंके अर्थात् पुराण शास्त्र रचयिताओंके अन्तःकरणपटलमें उदय हुआ करती हैं । तब वह ग्रन्थमें लिखी जाती हैं । समाधिके रहस्यजाननेवाले योगिराज गण इस अलौकिक समाधिगम्य विषयको समझ सकते हैं और कोई ठीक ठीक नहीं समझ सकता । जैसे इस मृत्युलोकमें कालके नानाविभागमें राजा प्रजा, राजशक्ति-प्रजाशक्ति और देश काल पात्रका स्वरूप अलग अलग पाया जाता है उसी प्रकार प्रत्येक मन्वन्तरमें दैवी जगत्‌की शृंखला विभिन्न प्रकारसे परिवर्तित हो जाती है । अलग अलग मन्वन्तरमें अलग अलग प्रकारके देवसंघ, अलग अलग प्रकारके ऋषिसंघ, अलग अलग प्रकारके पितृसंघ और अलग अलग प्रकारके देवपदधारी बनकर सृष्टिके अलग अलग समष्टिकर्मके अनुसार उक्त मन्वन्तरकी शृंखला बांधते हैं, इस कारण प्रत्येक मन्वन्तरमें दैवी राज्यकी शृंखला और देवपदोंकी शृंखलामें भेद होना अवश्यम्भावी है । यही कारण है कि, मन्वन्तरोंमें इस प्रकार देवसंघोंका परिवर्त्तन पाया जाता है ॥ ४६–५६ ॥

तुम उत्पन्न करोगी। मार्कण्डेय बोले, तबसे वह देवी भयभीत होकर दृष्टिको चञ्चल रखने लगी, तब इधर उधर नेत्रोंको नचाते हुए उसे देखकर सूर्यने कहा, मुझे देखकर अब तुम अपने नेत्रोंको चपल रखती हो। इसलिये तुम चञ्चल कन्या नदीको उत्पन्न करोगी ॥ १—५ ॥ मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर पतिके शापसे उसके यम तथा प्रख्यात महानदी यमुना उपन्न हुई। वह भामिनी संज्ञा भी बड़े दुःखसे रविके तेजको सहन करती थी। जब वह उस तेजको न सहसकी तो उसने सोचा, क्या करूं ? कहां जाऊं ? कहां जानेपर मुक्ति मिलेगी ? उसके बाद किस प्रकार मेरे स्वामी सूर्य क्रोधके वशमें न हों ? उस समय उस प्रकार प्रजापतिकी कन्या महाभागा संज्ञाने बहुत कुछ सोचकर पिताके आश्रयमें ही जाना अच्छा समझा। तब इस यशस्विनीने पिताके घरमें जानेका निश्चयकर रविकी पत्नीके स्थानपर अपने छायामय शरीरका निर्माण किया। फिर वह उस छायासे बोली, इस सूर्यके घरमें जिस प्रकार मैं हूं उसी प्रकार तुम भी होगी। लड़कों के तथा रविके साथ मेरे सदृशही वर्ताव करना। उनके पूछने पर भी तुम मेरे इस प्रकार जानेकी बात न कहना। 'मैं वही संज्ञा हूं' तुम यही बात कहना ॥ ६—१३ ॥ छायाने कहा, हे देवि ! जब तक वह मेरे बाल नहीं खीचेंगे, शाप नहीं देंगे तब तक मैं आपहीका कहना करूंगी। किन्तु शापदेने तथा बाल खींचने पर मैं समस्त वृत्तान्त कह दूंगी। छाया संज्ञाके इस प्रकार कहने पर संज्ञा देवी पिताके घर चली गयीं। वहां उन्होंने तपस्याके द्वारा अपने पापोंको धोकर विश्वकर्माको देखा। विश्वकर्माने भी उसका बड़े आदरके साथ सत्कार किया। वहां पर संज्ञा आनन्द पूर्वक कुछ समय तक रही। थोड़े ही दिन रहनेके पश्चात् पिताने अपनी कन्यासे बहुत आदर और स्नेहके साथ मीठे शब्दोंमें कहा, हे वत्से ! बहुत दिनों तक तुम्हें देखने पर भी मुझे आधा मुहूर्त ही प्रतीत होता है। किन्तु इससे धर्मकी हानि होती है। बन्धुओंके घर बहुत समय तक रहना स्त्रियोंके लिये यशस्कर नहीं होता। उनका मनोरथ यही है कि स्त्रियां पतिके ही घर रहें। हे पुत्रि ! त्रिलोकके स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं। उन्हींसे तुम्हारा विवाह हुआ है, पिताके घरमें चिरकाल तक रहना तुम्हें उचित नहीं ! अत एव हे शुभे ! तुम इसी क्षण अपने पतिके घर जाओ। मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैंने तुम्हारा सत्कार भी कर दिया है। मुझे देखनेके लिये तुम फिर चली आना ॥ १४–२१ ॥ मार्कण्डेय बोले, हे मुने ! पिताके ऐसा कहने पर उसने 'ऐसा ही हो' कहा, फिर वह उनकी पूजा कर उत्तर देशकी ओर चली गयी। सूर्यके तापको न चाहती हुई उनके तेजसे डरकर वह वहां पर बड़वाका (घोड़ी) रूप धारण कर तपस्या करने लगी। दिनपति सूर्यने संज्ञा जानकर ही उस दूसरी पत्नीके गर्भसे दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। किन्तु वह

छाया-संज्ञा जिस प्रकार अपनी सन्ततिके प्रति स्नेह करती थी वैसा प्रेम संज्ञाके पुत्रों एवं कन्या के साथ नहीं करती थी। नलिनादिकके उपभोग में प्रतिदिन भी दिखाई देता था। मनुने तो क्षमा कर दिया किन्तु यमने नहीं किया। उन्होंने मारनेके लिये अपने पैरको उठाया, किन्तु उसके शान्त रहने पर उसके शरीर पर नहीं पटका। हे द्विज! इस पर छाया-संज्ञाने क्रोधमें आकर उसने ओंठको कुछ कपाते तथा हांथको चलाते हुए शाप दिया, मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं। तुमने मेरी मर्यादा न रख कर पैरसे मुझे डराया है, अतएव अभी तुम्हारा पैर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। मार्कण्डेय-बोले, माताके दिये हुए इस प्रकारके शापको सुनकर, भयभीत हो पिताके समीप जाकर प्रणाम करते हुए यमने कहा, हे तात! माताने वात्सल्य-भावको छोड़ कर पुत्रको शाप दिया है, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है! ऐसा तो कहीं किसीने नहीं देखा! मनुने जैसा मुझसे कहा था यह वैसी माता नहीं है। पुत्रके दुर्गुणी होने पर भी माता कभी मातृत्वगुणसे हीन नहीं हो सकती॥ २२–३२॥ मार्कण्डेय बोले, यमकी बात सुन कर भगवान् तिमिरारि सूर्यने आदर पूर्वक छाया-संज्ञाको बुलाकर पूछा, 'संज्ञा कहां गई है?' वह बोली, हे विभावसो? मैं ही विश्वकर्माकी कन्या आपकी पत्नी संज्ञा हूं। मेरे ही गर्भसे आपके इन संतानोंने जन्म ग्रहण किया है। भगवान् सूर्यके इस प्रकार उससे बार बार पूछने पर भी उसने ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया; जब भगवान् सूर्य उसे क्रुद्ध होकर शाप देनेको उद्यत हुए; तब उसने भगवान् सूर्यसे सभी वृत्तान्त कह दिया। सब कुछ अवगत होनेपर वह विश्वकर्माके घर गये। त्रैलोक्य–पूजित तेजस्वी सूर्यको अपने घरमें आया हुआ देख, विश्वकर्माने परम भक्तिके साथ उनकी पूजा की। उन्होंने सूर्यसे संज्ञाका वृत्तान्त जानकर कहा, संज्ञा हमारे घर आयी थी, किन्तु मैंने उसे आपके ही पास भेज दिया था। तब दिवाकर सूर्यने ध्यानस्थ होकर देखा कि, संज्ञा उत्तर कुरुवर्षमें बड़वा रूप धारण कर तपस्या कर रही है। उन्होंने यह भी जाना कि, उसका तपस्या की अभिसिद्धि भी यही है कि, "मेरा स्वामी सौम्य एवं सुन्दर आकृतिवाला हो जाय।" हे द्विज! भगवान् भास्करने संज्ञाके पितासे कहा, 'आप मेरे तेजको अव-क्षीण कर दीजिये।' इसके अनन्तर विश्वकर्माने सम्वत्सरका भ्रमण करने वाले सूर्यका तेज क्षीण कर दिया, इसपर देवताओंने उनकी स्तुतिकी ॥३३–४२॥

इसप्रकार मार्कण्डेय-महापुराणमें वैवस्वत मन्वन्तरका
सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर समस्त देवगण और देवर्षिगण आकर त्रैलोक्यपूज्य रविकी स्तुति करने लगे । देवगण बोले, हे देव ! आप ऋक् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आप साम स्वरूप हैं आपको नमस्कार है । आप यजुः तथा सामके द्युतिमान् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है । आपही ज्ञानके एकमात्र आधार हैं । तमके नाशक, विशुद्ध ज्योतिके स्वरूप शुद्ध एवं विमल आत्मा हैं, आपको नमस्कार है । आपही वरिष्ठ, वरेण्य, पर तथा परमात्मा हैं, आपही का मूर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है; आपको नमस्कार है । समस्त संसारके कारण आपही हैं, आपही ज्ञानियोंकी निष्ठा हैं, आप सूर्य स्वरूप हैं, आपका रूप ही रूप है आपको नमस्कार है ॥ १—५ ॥ आपही भास्कर हैं, आपही दिनकर भी हैं और रात्रिके कारण भी, आपही संध्या तथा ज्योत्स्नाके वनानेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप भगवान् हैं, भ्रमण करते हुए आपके द्वाराही चर-अचरके सहित यह ब्रह्माण्ड विंधा हुआ-सा भ्रमण कर रहा है । स्पर्श करने योग्य जितने द्रव्य हैं वह आपकी किरणोंके स्पर्शसे ही पवित्र होते हैं । जलादिककी पवित्रता आपकी किरणोंके द्वारा ही होती है । हे देव ! यह संसार जबतक आपकी किरणों का संयोग नहीं पाता तबतक होम दानादिके द्वारा उसका कुछ उपकार नहीं होता । आपके अङ्गसे जो समस्त किरणें निकलीं हैं वही ऋक्, यजुः और साम हैं । हे जगन्नाथ ! आपही ऋक्मय, आपही यजुर्मय और आपही साममय हैं, अतएव हे प्रभो ! आपही त्रयीमय हैं । आपही ब्रह्माके रूप हैं, आपही प्रधान तथा आपही अप्रधान हैं । आपही मूर्त और आपही अ-मूर्त हैं । स्थूल और सूक्ष्मरूपसे भी आपही स्थित हैं । हे देव ! आपही निमेष-काष्ठादिके रूपमें क्षयात्मक कालके स्वरूप हैं । आप प्रसन्न होइये । अपनी इच्छाके अनुरूप ही अपने तेज को प्रशान्त कीजिये ॥ ५—१३ ॥ मार्कण्डेय-बोले, इस प्रकार देव और देवर्षियोंके स्तुति करनेपर तेजके समूह, कभी नाश न होने वाले सूर्यने अपने तेजको छोड़ा । उन रविके ऋङ्मय तेजसे पृथ्वी, यजुर्मय तेजसे आकाश, साममय तेजसे स्वर्ग उत्पन्न हुआ । विश्वकर्माने सूर्यको जो पन्द्रह हिस्से तेज क्षीणकर दिया था, उसके द्वाराही उन्होंने महादेवका शूल, विष्णुका चक्र एवं वसुगण, शंकर, तथा अग्निकी सुदारुण शक्तिका निर्माण किया । उससेही कुबेरकी पालकी तथा अन्य राक्षस, यक्ष और विद्याधरोंके उग्र अस्त्रका निर्माण किया ॥ १४—१८ ॥ इसके अनन्तर भगवान् सूर्यने अपने तेजका सोलहवां हिस्साही धारण किया । विश्वकर्माने उसे भी पन्द्रह वार छांटा । तब भगवान् सूर्य घोड़ेका रूप धारणकर उत्तर कुरुवर्ष गये । वहां

उन्होंने वड़वाके रूपमें संज्ञाको देखा। वह उन्हें आता हुआ देख पर-पुरुषकी आशंका करने लगी और अपनी पीठकी रक्षामें तत्पर होकर वह उनके सम्मुख गई। वहां पास आ जानेपर दोनोंकी नासिकाके संयोग हो जानेपर अश्वीके मुखसे नासत्य, दस्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, और उस वीर्यके शेष भागसे चर्म वर्म और खड्गधारी, बाण और तूणसे युक्त, घोड़ेपर चढ़ा हुआ रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् सूर्यने उस अश्वीको अपना अतुल रूप दिखाया, वह वड़वा भी इनके वास्तविक रूपको देखकर परम प्रसन्न हुई और उसने भी अपना रूपधारण कर लिया। तब जलकेहरणकरनेवाले भास्करदेव प्रीतिमती संज्ञाको अपने आश्रममें ले आये ॥१४–२५॥ इसके अनन्तर इसके ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु, और दूसरे पुत्र यम शापके कारण धर्म दृष्टि हुए। "तुम्हारे पैरोंसे मासके सहित कीड़े पृथ्वी पर गिरेंगे।" इस पापका स्वयं पिताने अन्त किया। वह धर्म दृष्टि थे, शत्रु और मित्रमें उनका समान भाव था, यह देखकर ही तिमिरारि सूर्यने उन्हें यमके पदपर नियुक्त किया। यमुना नामक कन्या कलिन्द देशमें नदीके रूपमें वहने लगी। दोनों अश्विनी कुमार पिताके द्वारा स्वर्गके वैद्य और रैवतक गुह्यकोंके अधिपति नियुक्त हुए। अब छाया-संज्ञाकी संतति नियुक्तिका वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ २६–३० ॥ ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनुके समान छाया संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न रविके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सावर्णिक था। जिस समय वलि इन्द्र होंगे उस समय यही मनु होंगे। शनैश्चर भी पिताके द्वारा ग्रहोंके मध्यमें नियुक्त हुए। सबसे छोटी तीसरी कन्याका नाम तपती था, उसके संवरण नामक राजाके वीर्यसे कुरु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब मैं सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके समस्त ऋषि, देव, इन्द्र और भूपति पुत्रोंके वृत्तान्तको कहता हूं ॥ ३१–३४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें वैवस्वतमन्वन्तरमें वैवस्वतोत्पत्ति नामक
अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

टीका—वैवस्वत मन्वतरके अधिपतिकी उत्पत्तिकी यह गाथा अति विचित्रतासे पूर्ण है। शंकाका अवसर न रहे इस कारण इंगित किया जाता है कि, यह गाथा आध्यात्मिक भावसे पूर्ण है और इसकी भाषा लौकिक भाषामयी है। सूर्य आदिके स्वरूप जो समाधिगम्य हैं, उसी समाधिगम्य स्वरूपके साधारण बुद्धिसे अगम्य होनेके कारण उसको लौकिक भाषाकी शैली पर प्रकट किया गया है और दूसरी ओर आध्यात्मिकभावसे गुम्फित रखकर यह गाथा अतिमनोहर रूपमें प्रकट की गयी है। तत्त्वज्ञ विद्वान्‌गण इस विचारशैलीका अनुसरण करने पर इस गाथाके माधुर्य्यके साथ ही साथ इसका महत्त्व ग्रहण कर सकेंगे और सूर्य भगवान्‌का अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूप और साथ ही साथ उनकी संतति और परिवारवर्गका स्वरूप दार्शनिक दृष्टि द्वारा देख सकेंगे। अध्याय—७७–७८ ॥

उन्नासिवाँ अध्याय ।

—०:※:०—

मार्कण्डेय बोले, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत्, भृगु तथा अंगिरागण यही इस मन्वन्तरके आठ प्रकारके देवता हैं। इनमें आदित्य, वसु और रुद्रगण कश्यप की सन्तान हैं, साध्य विश्व और मरुद् गण यह तीनों धर्मके पुत्र हैं, भृगुगण भृगुदेवके और अंगिरागण अंगिरादेवताके पुत्र हैं। हे द्विज! इस सर्गको अब मारीच नामसे जानना चाहिये ॥१-३॥ इस मन्वन्तरमें महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र होकर यज्ञांशके भोगी हुए। जो पहले हुए हैं, जो इस समय हैं और जो होंगे वे सभी देवेन्द्र समान लक्षणवाले प्रसिद्ध हैं। सहस्राक्ष, वज्रधारी और सुन्दर हैं, सभी धनवान, वृष, शृंगधारी और गजगामी हैं, वे सभी सौ यज्ञोंके कर्ता प्राणियोंके पराभवकारी तेजस्वी हैं। हे द्विज! वे विशुद्ध धर्मके कारणसे ही अधिपतिके गुणोंसे युक्त एवं भूत भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं। हे द्विज! अब आप तीनों लोकोंके विषयको मुझसे सुनें। इस पृथ्वीको 'भूर्लोक' अन्तरिक्षको 'दिव' और स्वर्गको 'दिव्य' लोक कहते हैं। यही तीनों त्रैलोक्य हैं ॥ ४-८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिकनन्दन विश्वामित्र और महात्मा ऋचीकनन्दन जमदग्नि, यही सात मुनि इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, नभग, दिष्ट करुवा, पृषध्र, यह वैवस्वत मनुके तेजस्वी तथा जगद्विख्यात नौ पुत्र हुए। हे ब्रह्मन्! मैंने आपसे वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! इसका सुनने पाठ करनेसे मनुष्य उसी समय समस्त पापोंसे मुक्त होकर पुण्यका उपभोग करता है ॥ ९-१३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय-महापुराणमें वैवस्वत मन्वन्तरमें उन्यासिवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥७९॥

अस्सिवाँ अध्याय ।

——:※:——

क्रौष्टुकिने कहा, स्वायम्भुव आदिक सात मनु एवं उनके देवता, राजा और ऋषियोंका वर्णन आपने मुझसे कर दिया है। हे महामुने! इस कल्पमें और जो सात मनु होंगे, उनका और उस समय देवादिक होंगे उनका विषय मुझसे कहिये। मार्कण्डेय-बोले, छाया-संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वत मनुके तुल्य जिन सावर्णि की बात तुमसे कही है, वही आठवें मनु होंगे। इस मन्वन्तरमें राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान कृप, ऋष्यशृंग तथा द्रौणि यही सात सप्तर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें सुतपा, अमिताभ और मुख्य यही तीन प्रकारके देवगण हैं, इनमें प्रत्येकमें बीस अर्थात् सब बीसके तिगुने साठ देवता हैं ॥ १-५ ॥ उनमें. तपस्तपः शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म तेज,

रश्मि, वक्रतु आदि समस्त सुतपाके बीस संख्यावाले गणके अन्तर्गत हैं। प्रभु, विभु और विभास आदि देवगण अमिताभके अन्तर्गत हैं। अब तीसरे गणके बारेमें मुझसे सुनिये। दम, दान्त, रित, सोम और विन्त आदिक देवगण मुख्य नामक तीसरे बीस संख्यावाले गणके अन्तर्गत हैं। यह सभी मन्वन्तराधिपति तथा सभी मरीचिके पुत्र कश्यपकी संतान हैं। यही सावर्णि मन्वन्तरमें देवता होंगे। हे मुनिवर! विरोचनके पुत्र दैत्यराज बलि, जो आज भी प्रतिज्ञामें बन्धकर पातालमें रहते हैं, इस समय इन्द्र होंगे। सावर्णि मनुके पुत्र विरजा, अर्ववीर निर्मोह, सत्यवाक्, कृति और विष्णु नामवाले उस समयके राजा होंगे॥९-११॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सावर्णि मन्वन्तरमें अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ॥८०॥

टीका—दैवीराज्यकी काल श्रृङ्खला, कर्म श्रृङ्खला और पदाधिकारी की सुव्यवस्था ये तीन स्वतंत्रकार्य दैवी जगत्‌के माने गये हैं। कालकी व्यवस्था करनेवाले राजा मनु कहाते हैं। धर्माधर्मके मूलभूत कर्मकी श्रृङ्खलाको ठीक रखनेवाले और जीवको यथावत् फलभोग देकर सम्हालनेवाले राजा यम-धर्मराज हैं और नानादेव पदधारी देवताओंको व्यवस्थित रखनेवाले और दैवी सत्त्वकी सुरक्षा करनेवाले देवराज इन्द्र कहाते हैं दूसरी ओर देवताओंके संघके भी प्रत्येक मन्वन्तरके समष्टि प्रबन्धके अनुसार अलग अलग विभाग, हुआ करते हैं। ज्ञानकी व्यवस्था करनेवाले देवसंघ ऋषि आदि, आधिभौतिक सृष्टिकी सुव्यवस्था करनेवाले देवसंघ नित्यपितृ आदि चतुर्विध भूत संघको सम्हालने वाले, जीवके आवागमन चक्रको सम्हालने वाले और नाना दैवी पदको सुरक्षित रखनेवाले अन्य कई प्रकारके देवसंघ अपने अपने पद पर नियुक्त रहते हैं। समाधि द्वारा प्राप्त ये सब संघ वैवस्वत मन्वन्तरके कहे गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरका काल मनुष्य वर्षके अनुसार ३०६७२०००० वर्षोंका होता है। एक ब्राह्मकल्प ४३२०००००००० का होता है। उसके अनुसार मन्वन्तर और कल्प दोनोंका हिसाब मिलानेसे मन्वन्तरोंकी सन्धिके २५९२०००० वर्षोंका फरक पड़ता है। प्रत्येक मन्वन्तर की तीन संधि मानी गई हैं। आदि, मध्य और अन्तकी सन्धि। इसका कारण समझानेके लिये उदाहरण दिया गया है कि, जब मनुष्यकी आयु समाप्ति होती है तो उस समय वर्षका हिसाब ठीक मिल जाने पर भी कई एक अवावन्तर कारणोंसे शरीर त्यागके दिन और घण्टेमें फरक पड़ा करता है। इसी प्रकारसे प्रत्येक युग प्रत्येक महायुग और प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें इसप्रकारका थोड़ा फरक पड़ता हुआ कल्प और मन्वन्तरकी आयुमें यह भेद पड़ जाया करता है। वस्तुतः यह तो निश्चित ही है कि मनु पदसे एक व्यक्तिकी जगह दूसरी व्यक्ति आजाता है; तभी एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरका परिवर्तन कहाता है। इस समय इस मन्वन्तरके ३०६७२०००० वर्षोंमें से केवल १२०५३३०३३ वर्ष व्यतीत हुए हैं। अभी १८६१८६९६७ वर्ष वर्तमान मन्वन्तरके बाकी हैं॥

त्रिकालदर्शी पूज्यपाद व्यासादि महर्षिगण अपनी समाधिबुद्धि द्वारा इस प्रकारसे मन्वन्तर और कल्प कल्पान्तरकी गाथाओंको लोक कल्याणके लिये प्राप्त करके पुराणोंमें प्रकट कर गये हैं। ये गाथाएं कल्पित नहीं हैं सत्य हैं परन्तु त्रिभावात्मक हैं। और त्रिभाषामयी हैं। इनसे लौकिक इतिहासका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी ओर जब देखा जाता है कि दोसौ पांचसौ वर्षके लौकिक इतिहासमें देशकाल-पात्र और सभ्यताका कितना फर्क पड़ जाता है तो सोचा जाय कि अनेक मन्वन्तरोंमें और अनेक कल्पोंमें सृष्टिके स्वरूपमें और उसके अङ्गोंके स्वरूपमें कितना फर्क पड़ सकता है। यही कारण है कि आजकलकी लौकिकबुद्धिसे पुराणकी गाथाएँ कल्पित प्रतीत होती हैं॥ ९—११॥

एक्यासीवाँ अध्याय ।

श्रीसप्तशती गीता । ❀

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय मुनिने क्रोष्टुकीसे कहा कि, सूर्य्यपुत्र सावर्णि जो अष्टम मनु कहलावेंगे,

---

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! शिवे ! त्वं, वाणीमनोबुद्धिभिरप्रमेया ।
यतोऽस्यतो नैव हि कश्चिदीशः, स्तोतुं स्वशब्दैर्भवतीं कदाचित् ॥
त्वं निर्गुणाकारविवर्जिताऽपि, त्वं भावराज्याच्च बहिर्गताऽपि ।
सर्वेन्द्रियागोचरतां गताऽपि, त्वेकाह्यखण्डा विभुरद्वयाऽपि ॥
स्वभक्तकल्याणविवर्द्धनाय, धृत्वा स्वरूपं सगुणं हि तेभ्यः ।
निःश्रेयसं यच्छसि भावगम्या, त्रिभावरूपे ! भवतीं नमामः ॥
त्वं सच्चिदानन्दमये स्वकीये, ब्रह्मस्वरूपे निजविज्ञभक्तान् ।
तथेशरूपे च विधाप्य मातरुपासकान् दर्शनमात्मभक्तान् ॥
निष्कामयज्ञावलिनिष्ठसाधकान्, विराट्स्वरूपे च विधाप्य दर्शनम् ।
श्रुतेर्महावाक्यमिदं मनोहरम्, करोष्यहो "तत्त्वमसीति" सार्थकम् ॥

हे देवि ! हे प्रपन्नार्तिहरे ! हे शिवे ! तुम वाणी, मन और बुद्धिके अगोचर हो । इस कारण इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो शब्द द्वारा तुम्हारी स्तुति कर सकता हो । तुम आकार रहित, भावातीत, गुणातीत, अखण्ड, अद्वितीय, विभु और सब इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य होनेपर भी अपने भक्तोंके कल्याणके अर्थ ही सगुणरूप धारण करके भावगम्य होकर उनको निःश्रेयस प्रदान करती हो । हे त्रिभावरूपिणि ! आपको प्रणाम है । तुम अपने ज्ञानी भक्तोंको सच्चिदानन्दमय ब्रह्मरूपमें दर्शन देकर, उपासक भक्तोंको ईश्वरी रूपमें दर्शन देकर और निष्काम यज्ञनिष्ठ भक्तोंको विराट्रूपमें दर्शन देकर "तत्त्वमसि" महावाक्यकी चरितार्थता करती हो ।

शक्तिमान् और शक्तिमें वस्तुतः अभेद है । शक्तिमान् और शक्तिकी पृथक् पृथक् सत्ता जब तक परोक्षानुभूति अथवा अपरोक्षानुभूति द्वारा प्रत्यक्षकी जाती है, तब तक यह मानना ही पड़ेगा कि, शक्तिमान्से शक्तिका प्राधान्य है । एक गायक जिसमें अलौकिक गायन शक्तिका विकाश है, उसकी अपेक्षा उसकी गायन शक्तिका आदर, उपयोग और महत्त्व अधिक पाया जायगा । वह गायक यदि अपनी गानशक्तिका प्रयोग करे, तो उसका दर्शन न करके भी उसकी मधुर शब्दमयी सृष्टिके विलासमें

उनकी उत्पत्तिका विवरण मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ, तुम सुनो ॥ २ ॥ महाभाग वे

जगत् मुग्ध होता है, परन्तु वह जब अपनी शक्तिको अपनेमें अव्यक्त रखता हो, उस समय उसके स्वरूपको देख कर कोई भी मुग्ध नहीं हो सकता है। इसी कारण शक्ति-उपासानका विस्तार, शक्ति-उपासनाका उपयोग और शक्ति-उपासनाका महत्व, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है। वस्तुतः उपासना सगुण ब्रह्मकी होती है, जब तक द्वैत भान है, तभी तक उपासनाका सम्बन्ध रह सकता है और द्वैत भान तभी तक रह सकता है जब तक सगुणत्व है। इसी कारण वेद-सम्मत यावत् शास्त्रोंमें सगुण उपासनाका ही अधिक विस्तार है। सगुण उपासनाके पंच भेदोंमेंसे चित्भाव-आश्रयकारी विष्णु-उपासना, सत्भाव आश्रयकारी शिव उपासना, भगवत्तेजको आश्रयकारी सूर्य्योपासना, भगवद्भावमयी बुद्धिको आश्रयकारी धीश उपासना, और भगवत् शक्तिको आश्रयकारी शक्ति उपासना है। ब्रह्मानन्द-विलास-रूपी सृष्टिदशामें ब्रह्मपदसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले चित्, सत्, तेज, बुद्धि, और शक्ति, ये ही पांच हैं। चित्सत्ता जगत्को दिखाती है, सत्सत्ता जगतके अस्तित्वका अनुभव कराती है, तेज जगत्को ब्रह्मकी ओर आकर्षण करता है, बुद्धि सत् ब्रह्म और असत् जगत्का भेद बताती है और शक्ति सृष्टि, स्थिति, लय करती हुई जीवको बद्ध भी कराती है तथा मुक्त भी कराती है। इसी कारण इन पांचके अवलम्बनसे सगुणपंचोपासनाका विज्ञान निर्णीत हुआ है। उपासक इन्हीं पांचोंके अवलम्बनसे ब्रह्मसान्निध्य प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्म सायुज्य प्राप्त कर लेता है। पंच उपासनाओंकी पांच गीताएं इसी कारण जगज्जन्मादिकारण मान कर ब्रह्मरूपसे अपने अपने इष्टको निर्देश करती हैं।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमय दृश्य-प्रपंच ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। ब्रह्मशक्ति ही सृष्टि-स्थिति-लय करती है, वही अविद्या बन कर जीवको बन्धन जालमें फंसाती है, और विद्या बनकर उसको ब्रह्म साक्षात्कार कराके मुक्त करती है; दूसरी ओर ब्रह्मशक्ति और ब्रह्ममें 'अहं ममेति' वत् भेद नहीं है। शक्तिमान्से शक्ति की विशेषता कैसी है सो गायक और गानशक्तिके उदाहरणसे ऊपर कही ही गयी है। उसी ब्रह्म शक्तिके भेद वेद और शास्त्रोंने चार प्रकारके कहे हैं। ब्रह्ममें सर्वदा लीन रहने वाली तुरीया शक्ति कहाती है, यही ब्रह्मशक्ति स्वस्वरूप-प्रकाशिनी है। ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी जननी, निर्गुण ब्रह्मको सगुण दिखानेवाली, ब्रह्म-आलिङ्गित महाशक्ति कारणशक्ति कहाती है। यही शक्ति कभी विद्या बन जाती है, कभी अविद्या बन जाती है, ब्रह्मशक्तिके तमःप्रधान और सत्वप्रधान पृथक् पृथक् दो भाव ही इसके कारण हैं। ब्रह्मशक्तिका तीसरा भाव सृष्टि कराने वाली ब्राह्मी शक्ति, स्थिति कराने वाली वैष्णवी शक्ति, और लय करानेवाली शैवी शक्ति समझी जाती है; ये ही तीनों सूक्ष्म शक्ति कहाती हैं। चाहे स्थावर सृष्टि हो, चाहे जंगम सृष्टि हो, चाहे ब्रह्माण्ड सृष्टि हो, चाहे पिण्ड सृष्टि हो, सर्वत्र सृष्टि, स्थिति और लयके क्रम एवं अस्तित्वको रखने वाली ये ही सूक्ष्म ब्रह्मशक्तियां हैं। भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, और भगवान् शिव जो प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक हैं, वे इन्हींकी सहायतासे अपना अपना कार्य्य सुसम्पन्न करते हैं और उस महाशक्तिकी चतुर्थ अवस्था स्थूलशक्ति कहाती है। स्थूलशक्तिका अनुभव पदार्थ-विद्याके द्वारा भी होता है। स्थूल जगत्की अवस्थाओंका परिवर्त्तन, उसका धारण आदि सब कार्य्य इस शक्तिके द्वारा सुसिद्ध होते रहते हैं। ताड़ित शक्ति आदि अनेक इसके भेद हैं। इस कारण भी शक्ति-उपासनाका विस्तार और महत्त्व अधिक है।

समष्टि व्यष्टि रूपी ब्रह्माण्ड-पिण्डात्मक-सृष्टि ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। वह चतुर्दश लोकमय है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भू, भुव, स्व आदि सात ऊद्ध्र्वलोक और अतल, वितल आदि सात अधोलोक

सावर्णि महामायाकी कृपासे जिस प्रकार सूर्य्यसे जन्म लेकर मन्वन्तरके अधिपति होंगे

हैं। सात ऊर्द्ध्वलोकमें देवताओंका वास है और सात अधोलोकोंमें असुरोंका वास है। यह मृत्युलोक ऊर्द्ध्व सप्त लोकोंमेंसे भूलोकका एक चतुर्थांश है। इसमें जीवगण मातृगर्भसे उत्पन्न होते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं, इस कारण इसका नाम मृत्युलोक है। अन्य सब लोकोंमें मातृगर्भसे जन्म नहीं होता है। यहींके जीव अपने अपने कर्मोंके वश होकर मृत्युके अनन्तर आतिवाहिक देहके द्वारा उन उन लोकोंमें दैवी सहायतासे पहुंचते हैं। पिण्ड तीन श्रेणी* होता है। एक सहजपिण्ड उद्भिज्जादि योनियोंका, मानवपिण्ड मनुष्योंका और दैवपिण्ड देवताओंका कहाता है। मृत्युलोकके अतिरिक्त जितने लोक हैं, वे सब देवलोक कहाते हैं, उनमें देवपिण्डधारी देवताओंका ही वास है। सहजपिण्डधारी अथवा मानवपिण्डधारी जीव देवपिण्डधारी जीवोंको देख नहीं सकते हैं। यदि देवतागण इच्छा करें तभी वे देख सकते हैं। देवलोक हमारे पार्थिव लोकसे अतीत और सूक्ष्म हैं। सुर जिस प्रकार देवपिण्डधारी हैं, उसी प्रकार असुर भी देवपिण्डधारी हैं। भेद इतनाही है कि, देवताओंमें आत्मोन्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। असुरोंमें इन्द्रियोन्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। यही कारण है कि, सूक्ष्म-देवलोकमें देवासुरसंग्राम प्रायः हुआ करता है। परन्तु देवतागण उन्नत अधिकारी होनेसे वे कदापि असुरराज्यको छीननेकी इच्छा नहीं करते, अपनेही अधिकारके लोकमें तृप्त रहते हैं। असुरगण विषयलोलुप होनेके कारण उनकी प्रवृत्ति सदा दैवराज्य छीननेकी ओर बनी रहती है। यही देवासुर-संग्रामका मूल कारण है। मृत्युलोकमें भी मानवपिण्ड देवासुर-संग्रामके लिये दुर्गरूप हैं। उनको असुरगण और देवतागण अपने अपने ढंग पर अपने अपने अधिकारमें लानेका प्रयत्न करते रहते हैं। यही मनुष्यपिण्डमें पाप-पुण्यसे सम्बन्ध युक्त कुमति और सुमतिका युद्ध है। देवासुर-संग्राममें जब जब असुरोंकी जय होने लगती है, तब ब्रह्मशक्ति महामायाकी कृपासेही पुनः असुरोंका पराभव होकर सूक्ष्म दैवराज्यमें शान्ति स्थापित होती है। उसका उदाहरण पिण्डमें भी देखने योग्य है। पापमति मनुष्य जब पापपंकमें फंस जाता है, तब पुनः उसका उस दलदलसे निकलना कठिन होता है। ऐसे समयमें गुरुबल अथवा दैवबल ये ही उसके सहायक होते हैं; ये सब उस अखिललोकजननी महाशक्तिकी कृपाका ही रूपान्तर है।

जगत्कारण परमात्मा ब्रह्म जिस प्रकार सत्, चित्, और आनन्दरूपसे त्रिभाव द्वारा जाने जाते हैं, पुनः पराभक्तिके अधिकारी भावुक भक्तगण जिस प्रकार उनके इन तीनों भावोंके अनुसार ब्रह्म, ईश्वर और विराट् रूपसे अपने हृदय-मन्दिरमें पृथक् पृथक् भावसे उनके दर्शन करके आनन्द सागरमें अवगाहन करते हैं, वैसेही संसारकी सब वस्तुएं भी त्रिभावात्मक हैं। कारण ब्रह्ममें जिस प्रकार तीन भाव हैं, उसी प्रकार कार्य्य ब्रह्म भी त्रिभावात्मक हैं। इसी कारण वेद और वेदसम्मत-शास्त्र भी त्रिविध अर्थमय हुआ करते हैं। उसी सर्वतन्त्रसिद्धान्त स्वरूप प्राकृतिक नियमके अनुसार देवासुर-संग्रामके भी तीन स्वरूप हैं। देवासुर-संग्रामका अध्यात्म स्वरूप प्रत्येक पिण्डमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तिके नित्य युद्ध द्वारा प्रकट होता है। उस युद्धका अधिदैव स्वरूप सूक्ष्म दैवराज्यमें देवराज और असुरराजकी सेनाओंके द्वारा प्रकट होता है और उसका अधिभूतरूप इस मृत्युलोकमें नाना सामाजिक और राजनैतिक युद्धके द्वारा प्रकट होता रहता है।

सप्तशती-गीताका प्रसंग पूर्वकथित दार्शनिक रहस्योंसे भरा हुआ है। जिसको दार्शनिक बुद्धि सम्पन्न भक्तगण समझकर आनन्दसे गद्गद् होते हैं। अन्य जितनी गीताएं, जो प्रचलित हैं, वे सब प्रायः ज्ञान-प्रधान हैं, और वे सब ज्ञानकाण्डके विस्तारमें तत्पर हैं। सप्तशती गीताका विशेषत्व यह है कि, वह

सो भी कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ पुरा कालमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंश सम्भूत सुरथ

प्रथमतः उपासना की परम सहायक और कलियुगमें कर्मकाण्डकी प्रधान अङ्गीभूत है। द्वितीयतः सप्तशती गीता कलियुगमें जीवोंके सब मनोरथ पूर्ण करनेमें कल्पतरुरूप है। जो शब्द अथवा शब्दसमूह दैवराज्यसे सम्बन्ध रखते हैं, और जिनका प्रभाव दैवराज्य पर पड़ता है, वे मन्त्र कहाते हैं, सप्तशतीगीता कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशालिनी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल देनेवाली सप्तशतीगीता का तीसरा महत्त्व अतिविलक्षण ही है। यह पहले ही कहागया है कि शक्ति और शक्तिमान् का 'अहं ममेति, वत् अभेदत्व है। उदाहरणसे यह भी दिखाया गया है कि, सृष्टिमें शक्तिमान्से शक्तिका ही आदर और विशेषता होती है। उपासनामें इन्हीं दोनोंके विचारसे भगवत् सान्निध्य प्राप्त करने की शैली बान्धी गई है। किसी किसी उपासना प्रणालीमें शक्तिमान्को प्रधान रखकर उसकी शक्तिके अवलम्बनसे उपासना की साधन प्रणाली निर्णीत हुई है। कहीं कहीं शक्तिको प्रधान मानकर शक्तिमान्का अनुमान करते हुए उपासना प्रणाली बनाई गई है। पहली दशाके उदाहरणमें, वेद और शास्त्रोक्त निर्गुण तथा सगुण उपासनाके प्रायः सब भेद पाये जाते हैं। दूसरी दशा जो अपेक्षाकृत आत्मज्ञान-रहित है, उसमें केवल अनुमान बुद्धि द्वारा एक ईश्वर हैं, ऐसा जानकर उनके नाना गुणों का स्मरण करके विभिन्न धर्म-मतों और पन्थोंके उपासक उस सर्वहितकारी भगवान् की ओर अग्रसर होकर कृत-कृत्य होते हैं। पहली अवस्थामें आत्मज्ञान रहनेसे भगवत् स्वरूपका विकाश भागवतके मनोमन्दिरमें यथावत् बना रहता है और दूसरी दशामें आत्मज्ञानका विकाश न रहनेसे भक्त केवल भगवान्की मनोमुग्धकारिणी शक्तियोंके अवलम्बनसे मन—बुद्धिसे अगोचर परमात्माको मनोमन्दिरमें बैठानेका प्रयत्न करता है। श्रीभगवान्को मातृ-भावसे उपासना करनेकी अनन्त वैचित्र्यपूर्ण जो शक्ति-उपासनाकी प्रणाली है, वह पूर्वोक्त उन दोनोंसे विलक्षण ही है। इस उपासना-विज्ञानमें शक्ति और शक्तिमान्का अभेद-लक्ष्य सदा रक्खा गया है। वे ही शक्तिरूपमें उपास्य-उपासकका सम्बन्ध स्थापन करते हैं और वे ही शक्तिमान्रूपसे शक्तिभावापन्न भक्तको अपनेमें मिलाकर मुक्त कर देते हैं, यही इस तृतीय तथा अनुपम शैलीका मधुर और गम्भीर रहस्य है।

सप्तशती गीता शक्ति उपासनामार्गका परम सहायक और उसका प्रधान प्रवर्त्तक उपनिषद् ग्रन्थ है। इस औपनिषदिक गाथाका प्रसंग नाना प्रकारसे वेद और वेदसम्मतशास्त्रोंमें पाया जाता है। सप्तशती गीताका प्रसंग पुराणोंमें इस प्रकार पाया जाता है—प्राचीन कालमें भगवान् व्यासके शिष्य महर्षि जैमिनी सांग वेद और नाना शास्त्रोंके पारदर्शी होने पर भी श्रीमहाभारतके बहुत कठिन स्थलोंको समझ नहीं सके थे उस समय उनके गुरुमहाराजको अवकाश न रहनेसे उन्होंने परम विज्ञ महर्षि मार्कण्डेयके निकट जाकर बहुतसे रहस्योंकी जिज्ञासा कीथी। तब महर्षि मार्कण्डेयने आज्ञाकी थी कि, मुझे सन्ध्यावन्दनादिके लिये जाना है, अवकाश नहीं है, आप पितृशापग्रस्त पक्षीरूपधारी पिङ्गाक्ष, विराध, सुपुत्र और सुमुख नामक सर्वशास्त्र विशारद चार मुनिपुत्र हैं, उनके पास जाकर इन सब प्रश्नोंकी जिज्ञासा करो। तुरन्त ही आपके सब सन्देह दूर हो जाएंगे। महर्षि जैमिनीने इस प्रकारसे गुरुकृपा लाभ करके उन पक्षीशरीरधारी महात्माओंके निकट जाकर जिज्ञासा की थी। तब मार्कण्डेय, क्रोष्टुकी सम्बादके उपक्रम द्वारा उन्होंने नाना प्रकारकी शंकाओंका समाधान करके महर्षि जैमिनीको तृप्त किया था। क्रमशः चतुर्दश मन्वन्तरके प्रसंगमें उन्होंने कहाथा कि, राजा सुरथही ब्रह्ममयी भगवतीकी कृपासे अष्टम-मन्वन्तराधिपति सावर्णि नामक मनु होंगे। भविष्यत्के सावर्णि नामक मनु जब साधारण राजा थे, तब किस प्रकारसे उन्होंने जगदम्बा ब्रह्ममयीकी कृपा प्राप्त

नामक व्यक्ति सारे भूमण्डलके राजा हुए थे ॥ ४ ॥ वे अपने औरस पुत्रके समान प्रजा-

की थी, जगत् कल्याण वासनासे आत्मज्ञानी महर्षि मार्कण्डेयने पहले ही क्रोष्टुकीको उस प्रसंगका उपदेश किया था और उस समय अवकाशका अभाव होनेसे उन्होंने पक्षी-शरीरधारी मुनियोंके निकट महर्षि जैमिनीको भेजा था । वही सम्वाद 'मार्कण्डेय उवाच' वचन द्वारा प्रारम्भ किया गया है, जो त्रिलोक पवित्रकर, त्रिलोक रक्षक, सर्वकामप्रद और सर्वजीवहितकारी है ।

टीका—पुराण शास्त्र वेदके भाष्य रूप हैं । जिस प्रकार वेद त्रिकालदर्शी हैं, उसी प्रकार पुराण शास्त्र भी त्रिकालके विषयोंको प्रकट करते हैं । इस कारण यह गाथा पुराणोंमें प्रकट हुई है । कालके विषयमें शक्तिरहस्यादिमें लिखा है किः—

चतुर्युगसहस्राणि, ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
पितामहसहस्राणि, विष्णोरेका घटी मता ॥ १ ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि, निमेषार्द्धं महेशितुः ।
दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः ॥ २ ॥

१०० त्रुटिका एक पर, ३० परका एक निमेष, १८ निमेष की एक काष्ठा, ३० काष्ठाकी एक कला, ३० कलाकी एक घटिका, दो घटिका का एक क्षण, ३० क्षणका एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन होता है ।

हजार चौकड़ी युगका ब्रह्माका दिन और उतनीहीकी रात्रि होती है । ब्रह्माके एक हजार अहोरात्र की विष्णुकी एक घड़ी होती है । विष्णुकी बारहलाख घड़ियोंका महेशका निमेषार्द्ध होता है । महेशके दस करोड़ निमेषार्द्धोंकी श्रीमाताकी एक त्रुटि होती है । अनादि अनन्त महाकाल नाना प्रकारसे विभक्त किये जाते हैं, यथा—मन्वन्तरसे भगवान् ब्रह्माजीके दिन और आयुका काल अधिक है, उसी प्रकार भगवान् ब्रह्माकी आयुसे भगवान् विष्णुका दिन और आयुका परिमाण बहुत अधिक है । उसी प्रकार भगवान् विष्णुसे भगवान् शिवका दिवस और आयु और भी अधिक है । क्योंकि, वे ब्रह्माण्डके प्रलय करने वाले हैं. उनके आयुके साथही ब्रह्माण्डकी आयु समझी जाती है । चौदह मन्वन्तरमें भगवान् ब्रह्माका एक दिन होता है । भगवान् मनु कालके नियन्तृ-देवता हैं । जिस प्रकार वसु, रुद्र, आदित्य, इन्द्र आदि सूक्ष्म दैवराज्यके पद हैं, वैसेही मनु भी स्थायी पद है । केवल पदधारी बदला करते हैं । आठवें मन्वन्तरमें मनु पद पर नवीन अभिषिक्त होने वाले देवताके पूर्व जन्मका वर्णन इसमें किया गया है । चतुर्दश मनुके नाम यथा,—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि । काल धर्मके पालन करानेमें मनु सदा तत्पर रहते हैं । मनुका अधिकार बहुत बड़ा है ॥ २ ॥

टीका—वेद और पुराणोंमें तीन प्रकारकी वर्णन शैलियां प्रचलित हैं । उन वर्णन शैलियोंके नाम यथा—समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीया भाषा । इन तीनोंके विना समझे पुराणशास्त्रका रहस्य समझना असम्भव है । समाधिसे जाननेवाले विषय समाधि-भाषामें कहे जाते हैं । यथा आत्माका स्वरूप, प्रकृतिका स्वरूप, कर्मका स्वरूप, धर्माधर्मनिर्णय इत्यादि । समाधिगम्य अध्यात्म तथा अधिदैव-रहस्योंको जब लौकिक रीतिसे रूपक द्वारा वर्णन करके श्रोताकी बुद्धि सत्यमें प्रतिष्ठितकी जाती है, उसको लौकिकी भाषा कहते हैं । यथा जगदम्बाका जन्म, कर्म, विवाह, विलास आदिका बर्ताव, जो वस्तुतः समाधिगम्य और अलौकिक विषय है, परन्तु मध्यम अधिकारियोंके लिये लौकिकरीतिसे वर्णन किया गया है । तीसरी परकीया भाषा वह कहाती है, जो समाधि-भाषा और लौकिक-भाषाके

ओंका पालन करते थे, उसी समय कोलाविध्वंसी (अनार्य्यजाति विशेष) भूपतिगण उनके शत्रु हो गये ॥ ५ ॥ तब उन राजाओंके साथ अतिप्रबल दण्डधारी सुरथका युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय कोलाविध्वंसी राजा गण सुरथकी अपेक्षा हीन बल होनेपर भी युद्धमें (दैववशात्) राजा सुरथ ही पराजित हुये ॥ ६ ॥ अनन्तर सुरथ अपनी पुरीमें आकर केवल अपने देशके अधिपति हुए। तभी प्रबल शत्रुओंने आकर महाभाग सुरथ पर आक्रमण किया ॥ ७ ॥ तब वे नितान्त दुर्बल हो गये; इस कारण दुष्ट दुरात्मा मन्त्रियोंने भी (शत्रुओंके साथ मिलकर) राजधानीका कोष और सैन्य-सामन्तादि छीन लिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा सुरथ हृताधिपत्य होकर मृगयाके व्याजसे एक घोड़े पर सवार होकर एकाकी अति दुर्गम वनको चले गये ॥ ९ ॥ उन्होंने उस वनमें द्विज मेधस मुनिका आश्रम देखा। वह आश्रम प्रशान्त, वैर भाव रहित पशुओंके द्वारा समाकीर्ण एवं मुनि शिष्योंके द्वारा सुशोभित था ॥ १० ॥ उस मुनिने सुरथका आतिथ्य सत्कार किया और सुरथ इसी प्रकार इधर उधर विचरण करते हुए उसी आश्रममें रहने लगे ॥ ११ ॥ तब वे ममतासे आकृष्टचित्त होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे ॥ १२ ॥ जिस पुरीकी रक्षा हमारे पूर्व पुरुषोंने की थी, मेरे द्वारा त्यक्त उसको क्या हमारे असाधु सेवकगण धर्मानुसार पालन कर रहे हैं? ॥ १३ ॥ हमारा सदा मदस्रावी शूर नामक प्रधान हस्ती शत्रुके वशमें जाकर किन किन भोगोंको प्राप्त करता है, सो भी मैं नहीं जान

विषयोंको दृढ़ करानेके अर्थ युग युगान्तर और कल्प कल्पान्तरकी घटनावलियोंको गाथारूपसे प्रकाशितकी जाय। यह वर्णन वस्तुतः परकीयाभाषाका है, कोई लौकिक इतिहास नहीं है। वेदोंको समझनेवाले त्रिकालदर्शी महर्षिगणने अपनी योगयुक्त बुद्धिसे जैसे समाधि भाषाको प्रकाशित किया है वैसे लौकिक भाषाको किया है और वैसे ही परकीया भाषाको पुराणोंमें प्रकाशित किया है। ये गाथाएं लौकिक कहानी अथवा लौकिक इतिहास नहीं हैं, ये सब समाधिगम्य कर्मरहस्य हैं ॥ ३ ॥

टीका—तपोवनके ये ही दोनों प्रधान लक्षण हैं कि, जहां वैरभावरहित पशुओंका वास हो और मुनियोंका निवास हो। योगशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, जहां वैरभावसे रहित चित्तवाले अहिंसाभावसम्पन्न महात्मा रहते हैं, वहांके हिंसाकारी पशु भी हिंसा छोड़ देते हैं, और भयरहित हो जाते हैं। दूसरी ओर मुनि वे ही कहाते हैं, जिनका मन भगवान्में लीन रहता है। जहां ऐसे महात्माओंका वास हो और हिंस्र-पशु हिंसारहित होजायं, वही तपोवन कहलाता है। साधकको सदा यह स्मरण रखना उचित है ॥ १० ॥

टीका—मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयस करानेवाले धर्म-कर्ममात्रको यज्ञ कहते हैं। और समस्त जगत्के कल्याण करनेवाले धर्मको महायज्ञ कहते हैं। गृहस्थके लिये पाँच महायज्ञ प्रधान हैं, यथा,—नित्य ऋषियोंके सम्वर्द्धनके लिये ब्रह्मयज्ञ, देवताओंके सम्वर्द्धनके लिये देवयज्ञ, नित्य—नैमित्तिक पितरोंके सम्वर्द्धनके लिये पितृयज्ञ, जीवमात्रकी तृप्तिके लिये भूतयज्ञ और मनुष्यमात्रकी तृप्तिके लिये नृयज्ञ है। अतिथि सत्कारके द्वारा नृयज्ञका साधन होता है, इसी कारण इसकी इतनी महिमा है। घर पर आये हुए मनुष्यमात्रका अतिश्रद्धापूर्वक सत्कार करनाही नृयज्ञ है ॥ ११ ॥

सकता हूं ॥ १४ ॥ जो सेवकगण हमारी प्रसन्नता और मेरे द्वारा दिए हुए धन भोजनादि-से संतुष्ट हमारे अनुगत थे वे आज अवश्य ही अन्य राजाओंकी सेवा कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हमारे मन्त्री आदि अतिअपरिमित व्यय करनेवाले हैं। इस कारण नियमित व्यय करके अतिदुःखसे सञ्चय किये हुए हमारे धनागारको नष्ट कर डालेंगे ॥ १६ ॥ राजा सुरथ इस प्रकार नाना प्रकारसे चिन्ता कर रहे थे; ऐसे समयमें उस मेधस मुनिके आश्रमके निकट एक वैश्यजातीय व्यक्तिको देखा ॥ १७ ॥ तब राजा सुरथने उस वैश्यसे पूछा, (महाशय !) आप कौन हैं ? किसलिये यहां आये हैं ? आप चिन्तित एवं शोकाकुल क्यों दिखाई देते हैं ? ॥ १८ ॥ वे वैश्य राजाके उस प्रेमपूर्ण वचनको सुनकर विनयावनत हो उत्तर देने लगे ॥ १९ ॥ वैश्यने कहा, मैं समाधि नामक वैश्य हूं। धनवान् कुलमें मेरा जन्म हुआ था, किन्तु असाधुवृत्तिसम्पन्न पुत्रकलत्रादिकोंने धन लोभसे लुब्ध होकर मुझको निकाल दिया है ॥ २० ॥ २१ ॥ पुत्रकलत्रादिकोंने मेरा धन छीन लिया; मैं पुत्र कलत्रविहीन एवं सुहृद् मित्रोंसे परित्यक्त होकर धनके लिये अतिदुःखी होकर वनमें चला आया हूं ॥ २२ ॥ अब मैं यहां रहकर पुत्र-कलत्र एवं बान्धवोंका कुशलाकुशल समाचार कुछ नहीं जान सकता हूं ॥ २३ ॥ हमारे पुत्रादि इस समय सब सकुशल हैं, अथवा अकुशल हैं, वे सद्वृत्तिपरायण बन गये हैं अथवा दुर्वृत्तिपरायण बन गये सो भी नहीं जान सकता हूं ॥ २४ ॥ राजाने कहा, आप जिन धनलुब्ध पुत्रभार्य्यादिके द्वारा निकाल दिये गये हैं, उन्हीं लोगोंके प्रति आपका मन पुनः स्नेहयुक्त क्यों है ? ॥२५॥२६॥ वैश्य बोले,—आपने जो मेरे सम्बन्धमें कहा है, वह बिलकुल सत्य है, किन्तु मैं क्या करूं। मेरा चित्त किसी प्रकार भी निष्ठुर नहीं होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिन्होंके धनके लोभसे पितृस्नेह एवं पतिस्वजनप्रेमको परित्याग करके मुझको निकाल दिया है, उन्हीं लोगोंके लिये हमारा अन्तःकरण प्रेमप्रवण हो रहा है ॥ २९ ॥ हे महामते राजन् ! आपने जो कहा, वह मैंने समझ लिया है, तथापि न जाने क्यों हमारा चित्त उन गुण-रहित बन्धु-बान्धवोंके प्रति प्रेमासक्त हो रहा है, इसका कारण समझमें नहीं आता है ॥ ३० ॥ उन्हीं लोगोंके लिये निःश्वास निर्गत होता है, एवं दौर्मनस्य उत्पन्न होता है; उन प्रेमरहित बान्धवोंके प्रति हमारा चित्त किसी प्रकार ममताहीन नहीं होता है, अतएव मैं क्या करूं ? ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेय बोले,—हे विप्र ! इसी प्रकार कथनोपकथनके अनन्तर समाधिनामक वैश्य और वे नरपतिश्रेष्ठ सुरथ मिलकर मेधस् मुनिके निकट गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे दोनों ही यथा नियम यथायोग्य मुनिके साथ सम्भाषण करके बैठनेके अनन्तर नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे ॥ ३४ ॥ राजा बोले,—भगवन् ! आपसे मैं एक बात पूछना चाहता हूं जो मेरे चित्तके वशमें न होनेसे मनके दुःखकी कारण हो

रही है, यह क्या है ? सो आप बतलाइए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मूर्ख लोग जैसे विषयासक्त होकर मुग्ध होते हैं, मैं ज्ञानवान् होकर भी उसी प्रकार राज्य एवं सब राज्याङ्गोंमें ममत्वाकृष्ट हो रहा हूं, इसका क्या कारण है ? ॥ ३७ ॥ फिर देखिये, मेरे समान यह वैश्य भी पुत्रके द्वारा निकाल दिये जाने पर एवं सेवकों और स्वजनोंके द्वारा परित्यक्त किये जानेपर भी उन्हीं लोगोंके लिये अत्यन्त प्रेमासक्त हो रहा है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार यह वैश्य और मैं विषयका दोष देख कर भी ममत्व द्वारा आकृष्टचेता हो अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं। हे महाभाग ! जो अज्ञानी हैं, उनका मुग्ध होना सम्भव है, हम लोग ज्ञानी होकर भी मोहित हो रहे हैं इसका कारण क्या है सो आप बतलाइये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ऋषि बोले,—सब प्राणिमात्रको ही विषय सम्बन्धका ज्ञान है। हे महाभाग ! विषय भी पृथक् पृथक् होते हैं। देखो, कितने ही प्राणी (उलूकादि) दिनको देख नहीं सकते, कितने ही प्राणी (काकादि) रात्रिमें अन्धे हो जाते हैं, कुछ प्राणी (किञ्चुलुकादि) दिन और रातमें भी अन्धे होते हैं और कितने प्राणी (मार्जार-बिल्ली आदि) दिनमें और रात्रिमें तुल्य दृष्टिसम्पन्न होते हैं, यानी समानरूपसे देख सकते हैं ॥ ४१-४३ ॥ तुम जो अपनेको ज्ञानी समझते हो, उस प्रकार ज्ञानी अर्थात् विषय राज्यके ज्ञानसम्पन्न मनुष्यमात्र ही होते हैं, यह बात सत्य है। केवल मनुष्य ही क्यों, पशु, पक्षी, मृगादि भी विषयोंके ज्ञान प्राप्त करते हैं, अतएव उनको भी ज्ञानी कहा जा सकता है ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार मनुष्यों-को जिस तरहका ज्ञान है, मृग पक्षियोंको भी वही ज्ञान है, पुनः मृग-पक्षियोंको जो ज्ञान है, मनुष्योंको भी वह ज्ञान है और आहार-विहारादि बाह्य विषयोंमें मनुष्य और पशुपक्षी आदि सभीको एक ही प्रकारका ज्ञान है। तौ भी यह देखो, ज्ञान रहते हुए भी पक्षीगण स्वयं क्षुधातुर होकर भी मोहवशात् बड़े प्रेमसे तण्डुलादिके कण सब अपने बच्चोंके चञ्चुमें दे देते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे मनुष्य श्रेष्ठ ! क्या तुम देख नहीं रहे हो कि, मनुष्य-गण अन्तिम कालमें प्रत्युपकारके लोभसे पुत्रादिकोंके प्रति सर्वदा स्नेहयुक्त हुआ करते हैं ॥ ४७ ॥ किन्तु जगत्की स्थिति करनेवाले परमेश्वरकी मायाके प्रभावसे ही प्राणिगण

टीका—वर्णधर्म प्रवृत्तिरोधक है और आश्रमधर्म निवृत्ति पोषक है। चार वर्णोंमेंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ये ही द्विज कहाते हैं। और इनका वेद और वैदिक-कर्ममें अधिकार भी है। ब्राह्मण; क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीन व्यक्तिको इस प्रकारसे कर्मविपाक द्वारा एक ही देश कालमें लाकर कर्मनियन्त्री श्रीजगदम्बाने तीनोंका अधिकार तथा क्षत्रिय और वैश्यमें किस प्रकार भय और मोह आदि उत्पन्न हो सकता है, इत्यादि दिखाकर अधिकार निर्णयार्थ वह समाधिगम्य प्रसंग दिखाया है ॥ ३४ ॥

टीका—अहंकारजनित ज्ञानाभिमान जो आसुरी वृत्ति है, उसमें और यथार्थ तत्त्वज्ञानमें कितना भेद है, सो ही मुनिने अपने उपदेश द्वारा दिखाया है ॥ ४४ ॥

ममताके आवर्त्तमें फंस कर मोहके गड्ढेमें गिरते हैं ॥ ४८ ॥ उसी महामायासे यह जगत् मोहित हो रहा है, इस विषयमें विस्मय मत करो,—क्योंकि औरोंकी तो बात ही क्या है, जो जगत्पति भगवान् हैं, वे भी इस महामायाके वशमें हुए थे। वे सब इन्द्रियोंकी नियन्त्री हैं, इनका ऐश्वर्य्य अचिन्त्य है। वे ज्ञानियोंके भी चित्तको बलात् आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं ॥ ४९—५० ॥ इन्हींके द्वारा सब चराचर (स्थावर एवं अस्थावर) जगत्की उत्पत्ति होती है, वे ही प्रसन्न होकर जीवोंको मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ५१ ॥ वे ही महामाया जीवोंके बन्धनका हेतु हैं, मुक्तिका भी कारण हैं। वे ही स्वरूपप्रकाशिनी परमा विद्या हैं, वे ब्रह्मादिकोंकी भी ईश्वरी हैं ॥५२॥ राजा बोले,–भगवन्! आप जिनको महामाया कह रहे हैं, वे देवी कौन हैं? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? उनका कार्य्य क्या है? हे ज्ञानिश्रेष्ठ! उन देवीका स्वभाव कैसा है, अथवा नित्या या अनित्या हैं, ये सब आपसे मैं सुनना चाहता हूं ॥ ५३—५४—५५ ॥ ऋषि कहने लगे,—वे नित्या हैं, जगद्रूपिणी हैं इन्हींके द्वारा सब परिव्याप्त है; यद्यपि उनकी उत्पत्ति हम लोगोंकी तरह नहीं होती है तथापि उनकी उत्पत्ति बहु प्रकारसे होती है सो तुम हमारे निकट श्रवण करो ॥ ५६—५७ ॥ देवताओंकी कार्य्य सिद्धिके लिये वे जब आविर्भूत होती हैं, तभी लोग नित्या होने पर भी उनको "उत्पन्ना" कहते हैं ॥ ५८ ॥ (अबतक महामायाके स्वरूपके सम्बन्धमें कहा, अब उनके आविर्भावके सम्बन्धमें पूर्वकालीन इतिहासका वर्णन करता हूं सुनो) भगवान् प्रभु विष्णु जगत् अर्थात् सृष्टिकी एकार्णव अवस्थामें अनन्तशय्याका आश्रय करके

टीका—त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति अपने तमोगुणके प्रभावसे अविद्यारूप धारण करके जीवको बन्धनदशामें पहुंचाती है। वे ही सत्त्वगुणमयी होकर विद्यारूप धारण करती हुई जीवको मुक्तिपदमें पहुंचा देती हैं। वे ही कारणशक्तिरूपिणी होकर ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपी त्रिदेवको प्रत्येक ब्रह्माण्डके सृष्टि-स्थिति-लयके लिये प्रसव करती हैं ॥ ५२ ॥

टीका—ब्रह्मरूपिणी ब्रह्मशक्ति क्या है, कैसे वे स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय रूपको प्राप्त करती हैं, उन रूपोंका विज्ञान क्या है, सो पहले ही भलीभांति कहा गया है। वे सब उनके नित्य-लीलामय-भाव हैं। उनका नैमित्तिकरूप समय समय पर जगत् और भक्तके कल्याणार्थ सूक्ष्म जगत् और स्थूल-जगत्में किसी निमित्तके अवलम्बनसे प्रकट होता है। इसी सप्तशती गीतामें दोनोंका उदाहरण मिलेगा। भक्तोंके लिये आविर्भाव, यथा—राजा सुरथ और वैश्य समाधिके लिये हुआ था, एवं जगत्के लिये आविर्भाव यथाः—तीन प्रधान चरित्र जिससे यह सप्तशती गीता पूर्ण है। अर्थात् देवलोकमें ये ही तीनों रूप प्रथम मधुकैटभ वधके समय, दूसरा महिषासुर वधके समय और तीसरा शुम्भ निशुम्भके वधके समय प्रकट हुआ था। वह अरूपिणी, वाङ्-मनोबुद्धिसे अगोचरा सर्वव्यापक ब्रह्मशक्ति भक्तोंके कल्याणके निमित्त अथवा समष्टिरूपसे जगत् कल्याणके निमित्त अलौकिक दिव्य रूपमें प्रकट हुआ करती हैं। सर्वश-क्तिमयीके लिये असम्भव कुछ भी नहीं है ॥ ५७ ॥

योगनिद्रामें निद्रित थे; उस समय मधु एवं कैटभ नामसे प्रसिद्ध भयानक दो असुर विष्णुके कर्णमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हुए थे; तब भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें अवस्थित प्रजापति ब्रह्मा भयानक दोनों असुरोंको देखकर एवं विष्णुको सोते हुए देखकर एकाग्रचित्त हो भगवान्‌को जगानेके लिये हरिनेत्रको आश्रय करने वाली, जगत्कर्त्री, स्थिति-संहारकारिणी, चैतन्यरूपी विष्णुकी निद्रारूपा भगवती, योग निद्राकी स्तुति करने लगे ॥ ५६—६४ ॥ ब्रह्मा बोले,—तुम देवहविर्दानमन्त्ररूपा स्वाहा हो,

टीका—सृष्टिके चार भेद हैं, यथा—पहली अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मावस्थासे जब सगुण भावकी उत्पत्ति होकर सगुण ब्रह्मसे ब्रह्माण्डगोलककी उत्पत्ति होती है, वह हिरण्यगर्भकी सृष्टि कहाती है। दूसरी जब पिण्डसृष्टि प्रारम्भ होती है, जिसके कारण भगवान् ब्रह्मा हैं, वह ब्राह्मीसृष्टि कहाती है। तीसरी दश प्रजापतिके संकल्पसे जो विचित्र सृष्टि होती है, उसको मानससृष्टि कहते हैं। और हर समय स्त्री पुरुषके सम्बन्धसे जो सृष्टि होती है, वह मैथुनी सृष्टि कहाती है यह चौथी है। प्रकृत विषय ब्राह्मीसृष्टिके समयका है। एक ब्रह्माण्डको उत्पन्न करने वाले जो समष्टि संस्कारपुञ्ज हैं, वही जगत्‌की एकार्णव अवस्था है। शास्त्रोंमें कहीं कहीं इसीको कारण-वारि भी कहा है। अनन्तशय्या अनन्त महाकाशबोधक है। आकाश-तत्त्वसे परे ही ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव होता है। वही "तद् विष्णोः परमं पदम्" श्रुति प्रतिपाद्यभाव है। उस अवस्थाका बोधक जो सत्त्वगुण है, उसका अधिष्ठाता देव भगवान् विष्णु हैं। यही श्रीविष्णु भगवान्‌का आध्यात्मिक और आधिदैविक रूपका विज्ञान है। समाधिगम्य सब विषय त्रिभावात्मक होते हैं; इसी कारण वेद और वेद-सम्मत शास्त्रोंके सब वर्णनके तीन तरहके अर्थ हुआ करते हैं। उसी नियमके अनुसार वेदके सब मन्त्र और भगवद्गीता तथा सप्तशतीगीता आदि शास्त्र अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनों भावोंसे पूर्ण हैं। श्रीभगवान् विष्णुका अध्यात्मरूप व्यापक आकाशसे परे चिन्मय स्वरूप है। जैसा कि ऊपर कहा गया है। यावत् सत्त्वगुण व्यापी अधिष्ठाता देवभाव ही उनका अधिदैव-स्वरूप है और शास्त्रोक्त जो ध्यानमय रूप है अर्थात् जिस रूपमें वे भक्तको दर्शन दिया करते हैं वह उनका अधिभूत रूप है। कोई कोई अध्यात्म रूपका ही वर्णन करते हैं, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनका अन्य दोनों रूप नहीं है। वस्तुतः तीनों रूपही सत्यमूलक हैं। ब्राह्मी सृष्टि प्रारम्भ होते समय रजोगुणका प्राधान्य होनेके कारण ब्रह्माजी ही जाग्रत रहते हैं, क्योंकि वे रजोगुणके अधिष्ठाता देव हैं। उस समय कभी कभी भगवान् विष्णुका योगनिद्रामें निद्रित होना भी सम्भव है, क्योंकि रजोगुणके प्राधान्यमें सत्त्व-गुण गौण रहता है। भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म रूप चिदाकाशावच्छिन्न एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण है। इस कारण समष्टि अन्तःकरण चतुष्टय (मन आदि) बोधक उनके चार मुखका वर्णन पुराणोंमें पाया जाता है। यावत् रजोगुणका अभिमानी देवता ही उनका अधिदैव स्वरूप है। सनातनधर्मके दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार समष्टि कर्म विभाग बिना दैवी सहायताके संचालित नहीं हो सकता है। इसी विज्ञानके अनुसार यावत् स्थावर नदी, पर्वतादि और जंगम उद्भिज्जादि सहज जीव पिण्डोंके चालक स्वतन्त्र स्वतन्त्र देवता माने गये हैं। इसी कारण शास्त्रोंमें तीनसे तैतीसकोटि देवताओंका वर्णन पाया जाता है। श्रीभगवान् ब्रह्माका अधिभूतरूप वही है, जिस रूपमें वे भक्तोंको दर्शन देते हैं और ब्रह्म-लोकमें प्रतिष्ठित हैं। जगत्‌की सृष्टिका कार्य्य अवश्य ही समाधियुक्त होकर भगवान् ब्रह्मा करते हैं। उस समाधियुक्त भावके दो शत्रु हैं। पहली, सृष्टिकी प्रथम अवस्थामें एकमात्र नादमें आनन्द मोहित

तुम पितृहविर्दानकी मन्त्ररूपा स्वधा हो, तुम वषट्कार-यज्ञ एवं उदात्त अनुदात्त आदि स्वरूपा हो। हे नित्ये! तुम वर्णमालाओंमें मात्रास्वरूपा हो एवं ह्रस्वदीर्घ-प्लुतरूपा हो, विना स्वरकी सहायतासे जिसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जा सकता है, वह व्यंजनरूपाभी तुम हो। तुमही सन्ध्यारूपा हो, तुमही गायत्री रूपा हो, हे देवि! तुम्हीं सबकी जननी हो ॥६५—६७॥

हे देवि! तुम्ही सारे जगत्का सर्जन करती हो; पालन करती हो, धारण करती हो, पुनः तुम्हीं प्रलय कालमें उसका नाश करती हो। इस कारण हे जगन्मये! तुम ही सृष्टि कालमें सृज्यवस्तुरूपा एवं सृष्टिक्रियारूपा हो, पालन एवं संहारमें भी तुमही यथाक्रम पाल्य, पालन, संहार्य्य और संहाररूपा हो ॥ ६८-६९-७०-७१॥ आपही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहरूपा हो। महादेवी और महासुरीरूपा भी आपही हो ॥ ७२ ॥ तुमही त्रिगुण प्रकाशिनी सबकी प्रकृति हो, कालरात्रि (प्रलय) महारात्रि (मृत्यु) एवं भयानक मोहरात्रि (निद्रा) भी तुम्हीं हो ॥ ७३ ॥ तुमही लक्ष्मी-

---

होकर तमोगुणमें पहुंचना है। इसी योगविघ्न द्वारा जड़ समाधिकी उत्पत्ति योगशास्त्र अनुमोदित है। वह जड़समाधि तमोगुणसे होती है और योग-विघ्नकारक है। यही मधु नामक असुरका अध्यात्मरूप है। यह नादके सम्बन्धसे अन्तर्मुख भाव है। दूसरी अवस्था कैटभकी है, वह नादसे बहिर्मुख होकर लक्ष्यच्युत होना और निर्विकल्पभावको छोड़कर सविकल्प भावकी प्राप्ति होना है। ये दोनों ही तम परिणामको उत्पन्न करते हैं और समाधिभङ्ग करते हैं। नादके अवलम्बनसे ही दोनों प्रकट होते हैं। नादका सम्बन्ध शब्द और आकाशसे है। यही भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधुकैटभ नामक असुरोंकी उत्पत्तिका रहस्य विज्ञान सिद्ध है। योगविघ्नकारी इन दोनों वृत्तियोंके आसुरी दोनों अधिष्ठाता अवश्य माननीय हैं, ये ही दोनों मधु और कैटभके अधिदैव रूप हैं। उन्नत योगिगण इनका अनुभव करते हैं। पुराणान्तरोंमें लिखा है कि, भगवान् विष्णुने जब मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको मार डाला, तब उनके शवोंके मेद परिणामसे पृथिवी बनी और मेदिनी कहलाई। यही उनके अधिभूत रूप समझनेका रहस्य है। सृष्टि अवस्थामें प्रकृत विघ्नका नाश होने पर एक अद्वितीय साम्यावस्था प्राप्त नाद जब वैषम्यावस्थाको प्राप्त हुआ तो प्रथम शब्दमयी सृष्टि वेदादि तदनन्तर यावत् पार्थिव सृष्टि उत्पन्न हुई। विघ्न दूर हुआ और भगवान् ब्रह्मा अपने कर्तव्य कार्य्यमें सफल काम हुए। सर्वशक्तिमयी महामायाकी कृपाके विना भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग नहीं हो सकती थी और ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुकी सहायता विना भगवान् ब्रह्माका समाधिविघ्न दूर नहीं हो सकता था। जगज्जननी ब्रह्ममयी महामाया अविद्यारूपसे बुद्धिको आच्छादित किया करती हैं और वेही पुनः विद्यारूप धारण करके उस आवरणको दूर करती हुई जीवको प्रकृतिस्थ और युक्त करती हैं ॥ ६० ॥

टीका—"महा" शब्दका प्रयोग सब स्थलों पर समष्टि वाचक है। दैवी और आसुरी शक्ति, शक्तिरूपसे दोनों समान होनेसे दोनोंका नाम आया है। इस कारण शंकाका अवसर नहीं है ॥ ७२ ॥

टीका—प्रलयकी सन्धि और मृत्युकी सन्धि और निद्राकी सन्धि ये तीनों ब्रह्ममयी महाशक्तिकी शक्तिरूपसे प्रबल विभूतियां हैं। उच्चसे उच्च व्यक्ति भी समानरूपसे इनके अधीन होता है ॥ ७३ ॥

रूपा हो, तुमही निखिल ऐश्वर्य्यशालिनी ईश्वरी हो, तुम ही ह्री (असत् कार्य्यमें संकोच) हो, तुम बोधलक्षणा बुद्धिरूपा हो ॥७४॥ तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति एवं क्षान्ति—क्षमा-रूपिणी हो ॥७५॥ तुम खङ्ग, शूल, गदा, चक्र, शङ्ख, धनु, बाण, भुशुण्डी एवं परिघधारिणी हो ॥ ७६ ॥ तुम सौम्या हो, सौम्यतरा हो एवं निखिलसौंदर्य्योंकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दरी हो। तुम ब्रह्मादिकी भी नियन्त्री हो, तुम सृष्टिसे परे स्थित उसकी आधारभूता हो, इस कारण 'परमा' हो, तुम्हीं अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हो इसी कारण तुमको 'परमा' कहते हैं ॥ ७७ ॥ हे सर्वमयी देवि ! इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें जहां कहीं जो कुछ सत् असत् पदार्थ हैं, उन सबोंकी शक्तिभूता तुम ही हो, अतएव तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकता हूं ? ॥ ७८ ॥ जो जगत्का स्रष्टा, पाता एवं संहर्त्ता हैं, वे भी जब तुम्हारे द्वारा निद्रित होते हैं, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? ॥ ७९ ॥ विष्णु, मैं (ब्रह्मा) एवं शिव सबोंने तुम्हारे द्वारा ही शरीर ग्रहण किया है, अतएव तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन शक्तिमान् हो सकता है ? ॥ ८० ॥ हे स्तुता देवि ! तुम अपने इस प्रकार उदार प्रभावके द्वारा ये मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको जो अतीव दुर्धर्ष हैं मोहित करो ॥ ८१ ॥ और जगत्स्वामी अच्युत जागृत हो एवं इन दोनों महा असुरोंको मारनेके लिये इनकी शक्ति विस्फुरित हो ॥ ८२ ॥ ऋषिबोले,—उस समय ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करने पर तामसी देवी विष्णुका निद्राभङ्ग और मधुकैटभ वधके लिये विष्णुके नेत्र, मुखमण्डल, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षःस्थलसे निकल कर स्वयम्भू ब्रह्माकी

टीका—नव आयुधोंका वर्णन शक्तिकी पूर्णताका प्रकाशक है। रक्षाकार्य्यमें शक्तिकी पूर्णताकी आवश्यकता है और उसमें अभयमुद्राका होना स्वाभाविक होनेसे दशवें हाथमें अभयमुद्रा है ऐसा समझना चाहिये ॥ ७६ ॥

टीका—'सौम्य' शब्दका अर्थ आनन्दप्रद, शान्तिप्रद और अमृतप्रद है। सुतरां जो सौन्दर्य्य ब्रह्मानन्दप्रद हो, स्थिर शान्तिप्रद हो और मुक्तिके अभिमुख करे, वही सौन्दर्य्य इन तीनों पदोंसे लक्षित होता है। इस भावको तीन श्रेणीमें विभक्त करनेका तात्पर्य अतिरहस्य पूर्ण है, क्योंकि, समाधिभाषाके सभी शब्द त्रिविध अर्थ बोधक होंगे, इसमें सन्देह नहीं। जगदम्बाके आधिभौतिकरूपकी सुन्दरता, आधिदैविकरूपकी सुन्दरता एवं आध्यात्मिकरूपकी सुन्दरता यथाक्रम एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी उन्नत है, उन्हीं तीनोंको ये पद लक्ष्य कराते हैं ॥ ७७ ॥

टीका—वेदादि शास्त्रोंमें जैसे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी आयुका हिसाब अलग अलग पाया जाता है, उसी प्रकार तीनोंकी रात्रिका भी अगल अलग वर्णन पाया जाता है। तथा ब्रह्मामें ब्राह्मी-शक्ति, विष्णुमें वैष्णवी शक्ति एवं शिवमें शैवी शक्ति जो कुछ है, सो उसी महाशक्तिका अंश है ॥ ७९-८० ॥

टीका—त्रिगुणमयी महाशक्तिके तीनों गुण ही अपने अपने अधिकारके अनुसार पूर्ण शक्ति विशिष्ट

दृष्टिके सामने आविर्भूत हुई ॥ ८३-८६ ॥ उस निद्रारूपिणी भगवतीसे मुक्त होकर जगत्-स्वामी भगवान् विष्णु अनन्तशय्यासे उठे एवं उठते ही दोनों असुरोंको देखा ॥ ८७ ॥ अनन्तर अत्यन्त बलशाली एवं पराक्रमी क्रोधसे लाल नेत्र दुरात्मा दुष्टात्मा मधु कैटभ ब्रह्माको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुए हैं, सो भी देखा ॥ ८८ ॥ अनन्तर जगत्व्यापक भगवान् हरिने उठकर पांच हज़ार वर्ष तक उन असुरोंके साथ बाहुयुद्ध किया था ॥८९॥ उस समय अतिबलसे उन्मत्त दोनों असुरोंने महामायासे विमोहित होकर भगवान् विष्णुको कहा कि, तुम हमलोगोंसे वर मांगो ॥ ९० ॥ ९१ ॥ भगवान्ने कहा,—तुम लोग यदि मुझसे प्रसन्न हुए हो, तो तुमलोग मेरे वध्य होजाओ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ इस युद्धक्षेत्रमें अन्य किसी वरका प्रयोजन नहीं है, तुमलोग हमारे वध्य हो, यही हमारा वरणीय है ॥ ९४ ॥ ऋषिने कहा कि, इस प्रकार दोनों असुरोंने वंचित हो सारा जगत् जलमग्न देखकर कमलनयन भगवान् विष्णुको कहा कि जो स्थान जलमग्न नहीं है, ऐसे स्थानमें हमलोगोंका वध करो ॥ ९५-९७-९८ ॥ ऋषिबोले,—तब शंख-चक्र-गदाधारी भगवान्ने "ऐसाही होगा" ऐसा कह कर उन दोनोंका मस्तक अपने जांघ पर रख चक्रसे काट डाला ॥ ९९—१०१ ॥ इस प्रकार ब्रह्माके स्तुति करने पर देवी आविर्भूत हुई थीं ॥ १०२ ॥ उस देवी महामायाका प्रभाव मैं पुनः तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १०३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सावर्णि मन्वन्तर देवीमाहात्म्यका मधुकैटभवध नामक एक्यासीवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ अध्याय।

ऋषिबोले,—जिस समय महिषासुर असुरोंके एवं पुरन्दर देवताओंके अधिपति हुए थे, उस समय पूरे सौ वर्ष तक देवासुर नामक युद्ध हुआ था ॥ १—२ ॥ उस युद्धमें महावीर्य्यशाली असुरोंके द्वारा देवसेनाके पराजित होने पर देवताओंको हराकर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन गया ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवतागण पराजित होकर प्रजापति ब्रह्माको

हैं, यह स्तुति ब्रह्ममयी की तामसिक महाशक्तिको लक्ष्य करके ही की गई है, जिसकी साक्षात् विभूति निद्रा है जो यावत् स्थावर जंगमादि सृष्टिसे लेकर ब्रह्मादि त्रिमूर्त्ति तकको अपने बश में करती है ॥ ८४ ॥

टीका—देवासुर संग्रामका अधिदैव रहस्य समझनेके लिये सूक्ष्म लोकोंकी श्रृंखला और वहांकी शासन-प्रणाली समझने योग्य है। ऊर्द्ध सप्त लोकोंमेंसे भूलोक और उसके अवान्तर चार लोकोंका शासक धर्मराज यम हैं जिनकी राजधानी पितृलोकमें है। इस मृत्युलोकमें भी उनका बहुत कुछ सम्बन्ध विद्यमान

अग्रवर्त्ती (नेता) बनाकर महादेव एवं विष्णुके निकट गये ॥ ४ ॥ और महिषासुर देवताओंको पराजित करके उनसे कैसा व्यवहार करता है, सो यथायथ देवताओंने कहा ॥ ५ ॥ महिषासुरने सूर्य्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण, एवं अन्यान्य सब देवताओंके अधिकारोंको स्वायत्त कर लिया है ॥ ६ ॥ सभी देवता उस दुरात्मा महिषासुरके द्वारा स्वर्गसे विताड़ित होकर मनुष्यकी तरह मृत्युलोकमें विचरण करते हैं ॥ ७ ॥ हमलोगोंने यहांतक उस असुरकी दुष्टता आप लोगोंको सुनाई, हमलोग आपके शरणागत हैं अतएव उस असुरके वधके विषयमें विचार करें ॥ ८ ॥ उस समय भगवान् विष्णु एवं शिव उन देवताओंकी बात सुनकर क्रुद्ध हो गये, तब उन दोनोंका मुखमण्डल भ्रूकुटिद्वारा कुटिल हो गया ॥ ९ ॥ तदनन्तर अत्यन्त क्रोध पूर्ण विष्णु ब्रह्मा, और शंकर भगवान्के मुखमण्डलसे महत्तेज निकलने लगा ॥१०॥ उस समय इन्द्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बहुत तेज निकल कर सब एकत्रित हुआ ॥ ११ ॥ उस तेजराशिकी शिखा द्वारा परिव्याप्त दिक् मण्डलको देवताओंने ज्वलन्त पर्वतके समान देखा ॥ १२ ॥ तदनन्तर वहां सब देवताओंके देहसे उत्पन्न वह अनुपम तेजोराशि, सम्मिलित होकर नारी रूपमें परिणत हुई और उनकी कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो गया, ॥ १३ ॥ शम्भुके तेज द्वारा उस नारी देहका मुखमण्डल बना, यमके

है। देवराज इन्द्रकी राजधानी तृतीय लोक स्वर्गलोकमें है। यहींतक असुर लोग जा सकते हैं। आगेके एक दो लोकोंमें यद्यपि इन्द्रदेवका कुछ आधिपत्य विद्यमान रहता है, किन्तु उनसे ऊपरके लोकोंमें उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। क्योंकि, जिस प्रकार इस मृत्युलोकमें ज्ञानी अथवा तपस्वी व्यक्ति पर राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार अति ऊर्द्ध लोकोंमें इन्द्रदेवके शासनकी आवश्यकता नहीं रहती है। षष्ठलोक उपासनाका लोक है तथा सप्तम लोक ज्ञानमय लोक है। वे दोनों लोक देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। असुरराजका आधिपत्य नीचेके सब लोकोंपर रहता है। क्योंकि आसुरी प्रजा इन्द्रिय लोलुप होनेसे वहांके सब लोकों पर राजानुशासनकी आवश्यकता रहती है। देवतागण अपने अधिकारमें ही तृप्त रहते हैं, क्योंकि, वे सत्त्वगुणावलम्बी हैं। असुरगण सदा दैव अधिकार छीननेके लिये व्यग्र रहते हैं। यही कारण है कि, मृत्युलोकमें भी दैवी शक्ति और आसुरी शक्तिका संघर्ष सर्वदा देखनेमें आता है। जब कभी असुरराज इन्द्रदेवके अधिकारमें प्रवेश करते हैं, तब वह युद्ध प्रबल होता है और कभी कभी तपः क्षय होनेसे देवराज हार भी जाते हैं तथा वे अपनी राजधानी छोड़कर उच्च लोकोंमें शरण लेते हैं। जिस कल्पमें महिषासुर असुरराज हुआ था, उस समयकी यह समाधि द्वारा प्राप्त गाथा है ॥ ४ ॥

टीका—यह चक्रका रहस्य है तन्त्रादि शास्त्रोंमें जो उपासना चक्रोंका वर्णन आता है, वह सब इसी अलौकिक विज्ञानको अवलम्बन करके किया गया है। समवेत भक्तवृन्द एकही देशकालमें उपस्थित होकर अनन्यभक्ति,एक ही धारणा,एक ही ध्यानसे युक्त होकर जब समाधिस्थ होते हैं, तब उपासना शास्त्रमें उसको चक्र कहते हैं। यदि चक्र सिद्ध हो, तो उस चक्रमें उस देवका आविर्भाव अवश्य होता है, जैसा कि देवताओंके इस ब्रह्मचक्रमें हुआ था ॥ १३ ॥

तेजके द्वारा एवं विष्णुके तेज द्वारा यथाक्रम केश और बाहु उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण और पृथिवीके तेज द्वारा यथाक्रम स्तनद्वय, मध्यभाग, जङ्घा-ऊरुदेश एवं नितम्बदेश निर्मित हुए ॥१५॥ ब्रह्मा, सूर्य्य, अष्टवसु, तथा कुबेरके तेज द्वारा यथाक्रम चरणद्वय उनकी अंगुलियां, हाथकी अंगुलियां एवं नासिका उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ प्रजापतिके तेज द्वारा देवीके दांत समूह उत्पन्न हुए एवं अग्निके तेज द्वारा तीनों नेत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ सन्ध्याके तेज द्वारा भ्रूयुगल, वायुके तेज द्वारा दोनों कान तथा अन्यान्य देवताओंके तेज समूहोंके द्वारा शिवा देवीकी उत्पत्ति हुई ॥ १८ ॥ तदनन्तर महिषासुरके द्वारा पीड़ित देवतागण समस्त देवताओंके तेजसे उत्पन्न उस स्त्रीरूपको देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥ उस समय पिनाकपाणि महादेवने अपने शूलास्त्रसे एक दूसरा शूल निकाल कर उनको (भगवतीको) दिया। कृष्ण-विष्णुने भी अपने चक्रसे एक दूसरा चक्र निकाल कर दिया ॥ २० ॥ वरुणने शङ्ख, हुताशनने शक्ति, वायुने धनु, एवं बाण पूर्ण तूणीर प्रदान किया ॥ २१ ॥ सहस्रनयन देवाधिपति इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र तथा ऐरावत हाथीसे घण्टा लेकर भगवतीको प्रदान किया ॥ २२ ॥ यमने कालदण्डसे दण्ड उत्पन्नकरके प्रदान किया तथा वरुणने पाश, प्रजापति ब्रह्माने अक्षमाला एवं कमण्डलु प्रदान किया ॥ २३ ॥ दिवाकर (सूर्य्यने) सब रोमकूपोंमें अपनी किरण, कालने खड्ग तथा अतिनिर्मल चर्म उनको प्रदान कियो ॥ २४ ॥ क्षीरोद समुद्रने निर्मल हार, अविनश्वर वस्त्रद्वय, अतिमनोहर चूड़ामणि, कुण्डल, वलय, शुभ्र अर्द्धचन्द्र, सब बाहुमें केयूर, अतिनिर्मल नूपुर, अतिउत्तम कण्ठाभरण और सब अङ्गुलियोंमें अंगूठियां प्रदान की ॥२५-२७ ॥ विश्वकर्माने अति निर्मल कुठार, अन्यान्य नाना प्रकारके अस्त्र एवं अभेद्य कवच अर्पण किया ॥२८॥ जलनिधि समुद्रने शिरमें एवं वक्षःस्थलमें अम्लान कमलकी माला तथा अतिसुन्दर कमल प्रदान किया ॥ २९ ॥ हिमालयने सिंह, विविध प्रकारका रत्न एवं धनपति कुबेरने सुरापूर्ण पानपत्र प्रदान किया ॥ ३० ॥ जिन्होंने इस पृथिवीको धारणकर रक्खा है, उन सर्व नागाधिपति अनन्त नागने महारत्नसुशोभित नागहार प्रदान किया ॥ ३१ ॥ तब अन्यान्य देवताओंने भी उनको नाना प्रकारके भूषण एवं अस्त्रादि द्वारा सम्मानित किया। तथा देवी वारम्वार अट्टहास द्वारा महाध्वनि करने लगीं

टीका—पहले चरित्रमें ब्रह्ममयीके तमोमयी महाशक्तिरूपका वर्णन आचुका है। अब इस चरित्र द्वारा उस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-प्रसविनी विश्वजननी रजोगुणमयी महाशक्तिके रूप और विलासका वर्णन किया गया है। जगदम्बाका जो नित्यस्थित अध्यात्मरूप है, उसका कुछ दिग्दर्शन पहले आचुका है। वे शक्तिरूपिणी, ब्रह्ममयी साक्षात् ब्रह्मरूपा, निखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि-स्थिति-संहार कर्त्री होने पर भी अरूपिणी और मन-बुद्धिसे अगोचरा होने पर भी भक्तोंके कल्याणार्थ किसप्रकारसे रूपको धारण करती हैं,

॥ ३२ ॥ देवीके अतिभयानक, अपरिमित एवं महान् नादसे नभोमण्डल परिव्याप्त हो गया तथा शब्दसे महान् प्रतिशब्द होने लगा ॥ ३३ ॥ देवीके उस महानादके द्वारा समस्त लोक संक्षुब्ध हो उठे, सारे समुद्र कम्पित हो उठे, पृथिवी और सारे पर्वत विचलित हो उठे ॥३४॥ देवतागण आनन्दसे सिंहवाहिनी देवीका जय जयकार करने लगे एवं मुनिगण भी विनम्रभावसे देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥ देवताओंके शत्रु असुर गण त्रिलोकको व्याकुल देख कर अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित सैन्योंको साथ लेकर युद्ध करनेका उद्योग करने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय महिषासुर क्रोधसे "आः! यह क्या हुआ?" इस प्रकार बोलता हुआ अनेक असुरोंके द्वारा परिवृत होकर देवीके शब्दको लक्ष्य करके धावित हुआ ॥ ३७ ॥ अनन्तर महिषासुरने देवीको देखा कि, इनकी कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो उठा है, चरणभारसे पृथिवी नत हो रही है एवं उनके किरीटके द्वारा गगनमण्डल परिव्याप्त हो गया है ॥ ३८ ॥ देवी सहस्र बाहुके विस्तार द्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त करके अवस्थान कर रही हैं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर देवीके साथ असुरोंका युद्ध प्रारम्भ होने पर, देवी और असुरोंके द्वारा निक्षिप्त अस्त्र-शस्त्र समूहसे दिगन्तर संन्दीपित हो उठा ॥ ४० ॥ उस समय महिषासुरका सेनापति चिक्षुर नामक महासुर एवं चामर नामक असुर, हस्ती, अश्व, रथ और पदाति सैन्य एवं अन्य असुरोंके द्वारा परिवेष्टित होकर युद्धमें प्रवृत हुए ॥ ४१ ॥ उग्र नामक महा असुर साठ हजार रथोंके द्वारा परिवृत होकर युद्धमें उद्यत हुआ एवं महाहनु नामक असुर एक कोटि रथोंसे वेष्टित

उनका अधिदैव रूप जगत्के कल्याणार्थ कैसे आविर्भूत होता है, वे भक्त मनोमन्दिरविहारिणी होने पर भी समवेत भक्तवृन्दोंके दुःखनिवारणार्थ किस प्रकार प्रकट होती हैं, उनका अधिदैवस्थूल शरीर देवताओंके समवेत तेज द्वारा कैसे बन सकता है, देवताओंके समवेत आयुधोंको ग्रहण करके वे किस प्रकारके रूपको धारण करके असुरराजको परास्त कर सूक्ष्म दैवराजमें शान्ति स्थापन करती हैं, इसीका कुछ संक्षिप्त रहस्य इस समाधिगम्य गाथामें प्रकाशित हुआ है। देवताओंके अधिभूत बल समूह दानवराजके प्रबल सेनाबलसे परास्त होने पर भी देवताओंकी समवेत अधिदैवशक्ति एकाधारमें जगदम्बाका आश्रय लेकर अजेय दानवराजको परास्त करनेमें समर्थ होगी इसमें सन्देहही क्या है। यह देवीका अधिदैव रूप है, इस कारण विशेष विशेष देवताके तेज द्वारा देवीका विशेष विशेष अङ्ग बना, और युद्ध उपस्थित होनेके कारण सब देवताओंके आयुधोंके संग्रहकी आवश्यकता हुई ॥ ३१—३२ ॥

टीका—जैसे देवपदके अधिकारियोंका वर्णन पहले आचुका है, जिन्होंने अपने अपने शस्त्रादि देवीको अर्पण किये थे; वे सब स्थायी देवपद हैं, उसी प्रकार असुरोंके जो स्थायीपद हैं, उनमेंसे कुछके नाम ये सब कहे गये हैं। ये सब अधिदैव रूप हैं। इन देवपदाधिकारियों और असुरपदाधिकारियोंके अध्यात्मरूप वृत्तिराज्यमें ज्ञानीगण अनुभव करते हैं। असुरराजका पद भी इन्द्रकी तरह स्थायी है। इसमें पदाधिकारीका परिवर्त्तन हुआ करता है। ॥ ४१ ॥

होकर युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥ उस समय असिलोमा नामक महासुर पांच कोटि तथा वाष्कल नामक असुरने साठ लाख रथके साथ उस युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करना आरम्भ किया ॥ ४३ ॥ परिवारित नामक असुर भी हजारों हजारों हाथी, घोड़े एवं कोटि रथोंको साथ लेकर युद्धमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४४ ॥ बिड़ालाक्ष नामक असुर भी पञ्चवृन्द रथ द्वारा परिवेष्टित होकर युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥ उस युद्धक्षेत्रमें अन्यान्य असुरगण भी अनेक रथ, हस्ती एवं अश्वसे सुसज्जित होकर देवीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥ उस युद्धमें महिषासुर भी असंख्य रथ, हस्ती एवं तुरगसे परिवृत हुआ ॥ ४७ ॥ उस समय कोई तोमर अस्त्र, कोई भिन्दिपाल अस्त्र, कोई शक्ति, कोई मुसल, कोई खड्ग एवं कोई कोई कुठार और पट्टिस अस्त्र द्वारा देवीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥ देवीको लक्ष्य करके कोई शक्ति अस्त्र, कोई पोश अस्त्र फेंकने लगा, कोई खड्ग प्रहारके द्वारा देवीको आहत करने लगा ॥ ४९ ॥ अनन्तर देवी चण्डिकाने अपने अस्त्र शस्त्र वर्षणके द्वारा अनायास ही असुर निक्षिप्त अस्त्र शस्त्रोंको छिन्न कर दिया ॥ ५० ॥ एवं सर्वशक्तिमयी देवी, देवता एवं ऋषियोंके द्वारा संस्तूयमाना होकर असुर-देहमें अस्त्र शस्त्र प्रहार करने लगीं। किन्तु युद्धके परिश्रमसे उनका मुखमण्डल विकृत नहीं हुआ था ॥ ५१ ॥ उस समय देवीका वाहनसिंह भी क्रोध पूर्वक स्कन्धके बालोंको हिलाता हुआ दावाग्निकी तरह सैन्योंके बीचमें विचरण करने लगा ॥ ५२ ॥ तब देवी अम्बिकाने असुरोंके साथ युद्ध करती हुई जिन निश्वासोंका परित्याग किया तत् क्षणात् उन निश्वासोंसे शतसहस्र प्रमथ सैन्य आविर्भूत हुए एवं वे सब देवीकी शक्तिसे शक्तिशाली होकर परशु, भिन्दिपाल, खड्ग और पट्टिशास्त्र लेकर असुरोंको विनाश करते हुए युद्ध करने लगे ॥५३–५४॥ उस युद्धरूपी महोत्सवमें सब गण कोई पटह, शंख, कोई मृदङ्ग बजाने लगे ॥ ५५ ॥ अनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा शक्ति एवं खड्ग द्वारा सैकड़ों महासुरोंको मार डाला, कितने ही को घण्टाध्वनि द्वारा विमोहित किया और अन्य कितने ही असुरोंको पाश द्वारा बान्धकर आकर्षण किया ॥ ५६–५७ ॥ कितने ही को तीक्ष्ण खड्ग द्वारा दो खण्ड

टीका—युद्ध प्रकृतिकी स्वाभाविक क्रिया है। धर्माधर्मका युद्ध, सामाजिक युद्ध, वृत्तिराजका युद्ध और दैव जगत्में इस प्रकारका देवासुर-संग्राम प्राकृतिक शृंखलाकी सामञ्जस्य रक्षा करनेके लिये स्वाभाविक रूपसे हुआ करता है। युद्धक्रिया न स्थूल जगत्से उठ सकती है और न सूक्ष्म दैवराज्यसे उठ सकती है। सूक्ष्म दैवीराज्यमें देवता और असुरोंको अपने अपने अधिकारमें रखकर दैवी अधिकारोंका सामञ्जस्य रखनेके लिये देवासुर-संग्राम हुआ करता है और जब असुरोंका तपःप्रभाव देवताओंके तपःप्रभावसे बढ़ जाता है, तभी महाशक्तिके आविर्भावकी आवश्यकता होती है। उसी प्रकार इस मृत्युलोकमें अवतारोंके आविर्भावकी आवश्यकता होती है ॥ ५१ ॥

एवं कितने ही को गदापातके द्वारा विमर्दित किया, तब वे सब पृथिवी पर सो गये ॥ ५८ ॥ कितने ही असुर मुशल द्वारा अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे एवं कितने ही की छाती शूलसे विदीर्ण होनेसे वे सब पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ५६ ॥ अन्य कितने ही असुरसेनापतियोंने शर समूहोंसे आच्छन्न होकर रण प्रांगणमें प्राण परित्याग किया ॥ ६० ॥ उस समय देवीने कितने ही का बाहु, कितने ही का गला एवं अन्यान्य कितने ही का शिर काट डाला एवं कितने ही का मध्य भाग काट डाला ॥ ६१ ॥ कितने ही असुर जांघ कट जानेसे पृथिवी पर गिर पड़े, देवीने अन्य कितने ही का एक एक करके बाहु, चक्षु और पैर काट डाला एवं कितने ही को दो टुकड़ा कर डाला ॥ ६२ ॥ अन्य कितने ही असुरोंका देवीके द्वारा शिर काट लिये जाने पर वे पृथिवी पर गिर पड़े और पुनः उठ खड़े हुए ॥ ६३ ॥ कितने ही कबन्धोंने (शिर कटे हुए देहधारण करने-वालोंने) उत्तम आयुध ग्रहण करके देवीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया एवं अन्य कोई कोई वाद्यलयके साथ मिलकर नाचने लगा ॥ ६४ ॥ अन्य महासुर कबन्धगण खड्ग, शक्ति, और ऋष्टि हाथमें लेकर देवीके सैन्योंके शिर काटते हुए देवीको "ठहरो, ठहरो" ऐसा कहने लगे ॥ ६५ ॥ उस समय जिस स्थानमें युद्ध हो रहा था, वह स्थान, गिरे हुए रथ, हाथी, अश्व और असुरोंके द्वारा अगम्य हो उठा ॥ ६६ ॥ उस समय उस असुर सैन्योंके बीचमें हाथी, असुर एवं घोड़ोंकी शोणित राशि (रक्त) महानदीकी तरह प्रवा-हित होने लगी ॥ ६७ ॥ अग्नि जिस प्रकार तृण एवं काष्ठराशिको तत् क्षणात् भस्मसात् कर देती है, उसी तरह देवी अम्बिकाने असुरोंके प्रबल सैन्यको बिनष्ट कर डाला ॥ ६८ ॥ तब देवीका वाहन सिंह भी स्कन्ध-रोमावली हिलाता हुआ महान् गर्जन करके अवशिष्ट असुरोंका मानों प्राण निकालने लगा ॥ ६९ ॥ उस समय देवीके सैन्यगण भी असुरोंके साथ घोर युद्ध करने लगे, उसको देखकर देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे पुष्पवृष्टि की ॥ ७० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका महिषासुर सैन्यका वध नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुवा ।

तिरासीवां अध्याय ।

—०:*:०—

ऋषि बोले—अनन्तर सेनापति महासुर चिक्षुर उस सैन्य समूहको निहत देखकर अतिक्रोधसे अम्बिकाके साथ युद्ध करनेको चला ॥ १—२ ॥ तदनन्तर जिसप्रकार मेघ जल वर्षणके द्वारा मेरु पर्वतके शृंगको आच्छन्न करता है, उसी प्रकार उस असुरने शरव-

र्षण करके देवीको आच्छन्न कर दिया ॥ ३ ॥ उस समय देवीने अनायास ही असुर-निक्षिप्त शर समूहोंको छिन्न करके वाणके द्वारा उसके अश्व एवं सारथीको मारडाला ॥ ४ ॥ तथा असुरके धनु और अति उन्नत ध्वजाको काट डाला, तब उस असुरका धनु छिन्न होने पर बाणके द्वारा उसको विद्ध किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह असुर धनु, रथ, अश्व एवं सारथीसे रहित होकर केवल खड्ग और चर्म लेकर देवीकी ओर धावित हुआ ॥ ६ ॥ एवं तीक्ष्ण धार खड्ग द्वारा सिंहके मस्तक पर आघात करके बड़ी जल्दीसे देवीके बाम बाहु पर आघात किया ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन सुरथ ! असुर द्वारा निक्षिप्त खड्ग देवीके बाहु पर गिरकर भग्न होजानेसे उस असुरने क्रोधसे रक्त नयन होकर शूल ग्रहण किया ॥ ८ ॥ अनन्तर महा असुरने भद्रकालीके ऊपर शूलास्त्र फेंका, वह शूल आकाशमें जाकर तेजसे प्रज्वलित सूर्य्यमण्डलके समान प्रतीत होने लगा ॥ ९ ॥ उस समय शूलास्त्रको आते हुए देखकर देवीने भी शूलास्त्र फेंका, इस शूलास्त्रने असुरके शूल एवं चिक्षुरासुरको भी खण्ड खण्ड कर डाला ॥ १० ॥ इस प्रकार महिषासुरके सेनापति महावीर्य्यशाली असुरके मारे जाने पर देवविमर्द्दक चामर नामक असुर हस्ती पर सवार होकर आया ॥ ११ ॥ अनन्तर चामरासुरके भी शक्ति अस्त्र चलाने पर उन्होंने हुङ्कार द्वारा उसको प्रतिहत करके जमीन पर गिरा दिया ॥ १२ ॥ तब चामरने शक्ति अस्त्रको भग्न और जमीन पर गिरा हुआ देखकर क्रोधसे शूलास्त्र फेंका, देवीने उसको भी बाणके द्वारा छिन्न कर डाला ॥ १३ ॥ तदनन्तर सिंह कूद कर चामरके हस्तीके कुम्भ (शिरके) ऊपर बैठ उस असुर सेनापतिके साथ घोर बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ अनन्तर वे दोनों युद्ध करते करते हाथीसे पृथ्वी पर उतर कर अत्यन्त क्रोधसे परस्पर दारुण प्रहार करके युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ तत् पश्चात् सिंहने बहुत शीघ्रतासे आकाशमें कूद कर चामरका मस्तक ग्रहण करके कराघातसे छिन्न कर डाला ॥ १६ ॥ तब उदग्र नामक असुरके भी युद्धमें प्रवृत्त होने पर देवीने शिला और वृक्षादिके द्वारा उसको आहत किया एवं कराल नामक असुरको दांत, मुष्टि और तल प्रहारसे निपातित किया ॥ १७ ॥ अनन्तर देवीने क्रुद्ध होकर गदाघातके द्वारा उद्धत नामक असुरको, भिन्दिपालके द्वारा वाष्कल असुरको एवं बाणके द्वारा ताम्र और अन्धकासुरको चुरमार कर डाला ॥ १८ ॥ तदनन्तर परमेश्वरी देवीने त्रिशूल द्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य्य एवं महाहनु नामक तीनों असुरोंको मार डाला । एवं तलवारके द्वारा बिडालासुरका मस्तक देहसे अलग करके शरके द्वारा दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको यमके यहां भेज दिया ॥ १९—२० ॥ इस प्रकारसे अपने सैन्यके विनष्ट होने पर महिषासुर

टीका—यह पहले ही सिद्ध किया गया है कि, त्रिगुणमयी महाशक्तिका प्रथम चरित्र तमोमयी शक्तिके रहस्यसे पूर्ण है, इस कारण उस चरित्रमें युद्ध-क्रिया विष्णु भगवान् द्वारा सम्पादित हुई थी । यह

महिषरूप धारण करके प्रमथ सैन्योंको डराने लगा ॥ २१ ॥ किसीको तुण्डाघातके द्वारा किसीको खुराघातके द्वारा किसीको लाङ्गूल ताड़न एवं किसीको शृंगके द्वारा विदीर्ण करके भूमि पर गिरा दिया ॥ २२ ॥ और किसी अन्य सैन्योंको वेगके द्वारा, अन्य कितने सैन्योंको भ्रमणके द्वारा एवं अन्य कितने ही को निश्वास वायुके द्वारा पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह महिषासुर प्रमथ सैन्योंको आहत करके महादेवीके सिंहको आहत करनेके लिये धावित हुआ तब, देवी क्रुद्धा हो उठी ॥ २४ ॥ तब वह महावीर्य्य असुर भी खुरके द्वारा पृथिवी तलको पीसता हुआ शृङ्गके द्वारा उच्च उच्च पर्वतोंको फेकने लगा और शब्द करने लगा ॥ २५ ॥ उसके द्रुतगतिसे भ्रमण करनेसे पृथिवी विदीर्ण हो गई, उस समय महिषासुर लाङ्गूलके द्वारा समुद्र पर आघात करने लगा, उससे समुद्रकी जलराशि उछल कर सब ओर प्लावित हो गई ॥ २६ ॥ उस समय उसके शृङ्ग-कम्पनके द्वारा मेघसमूह विदीर्ण होकर खण्ड-खण्ड हो गये एवं निश्वास-वायु के द्वारा पर्वतसमूह आकाशमें उड़ कर पृथिवी पर गिर पड़े ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे क्रोधित होकर महिषासुरको आते देख कर चण्डिका देवी उसके वधके लिये क्रोधित हो उठीं ॥ २८ ॥ एवं पाश फेंक कर उस असुरको बान्धा, उसने भी उस युद्धमें महिषाकारको परित्याग कर दिया ॥ २९ ॥ और सिंहरूप धारण किया, तब, जब तक अम्बिका उसका शिर काटनेको ही थी तब तक वह खड्गधारी एक पुरुषाकार हो गया ॥ ३० ॥ उस समय देवीने बाणके द्वारा खड्ग और चर्म सहित उसको छिन्न कर डाला, उसने तत्क्षण गजाकार धारण किया ॥ ३१ ॥ और शुण्डके द्वारा देवीके सिंहको आकर्षण करके गर्जन कर उठा, देवीने खड्ग द्वारा उस शुण्डको काट डाला ॥ ३२ ॥ अनन्तर वह महासुर पुनः महिषदेह धारण करके चराचर ब्रह्माण्डको पूर्ववत् क्षुब्ध करने लगा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जगदम्बा चण्डिकाने क्रुद्ध होकर बार बार अत्युत्तम मद्यपान किया। तब उनका नेत्र

द्वितीय चरित्र ब्रह्मशक्तिके रजोमयीरूपके रहस्यसे पूर्ण है। युद्धका जो वर्णन किया गया है, वह सब समाधिगम्य सत्य विषय है, इसमें सन्देह नहीं है। पशुओंमें महिष तमोगुणकी प्रतिकृति है। असुरराजके युद्धके समयमें इस रूपको धारण करनेसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-जननी महामायाके इस द्वितीय चरित्रके विज्ञानकी और भी पुष्टि होती है। तमोबहुल रज कितना अनर्थ कर सकता है, जिसको दमन करनेके लिये साक्षात् ब्रह्मशक्तिको रजोमय ऐश्वर्य्यकी सहायता लेनी पड़ती है। यही इस चरित्रका आध्यात्मिक रहस्य है, जो समाधिगम्य है। वस्तुतः दुर्गादेवीके उपास्यरूपका यही आध्यात्मिक तात्पर्य्य है कि, तमोगुणरूपी महिषासुरको रजोगुणरूपी सिंहने भगवतीका वाहन बन कर अपने अधीन कर लिया है, जिस पर शुद्धसत्त्वमयी चिन्मयरूपधारिणी ब्रह्मशक्ति विराजमान हैं। देवासुरसंग्राममें जयलाभ करनेके अनन्तरकी दशाका यह शान्त सत्त्वमय स्वरूप है। क्योंकि, युद्धके समय रजका विकाश रहता है ॥ २१ ॥

लाल हो उठा, उस समय वे बार बार हास्य करने लगीं ॥ ३४ ॥ बल वीर्य्य एवं मदसे उद्धत वह असुर भी शब्द करता हुआ शृङ्गके द्वारा पर्वतोंको उठाकर देवी चण्डिकाके ऊपर फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ तब चण्डिका शरोंके द्वारा असुरके फेंके हुए पर्वतोंको विचूर्ण करती हुई स्पष्ट शब्दसे उसको कहने लगी, उस समय उनका मुखमण्डल मद्यके द्वारा अत्यन्त लाल हो गया ॥ ३६ ॥ देवीने कहा,—रे मूढ़ ! मैं जब तक मधु पान करती हूं, तब तक तू गर्जन कर ले, मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर अभी यहां देवता गर्जन करेंगे ॥३७–३८॥ ऋषिने कहा,—देवी महिषासुरसे इस प्रकार कहकर उस पर आरोहण कर, पादके द्वारा कण्ठको आक्रमण करके शूलके द्वारा उसके वक्षःस्थलमें आघात करने लगीं ॥ ३९–४० ॥ तदनन्तर देवीके द्वारा इस प्रकार चरणसे आक्रान्त उस असुरके अपने मुखसे दूसरा शरीर निकलने लगा, उसके आधा निकलते ही देवीने उसको बलात् रोक दिया ॥४१॥ तब अर्द्ध-निष्क्रान्त होकर ही युद्धमें प्रवृत्त होने पर देवीने महाअसि द्वारा उसका शिर काटकर मार डाला ॥ ४२ ॥ अनन्तर अवशिष्ट सैन्यगण "हा हा" शब्द करते करते क्रमशः भाग गये और देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥४३॥ एवं दिव्य महर्षियोंके साथ देवतागण देवीकी स्तुति करने लगे, तब गन्धर्वराजगण और अप्सरागण भी गान नृत्यादि करने लगे ॥ ४४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यके
महिषासुर वध नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

टीका—इस मधुपानका रहस्य अतिनिगूढ़ भावोंसे पूर्ण है । यद्यपि समाधिभाषामय सप्तशती गीताका प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पद त्रिभावोंसे पूर्ण है, परन्तु सबकी त्रिभावात्मक व्याख्या अतिदुर्ज्ञेय है और बहुत स्थलोंमें बुद्धिभेद उत्पन्नकारी है । यह प्रसंग सदाचार विरुद्ध होनेसे इसकी त्रिविध व्याख्या होना परमावश्यक है । मादक द्रव्योंमें परमविभूति रूपी मधु ग्रहण करनेसे प्रत्याहार और धारणाकी सिद्धि होती है । योगियोंके द्वारा यह अनुभूत है कि, मादक द्रव्य ध्यान और समाधिका विरोधी होने पर भी अन्तर्मुख व्यक्तियोंमें तुरत प्रत्याहारकी उत्पत्ति करता है एवं धारणामें सिद्धि प्राप्त करता है । दूसरी ओर ऐसी सिद्धि प्राप्त करनेमें जो धारणा ध्यान-समाधि मूलक संयम क्रिया है और जिसमें धारणाका प्राधान्य रहता है, उसमें भी मधु कारण होता है, इस कारण तन्त्रशास्त्रोंमें इसको "कारण" भी कहते हैं । मधु शक्तिकी आधिभौतिक प्रतिकृति है, इस कारण इतना फल उत्पन्न कर सकता है। किन्तु समर्थ योगिगण ही इससे इस प्रकारका लाभ उठा सकते हैं, अन्यके लिये यह विपत्ति-जनक है । इस कारण वह असुरराजका पेय नहीं हुआ, महामायाका पेय हुआ । यह मधुपानका आधिभौतिक रहस्य है । अन्तर्जगत्के वृत्तिराज्यमें इस रहस्यका आध्यात्मिक स्वरूप और ही है । घोर तमोबहुल रजोगुणको परास्त करनेके लिये सात्त्विक अन्तःकरणमें विशेष प्रेरणाकी आवश्यकता होती है । वह विशेष प्रेरक शक्ति यह मधु है । बिना पूर्ण रजोगुणके दुर्दमनीय तमोवेगको परास्त नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर सत्त्वगुणमय प्रशान्त अन्तःकरणमें उस राजसिक वेगको उत्पन्न करनेके लिये कर्त्तव्य-मूलक संकल्पकी आवश्यकता होती है, नहीं तो प्रशान्त व्यक्तिसे ऐसी क्रिया हो नहीं सकती है । यही इसका अध्यात्मरहस्य है, और अधिदैवरहस्य तो जगदम्बाके इस प्रकृत चरित्रमें प्रकट ही है ॥ ३८ ॥

चौरासीवां अध्याय ।

—— :&: ——

ऋषि बोले—देवीके द्वारा अतिवीर्य्यशाली दुरात्मा महिषासुर एवं उसके सैन्यांके निहत होने पर इन्द्रादि देवतागण ग्रीवा और स्कन्ध देशको विनम्र करके प्रणति पूर्वक वचनोंके द्वारा उस देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय रोमांचसे उन लोगोंका देह पुलकित हो उठा ॥ १-२ ॥ (देवतागण बोले) जो देवी अपनी शक्ति द्वारा इस जगत्में व्याप्त हैं, जो सब देवताओंकी शक्तिसे आविर्भूत हैं, जिनकी पूजा समस्त देवतागण और महर्षिगण करते हैं, उस देवीको हम भक्ति सहित प्रणाम करते हैं, वे हम लोगोंका मङ्गल विधान करें ॥ ३ ॥ जिनकी अतुलनीय शक्ति और प्रभाव अनन्त देव, ब्रह्मा एवं शिव भी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे चण्डिका अखिल जगत्के परिपालन एवं असुर भयनाशके लिये इच्छा करें ॥ ४ ॥ जो पुण्यात्माओंके गृहमें स्वयं लक्ष्मी हैं, और जो पापात्माओंके गृहमें अलक्ष्मी रूपा है, जो निर्मलचेता व्यक्तियोंके हृदयमें बुद्धि-रूपिणी हैं, जो साधुगणमें श्रद्धारूपिणी हैं और सत्कुलोद्भव व्यक्तियोंकी लज्जा रूपिणी हैं, ऐसे तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे देवि! तुम विश्वका परिपालन करो ॥ ५ ॥ तुम्हारा रूप और तुम्हारा वीर्य्य हम लोगोंसे अचिन्त्य है, अतएव हम उस रूप एवं असुर विनाशकारी प्रभूत वीर्य्यका वर्णन कैसे कर सकते हैं, तुमने देवताओं और असुरोंके मध्यमें जो युद्ध सम्बन्धीय चरित्र प्रकट किया है, वह भी हमारे वाक् मनके अतीत है, सुतरां उसका वर्णन हम किस प्रकार कर सकते हैं ॥ ६ ॥ तुम समस्त जगत्का कारण हो, तुम सत्त्वरजस्तमोगुणमयी हो, हम लोगोंकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते हैं। तुम अनन्त ब्रह्माण्डोंकी आधारभूता हो, पुनः सारा जगत् तुम्हारा ही अंशभूत है, तुम अव्याकृता परमा आद्या प्रकृति हो अर्थात् कभी तुम्हारी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ७ ॥ यज्ञमें जिनका उच्चारण करनेसे देवताओंकी तृप्ति होती है एवं श्राद्धमें जिनका उच्चारण करनेसे पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा एवं स्वधा तुम्हारा ही स्वरूप है। इसी कारण तुमको स्वाहा और स्वधारूपसे उच्चारण किया जाता है ॥ ८ ॥ तुम्हीं मुक्तिका कारण परमाविद्यारूपिणी हो इसी कारण मोक्षार्थी मुनिगण रागद्वेषादि सब दोषोंका परित्याग करके संयतेन्द्रिय और ब्रह्मतत्त्वानुसन्धानकी

टीका—प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव ये तीनों अपने अपने अधिकारके अनुसार ईश्वर समझे जाते हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डजननीके अनादि अनन्त स्वरूपको कैसे समझ सकते हैं क्योंकि, उनका ज्ञान एक ब्रह्माण्डके देश और कालसे परिच्छिन्न ही रहता है ॥ ७ ॥

इच्छासे तुम्हारी चिन्ता करते हैं। हे देवि! तुम अविचिन्त्य हो, तुम सर्वोत्कृष्टा हो ॥ ९ ॥ तुम शब्दरूपिणी हो, इसीलिये तुमको उद्गीथ एवं रमणीय पद-पाठ विशिष्ट ऋक् यजुः तथा सामका आश्रय कहते हैं पुनः तुम वेदरूपिणी हो, तुमही ईश्वरी हो, तुम्हीं जगत् पालनके निमित्त कृष्यादिरूपसे विद्यमान हो, एवं जगत्की दुःखहन्त्री हो ॥ १० ॥ हे देवि! सब शास्त्रोंके सारको जाननेवाली मेधा तुम ही हो, तुम्हीं दुर्गम-संसार-सागरतारिणी हो, तुम असंगा हो, तुम दुर्ज्ञेया हो इस कारण तुमको दुर्गा कहते हैं। तुम ही कैटभारि विष्णुके हृदयमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हो, पुनः तुम ही शशि-मौलि-विहारिणी गौरी हो ॥ ११ ॥ हे देवि! अत्युत्तम स्वर्णवर्ण मृदु मन्द हास्ययुक्त निर्मल तुम्हारा मुखमंडल पूर्णचन्द्र विम्बको नीचा दिखा रहा है, ऐसे मुखमण्डलको देख कर भी महिषासुरने क्रोधित होकर तुम पर प्रहार किया यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ १२ ॥ हे देवि! कराल भृकुटीयुक्त उदीयमान चन्द्रकान्तिके समान तुम्हारा मुखमण्डल देख कर भी महिषासुरने प्राण नहीं त्याग किया, यह बड़ा ही आश्चर्यजनक है, कुपित यमके मुख-को देखकर कोई जीवित नहीं रह सकता है ॥ १३ ॥ हे देवि! आप संसारके कल्याणके लिये प्रसन्न हों, क्योंकि, जिस पर आप कुपिता होती हो उस कुलका तत्क्षण नाश करती हो। अब हम लोगोंने यह समझा है, इसीलिये महिषासुरके सुविपुल सैन्योंका नाश हुआ ॥१४॥ हे देवि! जिन पर आप प्रसन्न होती हैं वे ही देशमें सम्मानित होते हैं, उनका ही धन और कीर्ति अक्षुण्ण रहती है, वे ही धर्मादिचतुर्वर्गके अधिकारी हैं एवं निरुद्वेग पुत्र, कलत्र और भृत्यवर्गको प्राप्त करके धन्य होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि! तुम्हारी प्रसन्नतासे ही पुण्यवान् गण प्रतिदिन श्रद्धाके साथ धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, एवं धार्मिक कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा स्वर्गके अधिकारी होते हैं; अत एव तुम्हारी प्रसन्नता त्रिलोकमें फलदात्री हुआ करती है ॥१६॥ हे दुर्गे! भयभीत होकर विपत्तिकालमें तुमको स्मरण करनेसे तुम प्राणिमात्र का भय दूर करती हो, और पुनः जो लोग स्वस्थ हो स्मरण करते हैं, उनका तुम अत्यन्त कल्याण साधन करती हो, तुम सबका दारिद्र्य दुःख विनाश करती हो, तुम्हारे सिवाय

टीका—मुक्ति प्रसंग होनेसे केवल वैष्णवी शक्ति और शैवी शक्तिका ही वर्णन किया गया है, यहां ब्राह्मी शक्तिका वर्णन नहीं किया गया। श्रीमद्भगवद्गीताने सिद्ध किया कि, मुक्ति कर्मयोगसे होती है अथवा सांख्ययोगसे होती है। कर्मको आश्रय करके वासना-रहित होकर कर्म-प्रवाहमें अपनेको बहा देना यह कर्म योग है। और अतिसावधान होकर तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे अग्रसर होनेको सांख्ययोग कहते हैं। इन दोनोंका शिवोपासना और विष्णु उपासनासे सम्बन्ध यथाक्रम है। इसी कारण उपास्य देवताओंमें भगवान् ब्रह्माका सम्बन्ध न रहनेसे केवल गौरी और लक्ष्मी इन दोनों शक्तियोंका ही वर्णन किया गया है ॥ ११ ॥

प्राणिगणके सब प्रकारके उपकारके लिये किसका चित्त दयार्द्र होगा? ॥ १७ ॥ हे देवि! असुरकुलके नाश होने पर जगत् स्वास्थ्य-सुख लाभ करेगा, एवं असुरगण नरकयातना भोग करनेके लिये पुनः पाप संचय न करे, तथा ये संग्राममें मृत्यु प्राप्त करके स्वर्गगामी होवें, यही सब सोच कर ही तुमने इन असुरोंको युद्धमें नाश किया है ॥ १८ ॥ अन्यथा आपके दृष्टिपात करनेसे ही ये भस्मसात् होसकते थे, ये शस्त्रसे पवित्र होकर उच्च लोकोंको प्राप्त हों इसी बुद्धिसे आपने इनको शस्त्रसे आहत किया है। शत्रुके विषयमें भी इस प्रकारकी मति अतीव शुभ है ॥ १६ ॥ हे देवि! अत्युग्र खड्ग प्रभाके समूहोंके द्वारा एवं शूलास्त्रके तीक्ष्ण कान्तिपुञ्जके द्वारा असुरोंकी दृष्टि जो तत्क्षण नष्ट नहीं हुई थी, उसका एकमात्र कारण तुम्हारे इन्दुखण्डके समान कान्तिविशिष्ट मुखमण्डलका निरीक्षण था ॥ २० ॥ हे देवि! दुर्वृत्तकी चेष्टाको शमन करना तुम्हारा मृदुल स्वभाव है, दूसरी ओर अतुलनीय रूप एवं असुरके नाशमें समर्थ वीर्य्य अचिन्तनीय है। एवं शत्रुके विषयमें भी आपने जो दया दिखाई है, सो भी अचिन्तनीय है ॥ २१ ॥ हे देवि! तुम्हारे इस पराक्रमकी उपमा कहीं भी किसीके साथ नहीं हो सकती है, एवं शत्रुके लिये भयजनक फिर भी अतिमनोहारी इस रूपकी भी अन्यत्र तुलना नहीं हो सकती है। हे वरदे! युद्धमें निष्ठुरता और चित्तमें दया एक साथ तुममें ही सम्भव है, तुम्हारे सिवाय त्रिभुव-

---

टीका—जगत् प्रसवित्री, पालयित्री जगदम्बा जो कुछ करती हैं, सो लोक-कल्याण तथा जीव कल्याणके लिये ही करती हैं। जैव दृष्टिसे चाहे कोई कार्य्य अशुभ समझा जाय, परन्तु कर्मके गतिवेत्ताके निकट यही प्रमाणित होगा कि, मंगलमयी जगदम्बाकी इच्छासे जो कार्य्य होता है सो जीवके मंगलार्थ ही होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह देवासुर-संग्राम है। सर्वशक्तिमयीके द्वारा क्षणमात्रमें उनके भ्रूभंगसे ही असुरराजका सर्वनाश और मरण संभव था, परन्तु असाधारण तपःफलभोक्ता असुरराजको अन्तमें स्वर्गलोक पहुंचानेके लिये ही उसको साधारण मृत्यु न देकर सम्मुख रणमें मृत्यु दिलानेके अर्थ, देवताओंको तपभ्रष्ट होकर अधःपतनसे बचानेके लिये और अपना प्रत्यक्ष शक्ति-विलास दिखाकर दैवी जगत्की ओर भक्तोंकी दृष्टि आकृष्ट करानेके अर्थ लीलामयीने ऐसी लीला की थी। अब, यह शंका हो सकती है कि, असुरराजने तो स्वर्गको जीत लिया था, पुनः उसको स्वर्गमें पहुंचाना इसका क्या तात्पर्य्य है? समाधान यह है कि, असुरगण अपने तपःप्रभावसे तपोहीन देवराज सेनाको परास्त करके केवल तृतीय ऊर्ध्वलोक तक जा सकते हैं, जहां देवराजकी राजधानी है; उससे ऊपरके लोकोंमें नहीं जा सकते हैं। असुरयोनि त्याग करनेके अनन्तर विशेषदेवयोनि प्राप्त करके असुरगण इससे भी उच्च लोकोंमें पहुंच कर पवित्र दिव्य भावोंको प्राप्त हो सकते हैं, यही इसका तात्पर्य्य है ॥१८–१९॥

टीका—कृपा और निष्ठुरता, ये दोनों विरुद्ध वृत्तियां हैं। जैसे दिन और रात, ज्ञान एवं अज्ञान, अन्धकार तथा प्रकाश एक दूसरेके विरोधी होनेके कारण एकाधारमें नहीं रह सकते हैं, उसी प्रकार निष्ठुरता और कृपा एक ही समयमें नहीं रह सकती हैं। परन्तु जीवमें जो असम्भव है, ईश्वरीमें वह सम्भव है। क्योंकि, वे असम्भवको सम्भव करने वाली हैं। वे ही एक ओर अविद्या बनकर जीवको फंसाती हैं, दूसरी

नमें अन्यत्र इसका दृष्टान्त नहीं है ॥ २२ ॥ तुमने युद्धमें शत्रुओंको विनाश करके त्रिलोकका परित्राण किया है, शत्रुगण भी तुम्हारे द्वारा इस प्रकार युद्धमें प्राणत्याग करके स्वर्गगामी हुए हैं, हम लोगोंका भी उद्धत असुरकुल-जनित भय दूर हुआ है । इसलिये तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि ! शूलसे हमारी रक्षा करो, हे अम्बिके ! तुम खड्गके द्वारा, घण्टाध्वनिके द्वारा, तथा धनुर्ज्या-टङ्कारके द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे चण्डिके ! तुम अपना शूल घुमाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर दिशाओंमें हमारी रक्षा करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे जो सब सौम्यरूप एवं भयानक रूप त्रिलोकमें विराजमान हैं, उनके द्वारा हमारी तथा जगत्की रक्षा करो ॥ २६ ॥ हे अम्बिके ! खड्ग, शूल, गदा आदि जो शस्त्र तुम्हारे करपल्लवमें सुशोभित हो रहे हैं, उनके द्वारा हमारी सब ओरसे रक्षा करो ॥ २७ ॥ ऋषि बोले ,—जगद्धात्री देवी इस प्रकारसे देवताओंके द्वारा स्तुता एवं नन्दनवन-सम्भूत पुष्पों तथा गन्धानुलेपनके द्वारा अर्चिता हुईं ॥ २८—२९ ॥ तब सब देवताओंने भक्ति पूर्वक धूप प्रदान किया, उस समय प्रसन्न होकर सुमुखी देवीने प्रणत देवताओंसे कहा ॥ ३० ॥ देवी बोलीं,—हे देवतागण ! मैं तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूं, अतएव तुमलोग अभीष्ट वरकी प्रार्थना करो, वह मैं प्रेमपूर्वक देती हूं ॥३१—३२॥ देवतागण बोले-हे देवि ! आपने हमारे शत्रु महिषासुरको विनाश करके सब कुछ किया है और कुछ अवशिष्ट नहीं है ॥ ३३—३४ ॥ हे महेश्वरि ! यदि आप कृपा करके हमलोगोंको वर देना ही चाहती हैं, तो यही हमलोगोंकी प्रार्थना है कि, हमलोगोंके इसी प्रकार विपत्तिग्रस्त हो आपके स्मरण करने पर आप हमलोगोंकी उस विपत्तिसे रक्षा करेंगी ॥ ३५ ॥ हे निर्मलमुखि ! आपसे एक और भी प्रार्थना करते हैं कि, जो मनुष्य आपकी इस स्तुतिका पाठ करके आपको प्रसन्न करे, उसके धनपुत्र-कलत्रादिका अभ्युदय हो ॥ ३६—३७ ॥ ऋषि बोले,—देवताओंके इस प्रकारसे अपने लिये एवं जगत्के लिये देवीको प्रसन्न करने पर "ऐसाही

ओर विद्या वनकर जीवको मुक्त करती हैं । इसी उदाहरणके अनुसार कर्मकी नियन्त्री सर्वदर्शी और सर्वजीवहितकारिणी होनेके कारण वर्त्तमान समयको देखते हुए उनका आचरण निष्ठुरताका होनेपर भी भविष्यत् विचारसे उनकी वह निष्ठुरता असुरोंके लिये मंगलका कारण है । इससे उनके चित्तमें कृपा और बाहरी वर्त्तावमें निष्ठुरता होना सिद्ध ही है । ज्ञानकी पूर्णता, शक्तिकी पूर्णता और कर्मगतिकी अभिज्ञताकी पूर्णताके विना यह हो नही सकता, ऐसा विचार कर देवताओंने जगदम्बाकी स्तुतिमें ऐसे शब्द कहें हैं ॥ २२ ॥

टीका—अपने अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये जो धर्म कार्य्य किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं और जगत्के अभ्युदय तथा निःश्रेयसके लिये जो धर्मकार्य्य किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं । यज्ञ और महायज्ञ अनेक प्रकारके होते हैं; यथा—दानयज्ञ, तपयज्ञ, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ और ज्ञान यज्ञ । इन यज्ञोंके अन्तर्भाव अनेक हैं, जिनको किसी किसी महर्षिने बहत्तर श्रेणियोंमें विभक्त किया है ।

होगा" कहकर भद्रकाली देवी अन्तर्हिता हो गयीं ॥ ३८—३९ ॥ हे भूपते ! त्रिलोकका हित चाहनेवाली देवी पूर्वकालमें देवताओंके देहसे जिस प्रकार आविर्भूता हुई थीं, सो कहा ॥ ४० ॥ अब धूम्रलोचनादि दुष्ट दैत्यगण एवं शुभं निशुंभके वधके लिये तथा त्रिलोककी रक्षाके लिये देवताओंकी उपकर्त्री देवी जिस प्रकार गौरीदेहसे आविर्भूता हुई थीं, सो यथायथ रूपसे कहता हूं, सुनो ॥ ४१—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका
शक्रादिस्तुति नामका चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

पचासीवां अध्याय ।

ऋषि बोले,—प्राचीन कालमें शुम्भ निशुम्भ नामक दो असुरोंने गर्व एवं बलके आश्रयसे इन्द्रका त्रिलोकाधिपत्य तथा यज्ञभाग छीन लिया था ॥ १–२ ॥ उन दोनोंने सूर्य्य, चन्द्र, कुबेर, यम एवं वरुण देवके अधिकारोंको अपने अधीन कर लिया था ॥ ३ ॥ तब शुंभ और निशुंभ ही वायु और अग्निके कार्य्य करने लगे ॥ ४ ॥ अनन्तर देवतागण इस प्रकारसे तिरस्कृत होकर एवं पराजित होकर स्वकीय-राज्यसे भ्रष्ट होगये। उस समय महाअसुर शुंभ निशुंभके द्वारा अधिकारच्युत एवं स्वर्गसे बहिष्कृत होकर देवताओंने अपराजिता देवीका स्मरण किया ॥ ५ ॥ एवं सोचने लगे कि, देवीने पहले हमलोगोंको वर प्रदान किया है कि, तुम लोगोंके स्मरण करते ही मैं आविर्भूता होकर तत्क्षणात् तुम लोगोंकी विपत्ति दूर करूंगी ॥ ६ ॥ इस प्रकार सोचकर पर्वतेश्वर हिमालय पर जाकर देवतागण विष्णुमाया देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ देवतागण बोले,—तुम प्रकाशशीला हो, तुम महादेवी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, तुमको प्रणाम है, तुम मूल प्रकृति हो, तुम पालनकर्त्री हो, तुमको बार बार प्रणाम है ॥ ८-९ ॥ तुम भयानक हो, तुम नित्या हो, तुम ही गौरी हो, तुम धात्री हो, तुमको प्रणाम है, तुम ज्योत्स्नारूपिणी हो, तुम इन्दुरूपिणी हो, तुम आनन्दरूपिणी हो, तुमको प्रणाम है ॥ १० ॥ तुम मंगलरूपिणी हो, तुम सम्पद्रूपिणी हो, तुम सिद्धिरूपिणी हो, तुमको हम विनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, तुम

यह देवताओंका उपासनायज्ञ था । और जगत् कल्याण बुद्धिसे यही महायज्ञ भी था । जब दैवीशक्ति और आसुरीशक्ति, ये दोनों अपने अपने जगह कार्य्य करें, दोनोंका सामञ्जस्य रहे, एक दूसरेका अधिकार छीनने न पावे, तभी चतुर्दशभुवनमें धर्मकी स्थापना हो सकती है और बल, ऐश्वर्य, बुद्धि और विद्या आदि प्रकाशित रह कर सुख और शान्ति विराजमान रह सकती है ॥ ३९ ॥

अलक्ष्मीरूपा हो, पुनः तुम्हीं राजलक्ष्मीरूपा हो, तुम माहेश्वरी हो, तुमको बार बार प्रणाम है ॥ ११ ॥ तुम दुर्गम्या दुर्गा हो, पुनः तुमही दुर्गपारकर्त्री हो, तुम सबकी कारण हो, तुम प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुम कृष्ण वर्ण हो, तुम्हीं धूम्रा हो तुमको सतत नमस्कार है ॥१२॥ तुम अति मधुरा हो, पुनः तुम्हीं भयानकरूपधारिणी हो, तुमको प्रणत भावसे बार बार प्रणाम है । तुम जगत् प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुमको प्रणाम है । तुम देवी हो, तुम क्रियारूपिणी हो तुमको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ १३ ॥ जो विष्णुमाया रूपसे प्राणिमात्रमें विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १४–१६ ॥ जो देवी समस्त प्राणियोंमें चेतनारूपसे विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १७–१९ ॥ जो देवी सब प्राणिमात्रमें बुद्धिरूपसे विराजमान हैं, उनको बार बार नमस्कार है ॥ २०–२२ ॥ जो देवी सब भूतोंमें निद्रारूपसे विराजमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २३–२५ ॥ जो देवी सब भूतोंमें क्षुधा रूपसे विराजमान हैं उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ २६–२८ ॥ जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें छायारूप अन्धकारसे अर्थात् अविद्या रूपसे विद्यमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २९–३१ ॥ जो देवी सब भूतोंमें शक्तिरूपसे विद्यमान हैं उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ३२–३४ ॥ जो देवी सब भूतोंमें तृष्णा (वासना) रूपसे वर्त्तमान हैं, उनको बारम्बार प्रमाण है ॥ ३५–३७ ॥ जो समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें क्षमारूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम हैं ॥ ३८–४० ॥ जो देवी अखिल-प्राणियोंमें जातिरूपसे अवस्थान करती हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥४१–४३॥ जो देवी प्राणियोंमें लज्जारूपिणी हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ४४–४६ ॥ जो देवी सबभूतोंमें शान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रमाण है ॥ ४७–४९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥५०–५२॥ जो देवी सब भूतोंमें कान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५३–५५ ॥ जो देवी सब भूतोंमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार

टीका—पुण्यफलसे लक्ष्मी और पापफलसे अलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है । पुण्य और पाप शुभ और अशुभ कर्मफल, ये सब ही शक्तिके विलास हैं इस कारण दोनों ही कहा गया है ॥ ११ ॥

टीका—कृष्णा और धूम्रा ये दोनों सम्बोधन अति रहस्यपूर्ण हैं । कृष्ण कालेको और धूम्र धुआंके रंगको कहते हैं । प्रकृति-शक्तिका प्राधान्य कृष्णामें है और शुद्ध सत्त्वमें कार्य्य नहीं होता है । जब शुद्धसत्त्वसे कार्य्य प्रारम्भ होता है, उस समय उस उज्ज्वलतामें जो थोड़ीसी श्यामता आजाती है, वही धूम्राका रहस्य है । इन दोनोंका योगी जन समाधि द्वारा अनुभव करते हैं । सौम्य और रौद्र अर्थात् भयानक ये दोनों विरुद्ध रसके बोधक हैं । रसरूपा भगवतीमें ही एकाधारमें इनका रहना सिद्ध है । जैसा कि, पहले कृपा और निष्ठुरता वृत्तिके विषयमें कहा गया है । ब्रह्मसे ब्रह्मप्रकृतिका जो सम्बन्ध है, प्रकृतिसे त्रिगुणका वही सम्बन्ध है और त्रिगुण-तरङ्गसे ही कर्मकी उत्पत्ति होती है । इस कारण वे क्रियारूपिणी हैं ॥ १३ ॥

प्रणाम है ॥ ५६-५८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ५६-६१ ॥ जो देवी प्राणियोंके हृदयमें स्मृतिशक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ६२-६४ ॥ जो देवी प्राणियोंमें दयारूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६५-६७ ॥ जो देवी तुष्टिरूपसे प्राणियोंमें विराजमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६८-७० ॥ जो देवी सब भूतोंमें मातृरूपसे विद्यमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥७१-७३॥ जो देवी सब भूतोंमें भ्रांतिरूपसे विद्यमान हैं, उनको भूयोभूयः नमस्कार है ॥७४-७६॥ जो इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री हैं और जो भूतोंकी अधिष्ठात्री हैं, जो समस्त प्राणिमात्रमें अनुस्यूतभावसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ७७ ॥ जो चैतन्यरूपसे सारे जगत्को व्याप्त करके विराजमान हैं, उनको बारम्बार नमस्कार है ॥ ७८-८० ॥ पूर्वमें महिषासुरके वधके समय जो देवताओंके द्वारा स्तुत हुई थी, अभी देवेन्द्र जिनकी प्रतिदिन सेवा किया करते हैं; जिनको हम लोग अब भी उद्धत दैत्योंके द्वारा उद्विग्न होकर भक्तिविनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, जो स्मरणमात्रसे ही सब विपत्तियोंका विनाश करती हैं, वे कल्याणविधायिनी ईश्वरी सर्वदा हमलोगोंका मंगल करें और विपत्तियोंको दूर करें ॥ ८१-८२ ॥ ऋषि बोले, हे नृपनन्दन सुरथ ! इस प्रकारसे देवतागण स्तुति कर रहे थे, इतनेमें पार्वती देवी देवताओंकी ओरसे होकर गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जाने लगीं ॥ ८३-८४ ॥ उन्होंने समवेत देवताओंसे पूछा कि, आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं? सुन्दर भ्रूवाली भगवतीके पूछते ही उनके अपने शरीरकोषसे शिवा आविर्भूत होकर बोली; कि ये देवतागण युद्धक्षेत्रमें शुंभ निशुंभके द्वारा पराजित होकर हमारी ही स्तुति कर रहे हैं ॥ ८५-८६ ॥ यह देवी पार्वतीके शरीर-

---

टीका—पूर्वोक्त स्तुतियोंके प्रत्येक स्थलमें पांच वार "नमः" आया है। समाधि-भाषाके शब्द वृथा प्रयुक्त नहीं होते, इस कारण यह समझना उचित है कि, प्रत्येक स्थलमें पांच भावोंको आश्रय करके पांच वार नमस्कार किया गया है। प्रथम, उस वाचकके वाच्यका अधिभूतरूप, दूसरा अधिदैवरूप, तीसरा अध्यात्मरूप, चौथा सबकी कारणभूता सर्वशक्तिमयी मूलप्रकृतिरूप और पांचवां शक्ति और शक्तिमानकी अभेद अवस्था तुरीयरूप, इस प्रकारसे प्रत्येकमें पांच नमस्कार किये गये हैं, जिससे भक्तका अन्तःकरण उस परमपदमें लय हो सके ॥ ८० ॥

टीका—ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूपिणी जगज्जननी दोनोंमें अभेद है, दोनों एक ही हैं। ब्रह्म, ईश्वर, विराट् पुरुष और ब्रह्मशक्ति ये जो भेद हैं, ये भेद महामायाके महिमाप्रकाशक और वैभवके समर्थक हैं। दैवीमीमांसादर्शनने यह सिद्ध किया है कि, सगुण एवं निर्गुणका जो भेद है, वह केवल ब्रह्मशक्तिकी महिमाके लिये ही है। जब तक वह महाशक्ति स्वस्वरूपके अङ्कमें छिपी रहती है, तब तक सत् चित् और आनन्द इन तीनोंका अद्वैतरूपसे एक रूपमें अनुभव होता है, वह तुरीयाशक्ति जब स्वस्वरूपमें प्रकट होकर सत् और चित्को अलग अलग दिखाती हुई आनन्द विलासको उत्पन्न करती हैं, तब वह पराशक्ति कहाती है,

कोषसे उत्पन्न होनेके कारण जगत्‌में "कौशिकी" नामसे विख्यात हुई ॥ ८७ ॥ अनन्तर शरीरकोषसे कौशिकीके उत्पन्न होनेसे पार्वती कृष्णवर्णा हो गयीं, तब वे हिमालयको आश्रय करके रहीं और कृष्णवर्णा हो जानेसे "कालिका" नामसे विख्यात हुई ॥ ८८ ॥ अनन्तर कौशिकी अम्बिका परम रमणीय रूप धारण करके विराजमान हुई, उस समय शुंभ निशुंभके सेवक चण्ड एवं मुण्डने उनको देखा ॥ ८९ ॥ चण्ड और मुण्डने शुंभसे कहा कि, महाराज! अति रमणीया एक कोई स्त्री हिमालयको अपनी प्रभासे प्रकाशित करती

वही पराशक्ति जब स्वरूप ज्ञान उत्पन्न कराकर जीवके अस्तित्वके साथ स्वयं भी स्वस्वरूपमें लय हो निःश्रेयसका उदय करती है, तब उसको पराविद्या कहते हैं। ये ही दोनों अवस्थाएं सृष्टि-विलासकी उत्पत्ति और लयका कारण हैं। औपनिषदिक ये अवस्थाएं केवल समाधिगम्य हैं। इस विज्ञानको अन्य प्रकारसे समझने योग्य है। स्वस्वरूपमें जब वह तुरीया रूपधारिणी महामाया सत् भाव और चित् भाव इन दोनोंको अलग अलग अनुभव करानेके लिये आनन्द विलासरूपी दृश्यको प्रकट करने लगती है, तब उसीका नाम पराशक्ति है और जब जीवके निःश्रेयस प्राप्तिके समय आत्मज्ञान उदय कराकर वह स्वयं स्वस्वरूपके अङ्कमें छिप जाती हैं, तब उसी अवस्थाका नाम पराविद्या है, यह उपनिषद् कथित रहस्य है। वस्तुतः ये दोनों अवस्थाएं तुरीयाशक्तिके ही भेद हैं और "अहंममेति" वत् ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिमें भेद नहीं है, यह पहले ही कहा गया है। इन्हीं दोनों तुरीयाशक्तिके अनन्त वैभवयुक्त रूपोंको सप्तशती गीताके इस स्थलमें कौशिकी और कालिका रूपसे अभिहित किया है। यह भी समाधिगम्य औपनिषदिक रहस्य है कि, सत् चित् और आनन्द इन तीनों भावोंमेंसे अस्ति-भावसे प्रकृतित्व और भाति भावसे पुरुषत्व और दोनोंके विलाससे आनन्द-वैभवरूपी दृश्य-प्रपञ्च प्रकट होता है। प्रकृति सद्भावके आश्रयसे ही परिणामिनी होती है सुतरां सद्भावमय ही नगराज हिमालयका अध्यात्म स्वरूप है। वह प्रकृतिप्रसूत जड़मय दृश्यकी प्रतिकृति भी है और हिमालय सब प्रकारके ऐश्वर्य्योंकी खानि होनेके कारण पुराण कथित गौरीका पित्रालय भी है और सद्भावाश्रित अधिदैवको पुराणशास्त्र गौरीके पिता रूपसे वर्णन करता है, सो भी विज्ञान सिद्ध ही है। देवासुर-संग्रामका त्रिविध स्वरूप पहले ही निर्णय किया गया है। इंद्रियसुख-मूलक अविद्याजनित अस्मिता, राग–द्वेष, अभिनिवेशके द्वारा जो वृत्तियां अन्तःकरणको तरङ्गायित करती रहती हैं, वही अवस्था आसुरी शक्तिके प्राधान्यसे आध्यात्मिक स्वरूप है। दूसरी ओर इस आसुरी अवस्थाको परास्त करके जयलाभ करनेके अभिप्रायसे शक्ति-विलास-क्षेत्ररूपी हिमालयमें जाकर पराशक्ति और पराविद्यारूपिणी जगज्जननी महामायाके निकट पहुंच कर जो वृत्तियां स्तुति करनेमें समर्थ होती हैं, अन्तःकरणकी इसी अवस्थासे देवताओंके अध्यात्मरूपका सम्बन्ध समझना उचित है। स्वरूपज्ञान-प्रवाह गंगाका अध्यात्म स्वरूप है। स्वरूपके अङ्कमें स्थित तुरीयाशक्तिरूपिणी जगज्जननीका ऐसी गंगामें स्नान करना स्वाभाविक है। भक्तोंके आर्त्तनादसे बहिर्दृष्टि होते ही वह ब्रह्मशक्ति दो स्वरूपमें विभक्त हुई और कौशिकी देवताओंके भय निवारणमें रत हुई। द्वैत सम्बन्ध स्थापन होते ही जो चित्‌भावमें सत्‌भावका प्राधान्य है, वही देवीका श्यामवर्ण होना है। यह अध्यात्म-रहस्य योगीजन—दुर्लभ और उपनिषद्‌का सार है। इससे यह नहीं समझना उचित है कि, इस गाथाका अधिदैव और अधिभूत-रहस्य नहीं है अथवा देवासुर-संग्राम नहीं हुआ था। यह त्रिविध भावमय-रहस्य पहले लक्ष्य कराया गया है ॥ ८४-८८ ॥

हुई अवस्थान कर रही है ॥ ९० ॥ वैसा सुन्दररूप शायद कभी किसीने नहीं देखा है, हे असुरेन्द्र ! आप एक बार जानें कि, यह स्त्री कौन है ? एवं जान कर आप इसको ग्रहण करें ॥ ९१ ॥ हे दैत्येन्द्र ! यह स्त्रियोंमें रत्नरूपा है, इसके प्रभापटलसे सारा दिङ्मण्डल भासमान हो रहा है, आप चाहें तो उसको देख सकते हैं ॥ ९२ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकमें जो कुछ श्रेष्ठ हस्ती, अश्वादि रत्न तथा महापद्मादि मणि हैं वे सभी इस समय आपके गृहमें सुशोभित हैं ॥ ९३ ॥ आप हस्ती श्रेष्ठ ऐरावत, पारिजातका वृक्ष तथा उच्चैःश्रवा नामक प्रसिद्ध अश्व इन्द्रके यहांसे लाये हैं एवं अतिअद्भुत हंसवाहनयुक्त ब्रह्माका विमान भी आपके आङ्गनमें सुशोभित है ॥ ९४-९५ ॥ आप यह महापद्म नामक निधि धनपति-कुबेरके पाससे लाये हैं, किंजल्किनी नामक माला भी समुद्रने आपको दिया है, जिसका पद्म कभी मलिन नहीं होता है ॥९६॥ आपके गृहमें वरुणका छत्र शोभायमान हो रहा है, जिससे सर्वदा स्वर्ण प्रस्रवण होता है, पुनः देखिये प्रजापतिका श्रेष्ठ रथ भी आपके गृहमें विद्यमान है ॥ ९७ ॥ आपने यमकी उत्क्रान्तिदा नामिका शक्ति भी अपहरण करके अपने यहां रक्खी है। वरुणदेवका पाश और समुद्रसे उत्पन्न सारे रत्न समूह भी आपके भ्राता निशुम्भके हस्तमें शोभायमान हैं ॥ ९८ ॥ अग्निने भी अदाह्य दोनों वस्त्र आपको प्रदान किये हैं ॥ ९९ ॥ दैत्यपते ! इस प्रकारसे यावत् श्रेष्ठ रत्न आपने स्वायत्त किये हैं तो इस मंगलमयी रत्नस्वरूपा स्त्रीको आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ? ॥ १०० ॥ ऋषिबोले,—उस समय शुम्भने इस प्रकार चण्ड और मुण्डकी बात सुनकर देवीके पास सुग्रीव नामक महासुर दूतको भेजा ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ और उससे कहा कि, तुम हमारे कथनके अनुसार देवीको कहना तथा जिससे वह प्रेम सहित शीघ्र चली आवे ऐसा करना ॥ १०३ ॥ अनन्तर दूत अतिरमणीय हिमालय प्रदेश पर जहां देवी विराजमान थीं, जाकर अति मधुर वाक्य मृदुल भावसे बोलने लगा ॥ १०४ ॥ दूत बोला,—हे देवि ! दैत्यराज शुंभ त्रिलोकका राजा है, मैं उसीके द्वारा भेजा हुआ तुम्हारे पास आया हूं ॥ १०५-१०६ ॥ जिसकी आज्ञा सब देवयोनियोंमें निर्बाध चलती है, जिन्होंने सब शत्रुओंको निःशेषरूपसे पराजित किया है, उसी शुंभने आपको जो कहा है, सो सुनिये ॥ १०७ ॥ समस्त त्रैलोक्य हमारे द्वारा रक्षित है, देवगण हमारे आज्ञाधीन हैं, मैं सारे देवताओंका यज्ञभाग पृथक् पृथक् भावसे भोग करता हूं ॥ १०८ ॥ त्रिलोकमें जो कुछ श्रेष्ठ रत्न हैं वे सब हमारे पास हैं, उसी प्रकार हस्तीश्रेष्ठ ऐरावतादि हमारे ही वशवर्त्ती हैं। क्षीरोद सागर मथन करके जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न देवताओंने पाया था और अबतक जो इन्द्रका वाहन था अब उसे भी अपहरण करके मुझको ही समर्पण किया है ॥ १०९-११० ॥ हे देवि ! अधिक क्या, देव, गन्धर्व, वासुकि आदि नागोंके जो कुछ श्रेष्ठ

रत्न हैं, वे सभी इस समय हमारे पास हैं ॥ १११ ॥ हे देवि ! हम रत्नभोगी हैं, अतएव रत्नभूता आप हमलोगोंका आश्रय करें ॥ ११२ ॥ हे चंचलापाङ्गि ! तुम स्त्रीरत्नरूपा हो, इसलिये तुमको कहता हूँ, तुम मुझको अथवा मेरे प्रबल पराक्रमशाली भाई निशुंभको आश्रय करो ॥ ११३ ॥ मुझको आश्रय करनेसे अतुल परम ऐश्वर्य्योंकी अधिकारिणी होगी इत्यादि सोचकर मेरा आश्रय करो ॥११४ ॥ ऋषि बोले, इस प्रकार दूतके देवीसे कहने पर मंगलमयी जगद्धात्री भगवती दुर्गा थोड़ा मुस्कराकर गम्भीर भावसे बोलीं ॥ ११५-११६ ॥ शुम्भ निशुम्भ त्रिलोकके सम्राट् हैं, यह जो तुमने कहा सो सत्य है, तुमने मिथ्या कुछ नहीं कहा ॥ ११७-११८ ॥ किन्तु अल्पबुद्धिवशात् पूर्वमें मैंने एक प्रतिज्ञाकी थी, उसको मिथ्या कैसे करूं ? वह प्रतिज्ञा सुनो ॥ ११९ ॥ जो युद्धमें मेरे दर्पको नष्ट करके मुझे पराजित कर सकेगा और जो संसारमें मेरे समान बली है, वही मेरा पति होगा ॥ १२० ॥ अतएव अब देरी करनेकी आवश्यकता नहीं है, शुम्भ अथवा निशुम्भ शीघ्र ही युद्धमें मुझे पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करें ॥ १२१ ॥ दूत बोला—हे देवि ! आप इस प्रकार अभिमानकी बात हमारे सामने न करें, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन पुरुष है, जो युद्धक्षेत्रमें शुम्भ निशुम्भके निकट ठहर सके ? ॥ १२२-१२३ ॥ हे देवि ! शुम्भ निशुम्भकी तो बात ही क्या है, सब देवतागण एकत्र होकर अन्य दैत्योंके सम्मुख भी युद्धमें ठहर नहीं सकते हैं। तुम स्त्री होकर अकेली किस प्रकार उनके सामने युद्धमें ठहर सकोगी ? ॥१२४॥ इन्द्रादि देवगण युद्ध क्षेत्रमें जिनके निकट ठहर नहीं सके, उन शुम्भादिकोंके निकट तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ? ॥ १२५ ॥ अतः मैं तुमको कहता हूं, तुम शीघ्र ही शुम्भ निशुम्भके निकट चलो, अन्यथा तुम्हारे केश पकड़ कर बलात् तुमको ले जाएंगे, उसमें तुम्हारा गौरव अवश्य ही नष्ट होगा ॥ १२६ ॥ देवी बोलीं, शुम्भ बलशाली है; निशुम्भ भी अतिवीर्य्यवान् है, यह सत्य है किन्तु मैंने जो विना विचारे पहले प्रतिज्ञा कर डाली है, उसके लिये क्या करूं ? अतएव तुम जाकर मैंने जो कहा अतिआदर पूर्वक वह सब असुरराजसे कहो वे जो उचित समझें सो करें ॥ १२७-१२९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका देवीदूत संवाद नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

छियांसीवां अध्याय।

ऋषि बोले-दूतने इस प्रकार देवीकी बात सुन कर क्रोधित हो दैत्यराजके निकट आकर सब कहा ॥ १-२ ॥ अनन्तर दैत्यराजने दूतकी वह सब बात सुन क्रोधित होकर अन्यतम दैत्यपति धूम्रलोचनसे कहा ॥ ३ ॥ हे धूम्रलोचन! तुम शीघ्र ही अपने सैन्योंके साथ जाकर उस दुष्टा स्त्रीका बाल पकड़ कर घसीट ले आओ ॥ ४ ॥ यदि उसकी रक्षा करनेके लिये कोई दूसरा खड़ा हो, तो वह देव, यक्ष, या गन्धर्व ही क्यों न हो, उसको मार डालना ॥ ५ ॥ ऋषि बोले,—अनन्तर दैत्य धूम्रलोचन शुम्भकी आज्ञा पाते ही उसी समय साठ हजार असुर सैन्योंको साथ लेकर चला गया ॥ ६-७ ॥ तब धूम्रलोचन हिमाचल-निवासिनी उस देवीको देख कर उच्च स्वरसे बोला,—तुम शीघ्र ही शुम्भ निशुम्भके निकट चलो ॥ ८ ॥ यदि प्रेम सहित हमारे स्वामीके समीप नहीं जाओगी, तो अभी तुमको बलात् बाल पकड़ कर घसीट ले चलेंगे ॥ ९ ॥ देवी बोलीं,—आप दैत्यसम्राट् शुम्भके द्वारा भेजे हुये आये हैं, स्वयं भी बलवान् हैं एवं सैन्य सहित हैं, अतएव बलपूर्वक मुझको ले जाने पर मैं क्या करूंगी? ॥ १०-११ ॥ ऋषि बोले,—देवीके ऐसा कहने पर असुर धूम्रलोचन देवीकी ओर धावित हुआ, अनन्तर देवीने हुङ्कार द्वारा उसको भस्मीभूत कर डाला ॥ १२-१३ ॥ अनन्तर असुर-सैन्य क्रोधित होकर शक्ति एवं कुठार अम्बिका देवी पर फेंकने लगा ॥ १४ ॥ उस समय देवीके वाहन सिंहने भी स्कन्धरोमावली हिलाते हुए अति-भयानक नाद करके असुरसेनाओंके बीचमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥ तथा किसी किसी असुरको कराघात, किसी किसी असुरको मुखप्रहार, किसी किसी असुरको अधरके द्वारा आक्रमण करके आहत किया ॥ १६ ॥ कितने ही का नखके द्वारा पेट फाड़ डाला, अन्य

टीका—असुरसम्राट्के इस सामन्तको हुङ्कार द्वारा भस्म करनेका जो यह अधिदैव चरित्रवर्णन है, इसका अध्यात्मभाव अतिरहस्य पूर्ण और भक्तोंके लिये आनन्द-जनक है। दैवीसम्पत्तिके अधिकारी उन्नत व्यक्तिके अन्तःकरणमें जब कोई इन्द्रिय-आसक्ति मूलक असद् वृत्ति प्रकट होती है, उस समय भगव-चरणोंमें युक्त भक्त जब मनको डाटता है, तब तुरंत ही मन सावधान होजाता है और उसकी आसुरी वृत्ति भस्मीभूत होजाती है। अन्तर्मुख भक्तगण प्रायः अपने अन्तःकरणमें इस प्रकारसे धूम्रलोचनका वध होना अनुभव किया करते हैं, परन्तु जब वार वार असुरका प्राकट्य अन्तःकरणमें होता है, तब युद्ध करना पड़ता है। यदि वह युद्ध कूटस्थके आधिपत्यमें अथवा इष्टको सम्मुख करके किया जाय, तो सदा जयही हुआ करती है। अधिभूत जगत्में तो इस प्रकार धूम्रलोचनका वध प्रायः देखनेमें आता है। आसुरी प्रजाको पहली दशामें दैवीसम्पत्तियुक्त व्यक्ति धमका कर ही उसकी आसुरी चेष्टाका दमन कर देता है ॥ १३ ॥

कितने असुरोंका चपेटाघातसे शिर विच्छिन्न कर दिया ॥ १७ ॥ तथा अन्यान्य असुरों-का बाहु एवं मस्तक छिन्न करके रोमावलियोंको कम्पित करता हुआ, उन लोगोंके पेटसे रक्त पान करने लगा ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे क्षणमात्रमें ही अतिक्रोधी देवीके वाहन सिंहने सब असुर सैन्योंका विनाश कर डाला ॥ १९ ॥ अनन्तर देवीने धूम्रलोचनको तथा उनके सिंहने सब असुर-सैन्यको नष्ट कर दिया, यह सुन कर दैत्यराज शुम्भ क्रोधित हो उठा, उस समय क्रोधसे उसका ओठ स्फुरित होने लगा, अनन्तर शुम्भने महासुर चण्डमुण्डको आज्ञा दी ॥ २०-२१ ॥ हे चण्ड ! मुण्ड ! तुम बहुत सैन्योंको साथ लेकर उस रमणीके निकट जाके उसको शीघ्र ले आओ ॥ २२ ॥ उसका केश पकड़ कर अथवा बान्ध कर ले आना । यदि किसी प्रकार यह भी न कर सको तो, तुम सब असुर मिल कर नाना प्रकारके अस्त्रोंसे उसको प्रहार करना ॥ २३ ॥ उस स्त्रीके हत-प्राय होने पर, सिंहको मार डालनेके अनन्तर उस अम्बिकाको बान्ध करके ले आना ॥ २४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका
धूम्रलोचन वध नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सत्तासीवां अध्याय ।

—०:*:०—

ऋषि बोले,— शुम्भकी आज्ञा पाते ही चण्ड मुण्ड आदि दैत्यगण हस्ती, अश्व, रथ तथा पदातिदलसे परिवेष्टित हो अस्त्र शस्त्रसे तैयार होकर गये ॥ १-२ ॥ अनन्तर हिमालयके कांचन श्रृंगके ऊपर सिंहपर उपविष्टा ईषत् हास्यवदना देवीको देखा ॥ ३ ॥ तब उद्धत चण्ड-मुण्ड आदि प्रधान दैत्यगण धनु, असि धारण करके देवीके निकट जाकर उनको पकड़नेकी चेष्टा करने लगे ॥ ४ ॥ अनन्तर अम्बिकाने उन शत्रु असुरोंके प्रति क्रोध किया, क्रोधसे उनका मुखमण्डल रक्तवर्ण हो उठा ॥ ५ ॥ तब उनके भीषण भृकुटी करने पर ललाटदेशसे भीषणवदना असि एवं पाशधारिणी काली निकलीं ॥ ६ ॥ वे विचित्र लोहमययष्टिधारिणी नरमुण्डमालासे विभूषित और व्याघ्रचर्म पहनी हुई थीं और शरीरमें मांस न होनेसे अतिभयानक आकृति मालूम होरही थी ॥ ७ ॥ उनका मुखमण्डल अति-विस्तृत तथा लोल जिह्वा होनेसे देखतेही भय होता था। इनका नेत्र धसा हुआ और लाल था

टीका—पहली इस दशामें तमोन्मुख रजोगुणको शुद्ध रजोगुण ही नाश कर सकता है । जगत्में भी देखनेमें आता है कि, अनेक तामसिक प्रजाको एक ही राजसिक व्यक्ति दबा देता है । इसी आधिभौतिक दृष्टान्तसे आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्य समझना उचित है ॥ १५-१६ ॥

और इन्होंने गर्जनसे दिङ्मण्डलको परिव्याप्त किया था ॥ ८ ॥ एवं अतिवेगसे आकर असुर सैन्योंको आहत करती हुई भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥ अनन्तर पार्श्वरक्षक, अग्ररक्षक, योद्धा एवं घण्टा आदि आभरण सहित हाथियोंको एक हाथसे पकड़ कर मुखमें डालने लगीं ॥ १० ॥ तथा अश्व सहित अश्वारोही और सारथि सहित रथको एक हाथसे पकड़, मुखमें डालकर अतिभयानक रूपसे चर्व्वण करने लगीं ॥ ११ ॥ किसीका केश पकड़ कर, किसीका गला पकड़ कर तथा पैरके द्वारा आक्रमण करके और किसीको वक्षःस्थल द्वारा कुचल डाला ॥ १२ ॥ तब असुरोंके द्वारा अस्त्र शस्त्र चलाए जाने पर उन्होंने उन सबोंको क्रोधसे मुंहमें डाल कर दांत द्वारा विचूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे बलवान् स्थूलकाय असुर सैन्योंमें किसीको मर्दित, किसीको भक्षित तथा अन्यान्य कितने ही को भगा दिया ॥ १४ ॥ कितने ही को खड्ग द्वारा निहत किया, एवं अन्य कितने ही असुर खट्वाङ्ग द्वारा ताड़ित होकर विनाशको प्राप्त हुए तथा अन्य कुछ असुरोंको दांतके अग्रभागके आघातसे विनष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे क्षणमात्रमें ही असुर सैन्योंको नष्ट होते देख चण्ड अतिभीषण कालीकी ओर धावित हुआ ॥ १६ ॥ अनन्तर महासुर चण्डने भी अतिभीषण बाण वर्षण करके भीषणनयना कालीको आच्छन्न कर दिया, मुण्डासुरने भी चक्र फेंक कर उनको ढांक दिया ॥ १७ ॥ उस समय असुरके शरसमूह देवीके मुखमण्डलमें प्रविष्ट होकर मेघमें प्रविष्ट बहु सूर्य्यबिम्बके समान सुशोभित होने लगे ॥ १८ ॥ तब

टीका—पहले ही ब्रह्मप्रकृतिके चार स्वरूप अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारण और तुरीयका वर्णन हो चुका है। उनके इन चार रूपोंमेंसे भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी जननी जगदम्बा कारणशक्ति पाश, अङ्कुश, वर और अभयधारिणीका प्रथम तमोमयरूप प्रथम चरित्रमें प्रकाशित होचुका है। उन्हीं महासरस्वती महाकाली महालक्ष्मी रूपिणीकी रजःप्रधान महिमा दूसरे चरित्रमें प्रकाशित हुई है। इस तृतीय चरित्रमें उनकी सत्त्वप्रधान लीलाका वर्णन है। सर्व आश्रयभूता तुरीयाशक्तिके दो स्वरूपोंमेंसे कौशिकी देवी ही देवासुर-संग्राममें लिप्त होती हैं। दूसरे कालिका स्वरूपके साथ इस चरित्रमें वर्णित कालीरूपका सम्बन्ध नहीं समझना उचित है। पूर्व कथित कालिका तुरीया शक्तिभावसे प्रकट हुई थीं, यह चामुण्डा काली युद्धमें कौशिकी देवीके ललाटसे प्रकट हुई है। सत्त्वगुणके प्राधान्यकी अवस्थामें वैराग्यविभूतिसुशोभित तत्त्वज्ञानकी प्रबलावस्था ही इन चामुण्डाकाली देवीका अध्यात्मस्वरूप है। उनकी कृपा होनेपर इन्द्रियलोलुप सब आसुरी सेनायें वाहन सहित उनके कराल वदनमें प्रविष्ट होजाती हैं। यावत् वैषयिक प्रपंच उनका भक्ष्य भी है। तन्त्रोंमें कालिका और चामुण्डा दोनोंका रूप पृथक् पृथक् है। ब्रह्म-शवपर महाकाल, और महाकालको वशीभूत करती हुई उनके वक्षपर स्थित महाकालीका स्वरूप दिखाया गया है एवं चामुण्डाका स्वरूप तो ऊपर वर्णित ही है। ब्रह्मको जड़वत् निश्चेष्ट रखकर अनादि अनन्त महाकालको अपने वशीभूत करके अपने इङ्गितमात्रसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका सृष्टि-स्थिति-लय करानेवाली कालिका देवी हैं। परन्तु यह चामुण्डादेवी अन्तःकरणकी उद्दाम इन्द्रियोन्मुख वृत्तिरूप असुर दलको भक्षण करके जीवको निःश्रेयस प्रदान करने वाली हैं ॥ ६–११ ॥

भीषणनादिनी काली क्रोधसे अतिभयानक शब्द करने लगीं, उससे उनकी भयानक दर्द पंक्तियोंके द्वारा उनका मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठा ॥ १६ ॥ अनन्तर देवी "हुं" ऐसा शब्द करके असि लेकर चण्डासुरकी ओर धावित हुईं तथा बाल खैंचकर तलवारसे उसका शिर काट डाला ॥ २० ॥ चण्डासुरको मृत देखकर मुण्डासुर धावित हुआ, तब देवीने भी खड्ग द्वारा उसको निहत करके पृथिवी पर गिरा दिया ॥ २१ ॥ अनन्तर बचे हुये सैन्य अतिवीर्यशाली चण्ड और मुण्डको निपातित देख कर भयभीत होकर इधर उधर भाग गये ॥ २२ ॥ तब काली चण्ड मुण्डका शिर लेकर भयानक अट्टहास करती हुई चण्डिकाके पास गई और बोली ॥ २३ ॥ मैंने इस युद्धयज्ञमें चण्ड-मुण्ड-नामक महापशु आपको उपहार दिये अब तुम स्वयं शुम्भ निशुम्भको विनाश करोगी ॥ २४ ॥ ऋषि बोले,— देवी चण्डिका चण्ड मुण्डका शिर लेकर आती हुई कालीको देखकर अति मधुर वाक्यसे

टीका—जिस प्रकार कूटस्थ चैतन्यव्यापिनी महादेवीके हुंकारसे धूम्रलोचनका वध हो सकता है, चण्ड मुण्डका वध उस प्रकार नहीं हो सकता है। चण्ड-मुण्डका वध चामुण्डा कालीके द्वारा हो सकता है। आसुरभावजनित राग-द्वेष ही चण्ड मुण्ड नामक असुर हैं। अधिदैवरूपसम्पन्न दैवराज्यके इन दोनों असुरोंका अध्यात्मरूप यही है। काली देवीका अध्यात्मरूप पहले ही कहा गया है, जिसको विचारनेसे यह जाना जाएगा कि, कालीके द्वारा ये कैसे वध्य हैं। राग और द्वेष ये दोनों रज एवं तमोगुणसम्भूत हैं। रज और तमका समन्वय सत्त्वमें होता है। सत्त्वगुणमें ही सृष्टिकी सामञ्जस्य रक्षा होती है। इसी कारण चण्ड और मुण्ड, दोनोंका शिर सत्त्वगुणमयी महादेवीको काली देवीने उपहार दिया है॥२०–२४॥

टीका—उपासना सम्बन्धसे केवल विष्णु और शिवकी उपासना ही शास्त्रसम्मत है। क्योंकि, मुक्तिप्रसङ्गसे इन दोनोंका ही प्राधान्य है। चित् विज्ञानसे सांख्ययोग और सत् विज्ञानसे कर्मयोग इन दोनोंका वर्णन श्रीगीतोपनिषद्में भली भांति पाया जाता है। सांख्ययोगका फल-प्रदाता भगवान् विष्णु और कर्मयोगफल प्रदाता भगवान् शिव हैं। इसीकारण प्रथम चरित्रमें प्रथमका और तीसरे चरित्रमें दूसरेका सम्बन्ध दिखाया गया है। प्रथममें सृष्टिप्रसङ्ग होनेसे विष्णुको स्वयं युद्ध करना पड़ा था, और तीसरे चरित्रमें लय प्रसङ्ग होनेसे शिवजीको केवल सहायक बनना पड़ा था, क्योंकि, पहले चरित्रमें तमोमयी देवीको केवल सहायता लेनी पड़ी थी, एवं इस तीसरे चरित्रमें प्रत्यक्ष रूपसे युद्ध समाप्त करना पड़ा है। इससे भगवान् विष्णु और भगवान् शिवका आध्यात्मिक स्वरूप लक्षित होगा; परन्तु देवताओंके इन अध्यात्म स्वरूपोंसे कोई इनके अधिदैव और अधिभूत स्वरूपों पर अश्रद्धा न करें। इनके अधिदैव स्वरूपसे सप्तशतीगीता दैवी-शक्ति-सम्पन्न हुई है और इन सबका प्रत्यक्ष अधिभूत रूप षष्ठ एवं सप्तम उपासना लोकोंमें भक्तोंके लिये दर्शनीय है। उपासकगण अपने उपासनाबलसे उन लोकोंमें पहुंच कर कृतकृत्य होते हैं। देवासुर-संग्रामका यह प्रबल युद्ध था, इस कारण सब देवताओंकी शक्तियोंको प्रकट होना पड़ा था। उस समय विवेकरूपिणी शिवदूतीने मुक्तिप्रदाता शिवको दौत्य-कार्य्यमें प्रवृत्त किया एवं सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षासे प्रकृति-प्रवाहको सरल करनेके लिये असुरोंको एकबार अन्तिम अवसर दिया कि, वे देवताओंके अधिकारको छोड़ कर अपने अधिकारमें चले जायँ ॥ २६–२७ ॥

बोली ॥ २५–२६ ॥ हे देवि ! तुम चण्ड-मुण्डका मस्तक लेकर मेरे निकट आई हो, अतएव तुम जगत्‌में "चामुण्डा" नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ २७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका
चण्ड-मुण्ड वध नामक सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अट्ठासीवां अध्याय ।

ऋषि बोले,—चण्ड, मुण्ड एवं सैन्योंके नष्ट हो जाने पर प्रतापशाली असुरेश्वर शुम्भने क्रोधित होकर सब असुर सैन्योंको युद्धयात्राके निमित्त उद्योग करनेकी आज्ञा दी ॥ १–३ ॥ अभी षड़शीति दैत्य-सेना बहु सैन्योंसे परिवेष्टित हो अस्त्र शस्त्रसे प्रस्तुत होकर जांय और कम्बुकुल सम्भूत चतुरशीति दैत्य सेना भी अपने सैन्योंसे वेष्टित होकर जायं । कोटिवीर्य्यनामक असुरकुलसम्भूत पचास, धौम्रवंशीय एक सौ दैत्य मेरी आज्ञासे जायं ॥ ४–५ ॥ और कालक, दौर्हृद, मौर्य्य तथा कालकेय असुरगण मेरी आज्ञासे अतिशीघ्र युद्धके लिये सुसज्जित होकर जायं ॥ ६ ॥ प्रवल रूपसे शासन करनेवाला असुर-राज शुम्भ इस प्रकार आज्ञाकी घोषणा करके सहस्रों सैन्योंसे परिवेष्टित होकर चल ॥ ७ ॥ अनन्तर चण्डिकाने शुम्भके उस भयानक सैन्यको देखकर ज्याटङ्कारसे पृथिवी और आकाशको गूञ्जित कर दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब सिंहने भी अतीव गर्ज्जन किया, अम्बिकाने घण्टाध्वनिसे उसको और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥ विस्तृतमुखा कालीने शब्दके द्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त करके भीषण शब्दसे धनु-बाण, सिंह तथा घण्टाके शब्दों-को अभिभूत कर डाला ॥ १० ॥ अनन्तर दैत्यसैन्योंने देवीके शब्दको सुनकर क्रोधित हो देवी, काली तथा उनके सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥ हे भूपते ! इसी समय देवताओंके शत्रु असुरोंके विनाश तथा श्रेष्ठ देवताओंके कल्याणके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्त्ति-केय, विष्णु एवं इन्द्रकी अति बलवीर्य्यशालिनी शक्तियां उन लोगोंके शरीरसे निकल कर तत्तद्रूपमें चण्डिकाके निकट उपस्थित हुईं ॥ १२–१३ ॥ जिस देवताका जो रूप, जैसा भूषण और वाहन है, उसकी शक्ति वैसा ही रूप, भूषण और वाहन सहित असुरोंके साथ युद्ध करनेको आईं ॥ १४ ॥ प्रथमतः अक्षमाला और कमण्डलु धारण करके हंसयुक्त विमान पर आरूढ़ा ब्रह्माकी शक्ति युद्ध क्षेत्रमें आई, जो ब्रह्माणी नामसे अभिहिता होती हैं ॥ १५ ॥ अनन्तर त्रिशूलधारिणी महेश्वरकी शक्ति वृषारूढ़ा होकर युद्धभूमिमें आई, जो सर्पवलय और अर्द्धचन्द्र विभूषिता थीं ॥ १६ ॥ तत्पश्चात कार्त्तिकेय-प्रतिकृति उनकी

शक्ति, हाथमें शक्ति ले मयूर पर सवार होकर आयीं ॥ १७ ॥ तब वैष्णवी शक्ति भी शङ्ख, चक्र, गदा, धनु और खड्गहस्ता हो गरुड़ पर आरूढ़ा होकर वहां आईं ॥ १८ ॥ अनन्तर यज्ञवराहमूर्त्तिधारिणी विष्णुकी शक्ति वराहरूपसे आविर्भूता होकर युद्ध क्षेत्रमें आईं ॥ १९ ॥ नारसिंही शक्ति नृसिंहके समान शरीर धारण करके आईं, इनके केशराजिके आघातसे नक्षत्रमण्डल टूट कर गिरने लगा ॥२०॥ उसी प्रकार इन्द्रशक्ति हाथमें वज्र धारण करती हुई ऐरावत पर आरूढ़ा होकर आईं, इनका सहस्रनेत्र आदि इन्द्रके समान था ॥२१॥ अनन्तर महेश्वर समस्त शक्तियोंके द्वारा परिवेष्टित होकर चण्डिकासे बोले,—हमारी प्रसन्नताके लिये आप इन असुरोंका शीघ्र वध करें ॥ २२ ॥ शिवजीके ऐसा कहते ही देवी चण्डिकाके शरीरसे अतिभयानक अति उग्र उनकी शक्ति आविर्भूत हुई, एवं उनके साथ ही सैकड़ों शिवा (सियाल) उत्पन्न होकर निनाद करने लगीं ॥ २३ ॥ उन्होंने धूम्रवर्ण जटाओंसे विभूषित महादेवजीसे कहा कि, भगवन्! आप दूतरूपसे शुम्भ निशुम्भके निकट जाइये ॥ २४ ॥ और बलगर्वसे गर्वित उस शुम्भ निशुम्भसे तथा युद्धार्थी अन्यान्य दानवोंसे कहिये कि, अब इन्द्र त्रिलोकरक्षा कार्य्यमें नियुक्त हों, देवतागण अपना अपना हविर्भाग ग्रहण करें और तुम लोग यदि जीवन धारण करना चाहते हो, तो शीघ्र ही पातालको चले जाओ ॥ २५—२६ ॥ एवं यदि बलगर्वसे गर्वित होकर युद्ध ही करना चाहते हो, तो शीघ्र ही आवो, तुम लोगोंके मांसके द्वारा हमारे शिवागण तृप्ति लाभ करें ॥ २७ ॥ इस प्रकार देवीने महादेवको दूतरूपसे नियुक्ति किया, इस कारण "शिवदूती" नामसे जगतमें व्याख्यात हुई ॥ २८ ॥ देवीका कथन महादेवके निकट इस प्रकार सुन क्रोधित होकर असुरगण जहाँ अम्बिका विराजमान थीं, वहां उपस्थित हुए ॥२९॥ तदनन्तर प्रथम ही असुरगण क्रोधित हो शर, शक्ति और ऋष्टि अस्त्र देवी पर बरसाने लगे ॥३०॥ तब देवीने असुर निक्षिप्त बाण, शूल चक्र एवं कुठार समूहोंको धनुष्टङ्कार करके बाणके द्वारा अनायास ही छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥ तब काली भी अवशिष्ट असुरोंमें किसीको शूलाघातसे विदीर्ण कर किसीको खट्वाङ्ग द्वारा मर्दित करती हुई शुम्भासुरके सामने विचरण करने लगीं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माणीने भी इधर उधर घूम घूम कर कमण्डलुके जलक्षेपणके द्वारा शत्रुओंको वीर्य्यहीन और निस्तेज करदिया ॥३३॥ माहेश्वरी त्रिशूल, वैष्णवी चक्र, और कार्तिकेयशक्ति शक्तिअस्त्र द्वारा दैत्योंको आहत करने लगीं ॥ ३४ ॥ तब इन्द्रशक्तिने भी वज्रके द्वारा सैकड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर डाला, वे सब रक्तवमन करते हुये पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥ उस समय वाराहमूर्तिने किसीको तुण्डाघात द्वारा किसीको दांत द्वारा और किसीको चक्रके द्वारा विदारित करदिया, इससे वे सब पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३६ ॥ नारसिंही मूर्ति भी सिंहनादके द्वारा दिङ्मण्डलको

परिव्याप्त करके नखों द्वारा कितने ही असुरोंको विदीर्ण एवं अन्य कितने ही महासुरोंको भक्षण करती हुई युद्ध क्षेत्रमें विचरण करने लगीं ॥ ३७ ॥ शिवदूती भी अति-भयानक अट्टहास करती हुई असुरोंको आहत एवं पृथिवी पर गिराकर भक्षण करनेमें तत्पर हुई ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे नाना उपायोंके द्वारा मातृगण महाअसुरोंको विमर्दित करने लगीं, तब दैत्यसेनापतिगण युद्धस्थानसे भाग गये ॥ ३९ ॥ तब माताओंके द्वारा विमर्दित दैत्य-सेनाओंको भागते हुए देखकर महा असुर रक्तवीज अतिक्रोधित होकर युद्ध करने आया ॥ ४० ॥ रक्तवीजके युद्धमें प्रवृत्त होने पर जब उसके शरीरसे रक्तविन्दु गिरने लगा, तत्क्षणात् पृथिवीसे वैसाही एक एक असुर उत्पन्न होने लगा। इस प्रकार रक्तवीजके गदा हाथमें लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करने पर इन्द्रशक्तिने अपने वज्रके द्वारा उसके ऊपर आघात किया, तब उसके देहसे बहुत रक्तस्राव हुआ और उससे रक्तवीजके समान ही आकृति एवं पराक्रमशाली योद्धागण उत्पन्न हुये ॥ ४२-४३ ॥ इसी प्रकार रक्तवीजके देहसे जितने रक्त विन्दु निकले उतने ही रक्तवीजके समान वीर्य्य, बल एवं पराक्रमवाले पुरुष उत्पन्न हुये ॥ ४४ ॥ वे सब पुरुषगण भी अस्त्र-शस्त्र लेकर भयानक रूपसे मातृगणके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ अनन्तर ऐन्द्रीशक्तिके वज्रके द्वारा रक्तवीजका शिर काट डालने पर जैसे रक्त-प्रवाह चला, वैसे ही हजारों असुर उत्पन्न हो गये ॥ ४६ ॥ तब वैष्णवीशक्तिने युद्धक्षेत्रमें चक्रके द्वारा उसको आहत किया, ऐन्द्रीशक्तिने उस असुरेश्वरको गदासे विताड़ित किया ॥ ४७ ॥ वैष्णवीके रक्तवीजको चक्रद्वारा आहत करने पर उसके रक्तप्रवाहसे उसीके समान सहस्र सहस्र महाअसुरोंने उत्पन्न होकर जगत् आच्छन्न कर दिया। तब कौमारी, वाराही तथा माहेश्वरी यथाक्रम शक्ति, खड्ग और त्रिशूलके द्वारा रक्तवीजको आहत करने लगी ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रक्तवीजने भी क्रोधित होकर गदा द्वारा प्रत्येक मातृ-शक्तिको पृथक् पृथक् रूपसे आहत किया ॥ ५० ॥ और स्वयं भी शक्ति, शूलादि द्वारा आहत होनेसे उसके रक्तसे सैकड़ों सैकड़ों असुर उत्पन्न होने लगे ॥ ५१ ॥ उस असुरके रक्तस-म्भूत दैत्योंसे जगत्को परिव्याप्त देखकर देवतागण भयभीत हुये ॥ ५२ ॥ तब देवी चण्डि-काने देवताओंको भयसे उद्विग्न देखकर शीघ्रतासे कालीको कहा,—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ। मेरे शस्त्रके आघात द्वारा रक्तवीजके देहसे रक्त गिरते ही तुम उसको पान करो, एवं जो उत्पन्न हो जांय, उनको भी भक्षण करो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इस प्रकार से भक्षण करती हुई रणक्षेत्रमें तुम्हारे विचरण करने पर शीघ्रही यह दैत्य क्षीणरक्त होकर विनष्ट हो जायगा और तुम्हारे इस प्रकार भक्षण करने पर पुनः अन्य उत्पन्न नहीं होंगे ॥ ५५-५६ ॥ इस प्रकार कालीको कह कर अपने शूलके द्वारा असुरको घात करने लगीं और काली तत्क्षणात् रक्तवीजकी रक्तराशि पान करने लगीं ॥ ५७ ॥ अनन्तर रक्त-

वीज गदा द्वारा चण्डिकाको आघात करने लगा, किन्तु गदाघात-जनित कोई कष्ट उनको नहीं हुआ ॥ ५८ ॥ किन्तु रक्तवीजके आहत होनेसे उसके देहसे रक्त प्रवाहित होने लगा, चामुण्डा जहांका तहीं उसको पान करने लगीं ॥ ५९ ॥ एवं रक्त गिरते गिरते ही मुखमें जो सब असुर उत्पन्न हुये थे, उन लोगोंको भी भक्षण किया और रक्तपान किया। अनन्तर इस प्रकार चामुण्डाके रक्तपान करने पर देवीने शूल, वज्र, बाण, असि तथा ऋष्टि शस्त्र के द्वारा रक्तबीजको निहत किया ॥ ६०-६१ ॥ हे राजन्! इस प्रकार रक्तवीज शस्त्रोंके द्वारा आहत हो, रक्तशून्य होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ६२ ॥ हे नृप! उस समय देवगण रक्तवीजको मृत देखकर परमानन्दको प्राप्त हुए, मातृगण भी रक्तपानमें मत्त होकर नृत्य करने लगीं ॥ ६३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका रक्तवीज वध नामका अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुवा।

टीका—चामुण्डा काली देवीके जैसे चण्ड-मुण्ड वध्य हैं, ऐसे ही रक्तवीजके वधमें भी उनकी सहायता प्रधान है। यह पहले ही कहा गया है कि, सप्तशतीगीता अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत तीनों भावोंकी प्रकाशिका है, इसका प्रत्येक प्रकरण त्रिभावात्मक है। उसी शैलीके अनुसार असुर रक्तवीजका भी त्रिभावात्मक स्वरूप निश्चित है। रक्तवीजका अध्यात्मस्वरूप समझनेके लिये पूज्यपाद महर्षि भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनका संस्कारप्रकरण समझने योग्य है। कर्ममीमांसादर्शनने संस्कारके दो भेद किये हैं, यथा, स्वाभाविक और अस्वाभाविक। स्वाभाविक संस्कार एक है और अस्वाभाविक संस्कार अनन्त हैं। स्वाभाविकसंस्कार मुक्तिदेने वाला है, अस्वाभाविक संस्कार वन्धन दशाको स्थायी रखनेवाला है। अस्वाभाविक संस्कारके एक संस्कारसे अनन्त संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। केवल तत्त्वज्ञानके द्वारा वासनाका नाश होकर अस्वाभाविक संस्कारका नाश होता है। जैववासना-जनित अस्वाभाविक कर्म-वीज संस्कार ही रक्तवीजका आध्यात्मिक स्वरूप है। रक्तवीजका रक्त जबतक पृथिवी पर गिरेगा, प्रत्येक रक्तविन्दुरूपी वीजसे नवीन वासना-जनित नवीन संस्कार उत्पन्न होता हुआ नवीन नवीन रक्तवीजकी उत्पत्ति होती रहेगी। भोगके स्थायी होने और आवागमनचक्रके नियमित चलते रहनेका यही कारण है। यदि तत्त्वज्ञानकी सहायतासे अन्तःकरणमें उस संस्कारका संग्रह होना बन्द होजाय और तत्त्वज्ञानसे मनोनाश होकर नवीन वासना संग्रहीत न होने पावे तभी रक्तवीजका नाश सम्भव है, देवासुर-संग्राममें चण्डिका देवीकी सहायतासे रक्तवीजके परास्त होनेका एवं मृत्युका यही रहस्य है। चण्ड-मुण्डको कालीदेवीने स्वयं मारा था और रक्तवीजके मृत्युमें परम सहायक हुई थीं। राग-द्वेषका नाश तत्त्वज्ञानसे हो सकता है, परन्तु दृढ़ अभिनिवेश-जनित जैव वासनासे उत्पन्न अस्वाभाविक संस्कार विद्यादेवीकी कृपासे और तत्त्वज्ञानकी सहायताके विना नष्ट नहीं हो सकता है। यही औपनिषदिक रहस्य है ॥ ६३ ॥

नवासीवां अध्याय ।

—०:*:०—

राजा बोले,—भगवन् ! आपने रक्तबीजके वधविषक उपाख्यानके साथ यह जो देवीका माहात्म्य वर्णन किया, सो अति आश्चर्यजनक है, अतः रक्तबीजके मरने पर अति क्रोधी शुम्भ निशुम्भने जो कुछ किया सो मैं पुनः आपके निकट सुनना चाहता हूं ॥१-३॥ ऋषि बोले,—रक्तबीज एवं अन्यान्य दैत्योंके युद्धमें निहत होने पर शुम्भ निशुम्भ भयानक क्रोधित हो उठे ॥ ४-५ ॥ अनन्तर निशुम्भ प्रधान प्रधान असुरसेनाओंको साथ लेकर अत्यन्त क्रोधित हो युद्धके लिये धावित हुआ, तब उसके आगे-पीछे एवं पार्श्वमें अनेक प्रधान असुरगण क्रोधसे ओष्ठ चबाते हुये देवीको मारनेके लिये गये ॥ ६-७ ॥ उस समय शुम्भासुर भी अपने सैन्योंसे परिवेष्टित होकर माताओंके साथ युद्ध करके चण्डिकाको मारनेके लिये आया ॥ ८ ॥ अनन्तर देवीके साथ शुम्भ-निशुम्भका तुमुल संग्राम आरम्भ होने पर शुम्भ निशुम्भ दोनों असुर बरसनेवाले मेघके समान बाणवर्षण करने लगे ॥ ९ ॥ चण्डिका भी शरसमूहके द्वारा असुरनिक्षिप्त शरसमूहोंको छिन्न करके असुरराज शुम्भ निशुम्भके अङ्गमें आघात करने लगीं ॥ १० ॥ तब निशुम्भने शाणित खड्ग और प्रभाशाली चर्मफलक (ढाल) लेकर देवीवाहन सिंहको आघात किया, सिंहके आहत होने पर देवीने खुरप्र नामक अस्त्रके द्वारा निशुम्भका उत्तम असि एवं अष्टचन्द्र (मणिमय चक्र विशेष) विभूषित चर्मफलकको छिन्न कर दिया ॥ ११-१२ ॥ उस असुरने खड्ग और चर्मके छिन्न होने पर शक्ति अस्त्र निक्षेप किया, देवीने उसको सामने आते न आते ही चक्रके द्वारा दो खण्ड कर डाला ॥ १३ ॥ तब क्रोधित होकर निशुम्भने शूलास्त्र फेंका, देवीने उसको मुष्टिके आघातसे विचूर्ण कर डाला, तब उस असुरने गदा घुमा कर चण्डिकाके ऊपर फेंका, देवीने भी तत्क्षण त्रिशूलके द्वारा उस गदाको विदीर्ण करके भस्म कर डाला ॥ १४-१५ ॥ अनन्तर वह दैत्य-श्रेष्ठ परशु हाथमें लेकर आ रहा था, देवीने शरसमूहके द्वारा आघात करके उसको पृथिवी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ इस प्रकार भीषण पराक्रमशाली भ्राता निशुम्भके पृथिवी पर गिर जाने पर, शुम्भ अतीव क्रोधित होकर अम्बिकाको निहत करनेके लिये आया ॥ १७ ॥ एवं रथ पर सवार हो अति दीर्घ अष्ट हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध ग्रहण करके समस्त आकाशमण्डलको परिव्याप्त करता हुआ सुशोभित होने लगा ॥ १८ ॥ उस असुरको आते देख देवीने शङ्ख बजाया एवं ज्या तथा धनुका शब्द किया ॥ १९ ॥ और देवीके अपने घण्टाध्वनिके द्वारा समस्त दिशाओंको आपूरित करने पर उस शब्दने दैत्य सैन्योंका तेज नष्ट कर दिया ॥ २० ॥ अनन्तर

सिंहने महानाद करके आकाश, पृथिवी एवं दशों दिशाओंको पूर्ण कर दिया। यह शब्द ऐसा भयानक हुआ कि, उससे हस्तीसमूहकी मत्तता विदूरित हो गयी ॥ २१ ॥ तदनन्तर कालीने आकाशमें कूद कर पृथिवीमें आघात किया, उसके शब्दसे पूर्वकृत धनु-ज्या आदिकी ध्वनि तिरोहित हो गयी, तब शिवदूती शत्रुओंका अशुभसूचक अट्टाट्ट-हास्य करने लगीं, उससे असुरोंके भयभीत होने पर शुम्भ क्रोधित हो उठा ॥ २२-२३ ॥ तब देवी अम्बिका शुम्भसे बोलीं,—"रे दुरात्मन्! ठहर ठहर" ऐसा बोलते ही देवताओंने आकाशसे जय जय कार किया ॥ २४ ॥ अनन्तर शुम्भने आकर शक्ति अस्त्र फेंका, इसकी शिखा अति भयानक थी, इस अस्त्रको वह्निराशिके समान आते हुए देख देवीने महोल्का शक्तिके द्वारा उसको निरस्त कर दिया ॥ २५ ॥ तब शुम्भके सिंहनादसे स्वर्ग-मर्त्य-पाताल परिव्याप्त हो गया, उसके भयानक प्रतिशब्दने इस शब्दको भी अभिभूत कर लिया ॥ २६ ॥ उस समय देवीके शतसहस्र शर समूहोंके द्वारा शुम्भ-निक्षिप्त शरोंको छिन्न कर देने पर शुम्भने भी देवीके द्वारा फेंके हुए शरोंको विच्छिन्न कर दिया ॥ २७ ॥ अनन्तर चण्डिकाने क्रुद्ध होकर शूलके द्वारा शुम्भको आघात किया, तब वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ तब निशुम्भ सचेत होकर धनुर्धारण पूर्वक शरके द्वारा देवी, काली एवं उनके सिंहको आघात करने लगा ॥ २९ ॥ एवं दश सहस्र बाहु विस्तार करके चक्र अस्त्रसे चण्डिकाको आच्छन्न कर दिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाने अपने शरके द्वारा उस चक्र तथा शर समूहोंको छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥ तब निशुम्भ

टीका—श्रीसप्तशती गीताके तीनों चरित्रोंमेंसे यह अन्तिम चरित्र अद्भुत रहस्योंसे पूर्ण है। यद्यपि सप्तशती गीताके प्रत्येक शब्द अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपी त्रिविध भावोंसे पूर्ण हैं, जिसका दिग्दर्शन स्थान स्थान पर कराया गया है, परन्तु सब स्थलोंका त्रिविध अर्थ ऐसे छोटे ग्रंथमें नहीं हो सकता है और न साधारण अधिकारी उसकी धारणा ही कर सकते हैं। सप्तशतीगीताका प्रथमचरित्र तमोमयरूपका प्रकाशक होनेके कारण और तममें क्रिया नहीं होनेके कारण वहांकी क्रिया भगवान् विष्णुसे हुई थी। दूसरे चरित्रमें शुद्धसत्वमें तमोगुणको परास्त करनेके निमित्त रजका सम्बन्ध स्थापनके लिये "गर्ज्ज गर्ज्ज क्षणं मूढ़! मधु यावत् पिबाम्यहम्" आदि अलौकिक भावोंका समावेश कैसा किया गया है, सो भावुकगण समझ सकेंगे। इस तीसरे चरित्रमें भगवतीकी निर्लिप्तताके साथ ही साथ क्रियाशीलता अति अलौकिक रीतिसे प्रकट हुई है; क्योंकि, यह चरित्र सत्वप्रधान चरित्र है। इस चरित्रमें पहले ही भगवती कालिका देवीका हिमालयमें स्थिर रहना और कौशिकी देवीका युद्ध करना पुनः उनसे चामुण्डा काली देवीका एवं शिवदूतीका निकलना कैसा गंभीर विज्ञानका प्रकाशक है, सो पहले कहा गया है। राग, द्वेष और अभिनिवेश-जनित-वासना-जाल एवं अस्वाभाविक संस्कार नाश होने पर भी अविद्या और अस्मिता रह जाती है। यह अविद्या और अस्मिता शुम्भ निशुम्भका अध्यात्मस्वरूप है। अविद्या और अस्मिता इन दोनोंको ज्ञानजननी भगवती विद्याके अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता है। यही इस युद्ध प्रकरणका गूढ़ रहस्य है ॥ ६-२१ ॥

दैत्य सेनाओंसे परिवेष्टित होकर गदा ले अतिशीघ्रतासे चण्डिकाको मारनेके लिये धावित हुआ ॥ ३२ ॥ चण्डिकाने भी निशुम्भको आते हुए देख शोणित खड्गके द्वारा उसकी गदा छिन्न कर डाली, पुनः उस असुरने शूलास्त्र ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंके शत्रु निशुम्भको शूल लेकर आते देख चण्डिकाने तुरत शूल फेंककर उसके हृदयको विद्ध किया ॥ ३४ ॥ उस समय निशुम्भका हृदय विद्ध होने पर उसके हृदयसे महावीर्यशाली, अतिबलशाली एक दूसरा असुर "ठहरो" ऐसा कहता हुआ निकला ॥ ३५ ॥ देवीने भी हँसकर खड्गके द्वारा उसका शिर काट डाला, तब वह असुर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सिंह भयानक दन्तपंक्तियोंके द्वारा गलेको चबाता हुआ असुरोंको भक्षण करने लगा एवं काली तथा शिवदूतीने अन्यान्य असुरोंको भक्षण कर लिया ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् कुछ असुर कौमारीकी शक्तिके द्वारा विताड़ित होकर भाग गये, अन्य कुछ असुरोंको ब्रह्माणीने मन्त्रपूत जलके द्वारा भगा दिया ॥ ३८ ॥ एवं अन्य असुरगण माहेश्वरीके त्रिशूल द्वारा विदीर्ण होकर भूमि पर गिर पड़े, कितने ही को वाराहीने तुण्डाघात करके विचूर्ण कर दिया ॥ ३९ ॥ तब वैष्णवीशक्तिने चक्र द्वारा दैत्योंको खण्ड खण्ड कर डाला, इन्द्रशक्तिने भी अन्यान्य असुरोंको वज्रसे खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ४० ॥ तब कितने ही असुर युद्धमें मारे गये, कितने ही युद्धक्षेत्रसे भाग गये, अन्य कुछ काली, शिवदूती एवं सिंहके द्वारा भक्षित हुये ॥ ४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका निशुम्भ वध नामक नवासीवां अध्याय समाप्त हुवा ।

टीका—श्रीजगदम्बाका यह तीसरा लीलाचरित अधिदैव सम्बन्धसे जैसा एकाधारमें मधुर एवं भीषण है, उसी प्रकार इसका अध्यात्म-स्वरूप समाधिगम्य रहस्योंसे पूर्ण है। इस युद्धका अध्यात्म-स्वरूप वस्तुतः विद्या और अविद्याका युद्ध है। राग, द्वेष और अभिनिवेश, तत्त्वज्ञान एवं विवेकसे नष्ट होजाने पर भी जबतक अस्मिता और अविद्याका विलय नहीं होता, तबतक कदापि कृत-कृत्यता नहीं होती है। अविद्या एवं अस्मिता इन दोनोंको विद्याकी सहायतासे ही नाश करके जीवन्मुक्तगण कृतकृत्य होते हैं। अस्मिताका नाश पहले होता है, क्योंकि, अविद्याका वह प्रथम कार्य्य तथा सहयोगी है। इसकारण शुम्भ ज्येष्ट भ्राता और निशुम्भ लघु भ्राता है। अस्मिताका बल इतना अधिक है कि, तत्त्वज्ञानकी सहायतासे जब ज्ञानी व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त करने लगता है तो, उस समय प्रथम "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा भान होता है। उस समय भी "मैं" रूपी अस्मिता अपना बल दिखाती है और विद्यादेवीके कार्य्यको रोकती है। उस समय विद्याके प्रभावसे "मैं ब्रह्म हूं" इस अस्मिताके लोकातीत भाव तकको नष्ट करना पड़ता है, तब स्वस्वरूपका उदय होने पाता है। निशुम्भके भीतरसे उसके मरते समय एक दूसरे पुरुषका निकलना और देवीको रोकना यह उसी भावका प्रकाशक है। निशुम्भके साथ उस पुरुष तकको मार डालनेसे तब अस्मिताका नाश होता है और देवीके निशुम्भवधकी क्रिया सुसिद्ध होती है ॥ ३४-३६ ॥

नब्बे अध्याय ।

—०:*:०—

ऋषि बोले, प्राणके समान प्रिय अपने भ्राता निशुम्भको एवं समस्त सैन्योंको निहत देखकर शुम्भ क्रोधित हो बोला, ॥ १-२ ॥ हे दुर्गे ! तुम बलका गर्व मत करो क्योंकि, तुम तो अन्यान्य दैवी शक्तियोंकी सहायतासे अभिमानिनी होकर युद्ध करती हो ॥ ३ ॥ देवी बोली,-रे दुष्ट! इस जगत्में मेरे सिवाय दूसरा कौन है, मैं एकही हूं देख, ये मेरी विभूतियां अभी मुझमें प्रवेश करती हैं ॥ ४-५ ॥ देवीके ऐसा कहते ही ब्रह्माणी आदि समस्त-शक्तियां उनके शरीरमें प्रवेश कर गयीं, तब अम्बिका अकेली विराजमान हुई ॥ ६ ॥ देवी बोली, मेरी जिन विभूतियोंका विस्तार हुआ था, उन सबोंको मैंने समेट लिया, अब मैं अकेली हूं तुम स्थिर होकर युद्ध करो ॥ ७-८ ॥ ऋषि बोले, अनन्तर देखनेवाले देव और असुरोंकी भयप्रद देवी और शुम्भका युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ ९-१० ॥ वे दोनों तीक्ष्ण भयंकर शस्त्रास्त्रकी सहायतासे पुनः भीषण युद्ध करने लगे, उससे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सब लोक भयभीत हो गया ॥ ११ ॥ अम्बिकाने जिन दिव्यास्त्रोंको फेंका, दैत्येन्द्रने उन सबोंको उनके प्रतिघात-कारी शस्त्रोंके द्वारा काट डाला ॥ १२ ॥ तब परमेश्वरी देवीने भी असुरनिक्षिप्त दिव्या-स्त्रोंको हुङ्कारादिके द्वारा अनायास ही काट डाला ॥ १३ ॥ अनन्तर उस असुरने सैकड़ों शरोंके द्वारा देवीको आच्छन्न कर दिया, तब देवीने भी क्रोधित होकर बाणके द्वारा उसके धनुको छिन्न कर दिया ॥ १४ ॥ धनु छिन्न होनेपर दैत्यश्रेष्ठने शक्ति अस्त्र लिया, उसको भी उसके हाथमें ही चक्रके द्वारा देवीने काट डाला ॥ १५ ॥ तब खड्ग एवं प्रभाशाली चर्मफलक लेकर दैत्यराज शुम्भके देवीके प्रति धावित होने पर चण्डिकाने अतिशीघ्र धनुपसे शाणित बाण छोड़ कर सूर्य्य किरणके समान प्रभाविशिष्ट खड्ग एवं चर्मफलक काट डाला ॥ १६-१७ ॥ तब अश्व, रथ, धनु, एवं सारथी हीन होकर उस

टीका—ब्रह्मशक्तिकी चार अवस्थाओंका वर्णन पहले ही आ चुका है। वह शक्ति एक और अद्वितीय होने पर भी, उसकी सूक्ष्म और स्थूलशक्तिके अनेक भेद हैं। सूक्ष्म-जगद्-व्यापिनी सूक्ष्म शक्तिके प्रधानतः त्रिगुणके अनुसार तीन भेद होने पर भी विभिन्न दैवपदोंकी क्रियाशक्तिके विचारसे उसके अनेक भेद हैं। वे ही सब शक्तियां इस युद्धमें प्रकट हुई थीं और अब उसी एक अद्वितीय शक्तिमें सब प्रवेश कर गयीं। वस्तुतः शुम्भ और देवीका युद्ध अविद्या और विद्याका युद्ध है। दोनोंका विलास जबतक व्यक्तावस्थामें रहता है, तबतक आसुरी सेना और देवीकी सेनाका प्राकट्य रहता है। उधर निशुम्भके मरते ही असुरोंकी विभूतियां परास्त और नष्ट हो गयीं एवं दैवी विभूतियां जो विभिन्न शक्तिरूपसे प्रकट हुई थीं, सो समिट कर अन्तर्मुख होती हुई देवीमें प्रवेश कर गयीं ॥ ६ ॥

असुरने चण्डिकाको मारनेके लिये भयानक मुद्गर लिया ॥ १८ ॥ शाणित वाण द्वारा देवीके उस मुद्गरको काट डालने पर वह असुर अतिशीघ्रतासे मुष्टि बान्धकर चण्डिकाकी ओर दौड़ा एवं मुष्टिसे देवीके हृदयमें मारा, देवीने भी तलसे उस असुरकी छातीमें मारा; उस तलाघातसे वह दैत्यराज पृथिवी पर गिर पड़ा एवं तत्क्षण पुनः उठ खड़ा हुआ ॥१६-२१॥ अनन्तर देवीको उठा कर आकाशमें उड़ गया, वहां निराधार होकर भी देवी युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥ तब दोनों आकाशमें ठहर कर ही बाहुयुद्ध करने लगे जिसको देख सिद्ध एवं मुनिगण विस्मित हो गये ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे बहुत देर तक बाहुयुद्ध करके अम्बिकाने उसको ऊपर घुमाकर जमीन पर फेंक दिया ॥ २४ ॥ तब जमीन पर गिर कर वह असुर मुष्टि बान्ध चण्डिकाको मारनेके लिये धावित हुआ ॥ २५ ॥ उसको प्रायः निकट आये हुये देखकर चण्डिकाने शूलसे उसका हृदय विदीर्ण करके पृथिवी पर गिरा दिया ॥ २६ ॥ देवीके शूलसे विक्षत होकर वह असुर प्राण परित्याग करके पृथिवी पर गिर पड़ा, उससे सब पर्वत एवं सप्तद्वीप सहित पृथिवी कांप उठी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे उस दुरात्माके मरनेसे सब प्रसन्न हुए; सारा जगत् शान्त एवं विकाररहित हुआ, आकाश निर्मल हो गया, मेघ सब उल्कारहित होकर अनिष्टसूचक भाव परित्याग कर शान्त हो गये, नदियां पूर्ववत् यथास्थान प्रवाहित होने लगीं ॥ २८-२६ ॥ देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं गन्धर्वगण मधुर संगीत गाने लगे ॥ ३० ॥ अन्यान्य गन्धर्वगण बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ३१ ॥ वायु अनुकूल होकर बहने लगा, सूर्य भगवान् मलीनता रहित हो अपनी सुन्दर ज्योति विस्तार करने लगे एवं अग्निदेव शान्तिसे शान्त दिग्-मण्डलको शब्दायित करके प्रज्वलित होने लगे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका शुम्भवध नामक नव्वे अध्याय समाप्त हुआ।

टीका—अविद्याका विलय केवल एकमात्र पराविद्याके प्रभावसे ही हो सकता है। ज्ञानजननी विद्याके उदय होने पर अज्ञान-प्रसविनी अविद्या, प्रकाशके सम्मुख अन्धकारके समान लय हो जाती है। अविद्याके दूर करनेमें और कोई भी दैवीशक्ति कार्य्यकारिणी नहीं होती है। इस कारण सब दैवीविभूतियोंके महादेवीमें प्रवेश कर जानेपर देवी और शुम्भका यह अन्तिम युद्ध इस प्रकार प्रबलरूपसे हुआ तथा अन्तमें परास्त होकर शुम्भकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पूर्व देवीको आकाशमें बलपूर्वक ले जाना और वहां युद्ध करना यह नास्तिकतासूचक रहस्य है। सर्वव्यापक ब्रह्मसत्ताका अनुभव कराना विद्याका कार्य्य है, परन्तु सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूपको अनुभव करते समय अविद्याके प्रभावसे सर्वव्यापक आकाशतत्त्वमें अटक कर शून्यवादी होजाना, यह स्वस्वरूपके अनुभवमें सबसे बड़ा और अन्तिम विघ्न है। देवासुर-संग्रामके आकाश युद्धका यही आध्यात्मिक रहस्य है ॥ २२-२७ ॥

एक्यानबे अध्याय।

ऋषिने कहा,—देवीके द्वारा असुरराज शुम्भके मारे जाने पर इन्द्रसहित सब देवतागण अग्निको अग्रणी बनाकर देवी कात्यायनीकी स्तुति करने लगे, उस समय अभीष्ट लाभ करके पुनः राज्यादि प्राप्तिकी आशासे उनका मुखकमल प्रफुल्लित था ॥१-२॥ (देवतागण बोले) हे देवि! शरणागतका दुःख विनाशकरनेवालि! तुम प्रसन्न हो। हे मातः! आप सारे जगत् पर प्रसन्न हों, हे विश्वेश्वरि! तुम चराचर जगत्की अधीश्वरी हो, तुम प्रसन्न हो एवं जगत्की रक्षा करो ॥ ३ ॥ तुम्हीं पृथिवी रूपसे अवस्थान करती हो इसलिये एकमात्र तुमही जगत्की आधारभूता हो, पुनः तुम्हीं जलरूपसे अवस्थान करके अखिल जगत्को कृतार्थ करती हो, तुम्हारी शक्तिको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता है ॥ ४ ॥ तुम असीम शक्तिविशिष्टा वैष्णवी शक्ति हो, तुम जगत्की बीजभूता हो, तुम्हींने मायारूपसे समस्त जगत्को मुग्ध कर रक्खा है, तुम्हारी प्रसन्नता ही मुक्तिका कारण है ॥ ५ ॥ सब प्रकारकी विद्याएं तुम्हारी ही भेद हैं, जगत्की सारी स्त्रियां तुम्हारी ही अंशभूता हैं। हे अम्बे! अकेले तुम्हींने सारे जगत्को परिव्याप्त कर रक्खा है, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुमको श्रेष्ठ कैसे कहा जाय, क्योंकि तुम एक अद्वितीय हो, किसीके साथ तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती है, तुम स्तुतिसे अतीत हो ॥ ६ ॥ तुम सर्वस्वरूपा हो, तुम स्वर्ग एवं मुक्ति प्रदानमें समर्थ हो, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है, हमारे पास ऐसी क्या शब्दसम्पत्ति है, जिससे तुम्हारी स्तुति कर सकें? हे नारायणि! तुम सबके हृदयमें बुद्धिरूपसे विराजमान हो। हे देवि! स्वर्गापवर्गदे! (धर्मरूपिणी होनेसे स्वर्ग एवं मोक्षदेनेवाली!) तुमको प्रणाम है ॥ ८ ॥ (कालरूपिणी होनेसे) कला काष्ठादिरूपसे (अठारह निमेषमें जितना समय लगता है, उसको काष्ठा कहते हैं और तीस काष्ठाकी एक कला होती है।) आप जगत्का परिणाम कराती हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् प्रतिमुहूर्त्त परिणामको प्राप्त करता रहता है। तुम जगत्के

टीका—देवताओंमें भी चारों वर्ण हैं। अग्नि ब्राह्मण वर्णके देवता हैं। अग्निकी ही सहायतासे देवतागण स्थूलराज्यसे यज्ञभागादि प्राप्त करते हैं। इसी कारण उपासना कार्यमें अग्निको अग्रवर्त्ती करके देवताओंका स्तुति करना युक्तियुक्त है ॥ २ ॥

टीका—ज्ञानप्राप्तिके यावत् उपाय इस स्थल पर विद्या शब्दसे अभिहित हुये हैं। संसारप्रपञ्चको स्थायी रखनेका कारण स्त्री है। उसको यावत् शक्तियोंकी आधार होनेसे विभूति मानकर ऐसा कहा गया है ॥ ६ ॥

ध्वंसकार्यमें निपुण हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ६ ॥ तुम सब मंगलोंकी मूलभूता हो, तुम कल्याणरूपिणी हो । तुम सब प्रकारकी सिद्धिप्रदान करनेमें समर्थ हो, हे शरण्ये ! त्रिनयनि ! गौरि ! नारायणि ! आपको प्रणाम है ॥१०॥ हे नित्ये ! तुम सृष्टि-स्थिति-प्रलय-विधायिनि शक्ति हो, तुम गुणोंकी आश्रयभूता हो पुनः गुणमयी भी हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥११॥ हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागतकी दीनतासे रक्षा करती हो, तुम सबका दुःख नाश करनेमें समर्थ हो, तुमको प्रणाम है ॥ १२ ॥ तुम्हीं ब्रह्माणी रूपसे हंसयान पर आरोहण करती हो और कुशके द्वारा अभिमन्त्रित जल छिड़कती हो । हे देवि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है, ॥१३॥ तुम्हींने माहेश्वरी रूपसे त्रिशूल, अर्द्धचन्द्र एवं सर्पवलय धारण किया है । हे महावृषभवाहिनि ! देवि ! तुमको प्रणाम है ॥१४॥ तुम्हीं मयूर—कुक्कुटोंसे परिवेष्टिता महाशक्तिधारिणी कौमारी कार्त्तिकेय शक्तिरूपसे अवस्थान करती हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥१५॥ तुम शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गरूप दिव्य आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्ति हो, तुम प्रसन्न हो, तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥ तुमने वाराह रूपसे उग्र महाचक्र धारण किया है, तुमने दातोंसे पृथिवीका उद्धार किया है, हे वाराहरूप-धारिणि ! हे शिवे ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १७ ॥ तुम भयानक नृसिंहरूपधारण करके दैत्योंके विनाश करनेमें तत्पर हुई थी, तुम त्रिलोककी रक्षा करनेवाली हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १८ ॥ तुम किरीटधारिणी हो, तुम महावज्रको धारण करनेवाली हो, तुम सहस्र नेत्रवाली हो, हे ऐन्द्रि ! तुमने वृत्रासुरको मारा था, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥ तुमने शिवदूती रूपसे दैत्योंकी वृहत् सेनाओंका विनाश किया है, तुम भीषणरूपिणी हो, महाशब्दकारिणी हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २० ॥ हे चामुण्डे ! तुम्हारा वदनमण्डल दंतपंक्तियों द्वारा अतिभयानक प्रतीत होता है, तुमने नर-मुण्ड-माल धारण किया है, हे मुण्डासुरनाशिनि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २१ ॥ तुम्हीं श्रीरूपिणी हो, तुम्हीं लज्जारूपिणी हो, तुम स्वरूपप्रकाशिनी महाविद्या हो, तुम्हीं श्रद्धा, पुष्टि एवं स्वधारूपिणी हो, तुम प्रलयरात्रि हो, हे महामाये ! हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २२ ॥ तुम मेधारूपिणी हो, तुम्हीं सरस्वती हो, तुम सर्वोत्कृष्टा हो, ऐश्वर्य्यरूपिणी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, पुनः तुम्हीं संहाररूपिणी हो, तुम शासन करनेवाली नियमन शीला हो, हे ईश्वरि ! तुम प्रसन्न हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २३ ॥ तुम जगत्‌रूपिणी हो, पुनः सबकी ईश्वरी हो, सारी शक्तियां, तुम्हारी शक्तियां हैं, हे देवि ! दुर्गे ! हम लोगोंकी भयसे रक्षा करो, तुमको प्रणाम है ॥ २४ ॥ तीन नेत्रोंसे विभूषित अतिरमणीय तुम्हारा मुखमण्डल समस्त प्राणियोंसे हमारी रक्षा करे, हे कात्यायनि ! तुमको प्रणाम है ॥ २५ ॥ तुमने जिस त्रिशूलके द्वारा समस्त असुरकुलका संहार

किया है, उस भयानक ज्वालाविशिष्ट एवं अतितीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा हम लोगोंकी भयसे रक्षा करो, हे भद्रकालि! तुमको प्रणाम है ॥ २६ ॥ जिस घंटाने ध्वनिके द्वारा जगत्को परिव्याप्त करके दैत्योंका तेज विनष्ट किया है, माता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करती है, वह उसी प्रकार हम लोगोंकी पापसे रक्षा करे ॥ २७ ॥ असुरोंके रक्त एवं मेदरूपी पंकसे चर्चित तुम्हारे हस्तकमलमें विराजमान खड्ग हमारा कल्याण करे। हे चण्डिके! अतिप्रणतभावसे तुमको प्रणाम करते हैं ॥ २८ ॥ तुम प्रसन्न होकर सब प्रकारके रोगोंका नाश करती हो, एवं अप्रसन्न होकर सब अभीष्टोंका नाश करती हो। जो तुम्हारे आश्रित होते हैं, उनको किसी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना नहीं होती, एवं वे स्वयं सबका आश्रयस्थल बन जाते हैं ॥ २९ ॥ हे देवि! अम्बिके! नानारूपसे आविर्भूता होकर यह जो तुमने आज असुरोंका विनाश किया है, सो तुम्हारे सिवाय और कौन कर सकता है ॥ ३० ॥ सब विद्याओं, सब शास्त्रों एवं विवेक उत्पादक आदि वाक्यरूपी वेद-वाक्योंकी एकमात्र तुम्हीं कारणभूता हो। पुनः तुम्हीं इस अन्धकारमय ममताके गड्ढेमें जगत्को बार बार भ्रमण कराती हो ॥ ३१ ॥ जहां पर राक्षसगण, तीक्ष्ण विषवाले विषधरगण, शत्रुगण, दस्यु सैन्य, (डाकुओंकी सेना) एवं दावानल (वनकी अग्नि) से प्राणियोंको क्लेश पहुँचता है, वहां तुम्ही एकमात्र सहायिका बनकर जगत्की रक्षा करती हो। पुनः समुद्रमें भी सबकी तुम्हीं रक्षा करती हो ॥ ३२ ॥ तुम्हीं जगदीश्वरी हो, तुम्हीं जगत्का पालन करती हो,पुनः तुम्हीं विश्वात्मिकारूपसे विश्वको धारण करती हो। जो तुम्हारा यथार्थ भक्त होता है, वह ब्रह्मादिकोंका भी वन्दनीय होता है। तुम सबकी आश्रयभूता हो ॥ ३३ ॥ हे देवि! इस समय जिस प्रकार तुमने शत्रुओंका विनाश करके जगत्की रक्षा की है, इसी प्रकार प्रसन्न होकर हम लोगोंकी शत्रुभयसे सर्वदा रक्षा करो। जगत्की सारी बाधाएँ एवं उल्कापातादि जनित महा उपसर्गों (दुर्भिक्ष महामारिभय आदि) का नाश करो ॥ ३४ ॥ हे देवि! तुम जगत्के दुःखको नाश करनेवाली हो, शरणागत पर प्रसन्न हो, त्रिलोकवासी सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम सबकी वरदात्री हो ॥ ३५ ॥ देवी बोली,-हे देवतागण! मैं वर दूंगी, तुम लोग जिस वरकी इच्छा हो, उसकी प्रार्थना करो, जगत् कल्याणके लिये मैं वही प्रदान करती हूं ॥ ३६-३७ ॥ देवतागण बोले,-हे सर्वेश्वरि! तुमने इस समय जिस प्रकार शत्रुओंका नाश करके जगत्-

---

टीका—जिस प्रकार अन्तर्जगत्में देवता और असुर, इस प्रकारसे दो प्रकारकी सृष्टिकी प्रधानता है; उसी प्रकार मनुष्य लोकमें तीन प्रकारकी सृष्टिका वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है। परोपकारमें निरत मनुष्य देवश्रेणी, इन्द्रियसेवामें निरत मनुष्य असुरश्रेणी और दूसरेको दुःख पहुंचानेमें जिनकी रुचि हो, वे राक्षस श्रेणीके कहे जाते हैं ॥ ३२ ॥

की रक्षा की है इसी प्रकार सर्वदा आविर्भूता होकर हमारे शत्रुओंका नाश करके त्रिलोक-की सब बाधाएं दूर करोगी ॥ ३८-३९ ॥ देवी बोली,-वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें पुनः शुम्भ निशुम्भ नामक अन्य महासुर उत्पन्न होंगे ॥ ४०-४१ ॥ मैं नन्दगोपके यहां

टीका—अबतक देवतागण केवल अपने सूक्ष्म लोककी बाधाओंको दूर करनेमें ही व्यग्र चित्त थे। सूक्ष्म दैवराज्यकी बाधा दूर होने पर उन्होंने ऊर्ध्व अधः और मध्यरूपी त्रिलोककी बाधा दूर करनेके विचारसे श्रीजगदम्बाकी स्तुतिकी थी। इससे पूर्व जो कुछ लीलाका वर्णन है, सो ऊर्ध्व दैवराज्यकी अधिदैव लीलाका ही वर्णन समझने योग्य है। पूर्वकथित सब युद्ध सूक्ष्म लोकमें ही हुए थे। आगे जिन लीलाओंका वर्णन आवेगा, उसका मध्यलोक रूपी मृत्युलोकसे ही सम्बन्ध समझा जाय। इस स्थल पर जिज्ञासुओंको यह शंका हो सकती है कि, पूर्वकथित सब चरित्र देवलोकके चरित्र हैं, तो पुनः अनेक तीर्थ स्थानोंमें देवासुर संग्रामोंके नाम कैसे पाये जाते हैं ? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान यह है कि अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीनोंका नित्य अस्तित्व रहनेके कारण और तीनोंका परस्पर सम्बन्ध रहनेके कारण दैवराज्यके साथ मृत्युलोकके तीर्थोंका सम्बन्ध देखा गया है। उसी प्रकार एक तीर्थका सम्बन्ध अनेक तीर्थोंके साथ मिलता है। यथा, काशीमें सब तीर्थोंकी प्रतिकृति मिलती है। इसी प्रकार सूक्ष्मराज्यके अधिदैव पीठोंका सम्बन्ध मृत्युलोकके भी विशेष विशेष तीर्थोंमें पाया जाता है। जिस प्रकार उपासनापीठके अनेक भेद हैं, उसी प्रकार तीर्थ भी एक प्रकारके पीठ हैं और उनके भेद भी अनेक हैं। प्राणमय-कोषमें आवर्त्त उत्पन्न होकर देवयोनियोंके ठहरनेका जो स्थान बनता है, उसको पीठ कहते हैं, जैसे मृत्युलोकके जीवोंके ठहरनेके लिये पृथिवी है और बैठनेके लिये आसन है, उसी प्रकार सूक्ष्म देवलोकवासी आत्माओंके ठहरनेका स्थान पीठ है। सनातनधर्ममें विभिन्न प्रकारके पीठोंके अवलम्बनसे उपासना की जाती है। जिन अवलम्बनोंसे उपासना-पीठ बनता हैं, उनके सोलह प्रधान भेद हैं। यथा—अग्नि, जल, हृदय,मूर्द्धा, मूर्ति, यन्त्र, चित्र आदि। तीर्थ आदि भी इसी प्रकार पार्थिवपीठके अन्तर्गत हैं, इनके भी कई भेद हैं। जीव-यान्त्रिक पीठका उदाहरण बटुक और कुमारी पूजा है। सहज-पीठका उदाहरण स्त्रीपुरुषके संगम अवस्थाको समझने योग्य है, जिसमें स्वाभाविकरूपसे जीवोंका आकर्षण होकर गर्भाधान होता है। स्थूलयान्त्रिक पीठका उदाहरण शव-साधनादिको समझना उचित है। इस प्रकारसे पीठके अनेक भेद हैं। चिरस्थायी पीठोंमें और विशिष्ट तीर्थादिमें पीठाभिमानी देवता नित्य रूपसे रहा करते हैं और उनसे बड़े बड़े कार्य्य सिद्ध होते हैं। अतः पीठके साथ दैव जगत्का सम्बन्ध स्थापित रहता है। इस कारण तीर्थोंके साथ देवासुर-संग्रामके सम्बन्धका वर्णन पाया जाता है ॥ ३९ ॥

टीका—तीस क्षणका एक अहोरात्र अर्थात् दिन होता है। इसी हिसाबसे मास, राशि आदि निर्णय द्वारा वर्षका हिसाब बान्धा गया है। पुनः मानुषी वर्षके हिसावसे एक ब्रह्माण्डकी आयुका निर्णय किया गया है। मनुष्यके २२३९४८८००००००००००००००००० वर्षोंकी एक ब्रह्माण्डकी आयु होती है। ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड श्रीजगदम्बा अपने एक निमेषमें बनाती हैं और लय करती है। ऊपर लिखित संख्या ही भगवान् रुद्रकी आयु समझी जाती है। एक रुद्रकी आयुमें विष्णुपदके कई भगवान् विष्णु बदल जाते हैं। उनकी आयु मनुष्य वर्षके ९३३१२००००००००००००० वर्षोंकी होती है। एक भगवान् विष्णुकी आयुमें ब्रह्मापदके कई पदधारी बदल जाते हैं। एक भगवान् ब्रह्माकी आयु ३११०४००००००००००० मनुष्य वर्षकी होती है। ब्रह्माजीके प्रत्येक दिनमें सृष्टि होती है और प्रत्येक रातमें प्रलय होता है। भगवान् ब्रह्माकी रात्रिमें नीचेके सात लोक और ऊपरके तीन लोक तथा

यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होउँगी एवं विन्ध्याचलमें रहकर उन दोनोंका विनाश करूंगी ॥४२॥ पुनः अतिभयानक-रूपसे भूमण्डल पर अवतीर्ण होकर वैप्रचित्त नामक दानवोंका विनाश करूंगी ॥ ४३ ॥ उन भयानक दानवोंको भक्षण करनेसे हमारी दंतपंक्तियां अनारके पुष्पके समान रक्तवर्ण हो जाएंगी, तब स्वर्गमें देवतागण एवं मृत्युलोकमें मनुष्यगण मुझको 'रक्तदंतिका' नामसे अभिहित करेंगे ॥ ४४-४५ ॥ पुनः सौ वर्षों तक अनावृष्टि होनेसे पृथिवीके जलरहित होने पर प्राणिगण मेरी स्तुति करेंगे तब मैं विना गर्भके ही उत्पन्न हूंगी ॥ ४६ ॥ एवं सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, उससे मनुष्यगण मुझे 'शताक्षी' नामसे कीर्तित करेंगे ॥ ४७ ॥ हे देवतागण ! उस समय मैं अपने देहसे नाना प्रकारके शाक उत्पन्न कर सबका पालन करूंगी, उन शाकोंके द्वारा वृष्टि होने तक प्राणिगण जीवित रहेंगे, इसलिये उस समय मैं 'शाकंभरी' नामसे विख्यात हूंगी ॥ ४८-४९ ॥ उस समय दुर्गम नामक महासुरका भी विनाश करूँगी, इसलिये मैं दुर्गादेवी नामसे विख्यात हूंगी । पुनः मैं अतिभयानक रूपसे हिमालयमें अवतीर्ण होकर मुनियोंकी रक्षाके निमित्त राक्षसोंका विनाश करूँगी, तब मुनिगण नम्रतासे मेरी स्तुति करेंगे, उस समय मैं 'भीमादेवी' नामसे प्रसिद्ध हूंगी ॥ ५०-५२ ॥ अनन्तर अरुण नामक महासुर जब त्रिलोकमें अत्यन्त बाधा उत्पन्न करेगा, तब मैं असंख्येय षट्पद युक्त भ्रमररूप धारण करके

भगवान् विष्णु की रात्रिमें नीचेके सातलोक और ऊपरके चारलोक तक नष्ट होजाते हैं और भगवान् रुद्रकी रात्रिमें ऊपरके पांच लोक तक लय हो जाते हैं, एवं रुद्रके लय होजाने पर सम्पूर्ण चतुर्दश भुवन जगत्के कारण ईश्वरमें लय को प्राप्त होता है । प्रथम चरित्रमें जो सृष्टिका वर्णन है, वह ब्रह्माण्डकी आदि सृष्टिका है, उक्त प्रकार त्रिदेवकी रात्रिके अवसानकी खण्ड सृष्टिका नहीं है । एक भगवान् ब्रह्माकी आयुमें कई मनु बदलते हैं । मनुष्यके ४३२०००० वर्षका एक महायुग, अर्थात् चौकड़ी युग होता है । इस प्रकारके ७१ महायुगोंके अनन्तर एक मनुका परिवर्त्तन होता है, वही मन्वन्तर कहाता है । कालके इसी हिसाबसे वर्त्तमान मन्वन्तरमें श्रीजगदम्बा पुनः स्थूलरूपमें वृजमें प्रकट हुई थीं । जैसे ब्रह्मचक्रके द्वारा द्वितीय-चरित्रके वर्णनके अनुसार देवलोकमें प्रकट हुई थीं उसी प्रकार पूर्णावतार श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रकी रक्षाके निमित्तसे श्रीजगदम्बा वृजमें प्रकट हुई थीं और दैववाणी द्वारा प्रवल असुरावतार कंसको भीति एवं कृपा दिखाई थी तृतीय चरित्रके समय जैसा जगन्माताका स्थूलपीठ हिमालय बना था, उसी प्रकार इस समय स्थूलपीट विन्ध्याचल बना था । द्वितीय शुम्भनिशुम्भका वध जगदम्बा अपने अधिदैव स्वरूपसे सूक्ष्म दैवलोकमें करेंगी । जैसे मधुकैटभ वध, महिषासुर वध, और प्रथम शुम्भनिशुंभ वध रूपी पहलेके तीनों चरित्र सूक्ष्म-देवलोक व्यापी है, उसी प्रकार यह चरित्र मृत्युलोक और देवलोक उभयसे सम्बन्ध रखने वाला है । क्योंकि द्वितीय शुम्भ-निशुम्भ वधका देवलोकसे सम्बन्ध है तथा श्रीभगवान् कृष्णकी रक्षा-कार्य्यका सम्बन्ध मृत्युलोकसे है । श्रीजगदम्बाके चरित्रके विकाशसे ही भगवान् श्रीकृष्णके पूर्णावतारत्वकी सिद्धि होती है और इसी प्रकार इस युगमें विन्ध्याचलकी सिद्धिप्रदायनी शक्ति शास्त्र द्वारा प्रमाणित है ॥ ४०-४२ ॥

इस महासुरको मारूंगी, उस समय लोग भ्रामरी रूपसे मेरी स्तुति करेंगे ॥ ५३-५४ ॥ इस प्रकारसे जब जब दानवोंके द्वारा पीड़ा उत्पन्न होगी तब तब मैं अवतीर्ण होकर शत्रुओंका विनाश करूंगी ॥ ५५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका नारायणीस्तुति नामक एक्यानवे अध्याय समाप्त हुआ ।

बानबेवां अध्याय ।

—०:*:०—

देवी बोली,—जो व्यक्ति संयतचित्त होकर इन स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करेगा, उसकी सब बाधायें मैं दूर करूंगी ॥१-२॥ जो व्यक्ति मधु-कैटभ एवं महिषासुरवधके विषयका मेरा चरित्र गान करेंगे एवं जो अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथिमें भक्ति-पूर्वक हमारे इस श्रेष्ठ माहात्म्यका श्रवण करेंगे, उनको कदापि पाप, पापजनित विपत्तियां एवं बान्धवोंके साथ वियोग नहीं होगा ॥ ३-५ ॥ एवं उनको शत्रुभय, दस्युभय, राजभय नहीं होगा तथा शस्त्र, अग्नि एवं जलवेगसे कदापि उनको भय उत्पन्न नहीं होगा ॥ ६ ॥ इसलिये सर्वदा मेरा यह माहात्म्य सावधानचित्तसे भक्तिपूर्वक श्रवण तथा पाठ करना चाहिये, यह बहुत कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥ मेरा यह माहात्म्य पाठ और श्रवण करनेसे महामारीजनित नानाप्रकारका उपसर्ग एवं आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक सब त्रिविध उत्पात नाशको प्राप्त

टीका—ये सब चरित्र भविष्यत्‌में प्रकट होने योग्य और मृत्युलोकसे सम्बन्ध रखने वाले हैं ॥ ४३-५५ ॥

टीका—सृष्टिरूपी दृश्य प्रपंचमें विद्यावैभव और अविद्यावैभव दोनोंकी आवश्यकता अपने अपने अधिकारमें विद्यमान है । यदि अविद्याका वैभव न रहे तो जीवसृष्टि असम्भव हो जाय, भोगसम्बन्धीय लोकसमूहका अस्तित्व न रहे और कर्मशृंखला नष्ट हो जाय । उसी प्रकार विद्याकी कृपा न रहे, तो मुक्तिकी तो बात ही क्या है, लोग ईश्वरके अस्तित्वको भी भूल जाँय । इस कारण मानना ही पड़ेगा कि, जैसे उजियालेके विना अन्धेरा और अन्धेरेके विना उजियालेका अस्तित्व नहीं जाना जा सकता, वैसे ही दोनोंके अधिकारका रहना अवश्य सम्भावी है । इसी प्रकार प्राकृतिक क्रियाकी सामञ्जस्यरक्षा अथवा ब्रह्माण्डकी सुरक्षाके लिये देवता और असुरको अपने अपने अधिकारमें ही रहना उचित है । असुरगण जब देवताओंके अधिकारको छीनते हैं, तभी प्रकृतिराज्यमें असामंजस्य होकर ब्रह्माण्डमें विप्लव उपस्थित होता है । वह विप्लव केवल स्वर्गलोकमें ही नहीं होता, पितृलोक, मृत्युलोक आदिमें भी होता है, क्योंकि, यम, इन्द्र आदि सबके अधिकार छिन जाते हैं । उन अधिकारोंके छिन जानेसे मृत्युलोकमें भी आसुरी प्रकोप बढ़जाता है । अतः इस प्रकारसे विप्लव होनेसे जब सूक्ष्मराज्यमें असामञ्जस्य होता है, तब स्थूल जगत्‌में असामञ्जस्य हो जाता है और उस समय जगदम्बाके आविर्भूत होनेकी आवश्यकता होती है ॥ ५९ ॥

होते हैं ॥ ८ ॥ जिस गृहमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक् रूपसे नित्य पाठ किया जाता है, उस गृहको मैं कदापि परित्याग नहीं करती हूं, उस स्थानमें सर्वदा मेरा सान्निध्य रहता है ॥९॥ बलिदान, पूजा होमयज्ञादि तथा अन्यान्य महोत्सवोंमें मेरे ये सब माहात्म्य पाठ तथा श्रवण करने चाहिये ॥ १० ॥ जानकर या विना जाने भी मेरा यह माहात्म्य पाठ पूर्वक बलि, पूजा तथा होमादि करने पर मैं प्रेमपूर्वक ग्रहण करती हूं ॥ ११ ॥ शरत्कालमें प्रति-वर्ष जो मेरी महापूजा होती है, उसमें भक्तिपूर्वक मेरा यह माहात्म्य सुनने पर मनुष्य मेरी कृपासे सब दुःखोंसे रहित होकर धन धान्य पुत्रादिका आनन्द प्राप्त करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १२-१३ ॥ मेरा यह माहात्म्य तथा मंगलमयी उत्पत्ति एवं मेरा युद्ध-सम्बन्धी पराक्रम श्रवण करनेसे मनुष्यगण भयरहित होते हैं ॥ १४ ॥ मेरा यह माहात्म्य सुननेवाले व्यक्तियोंका शत्रु नाशको प्राप्त होता है, दिन प्रति दिन आनन्द एवं वंश वृद्धि-को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ सब प्रकारकी शान्तिक्रियामें, दुःस्वप्न देखनेमें एवं भयानक ग्रह पीड़ा आदिमें मेरा यह महात्म्य श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥ ऐसा होनेसे सब उपसर्गोंकी शान्ति होती है, ग्रह-पीड़ा दूर होती है और दुःस्वप्न देखने पर वह सुस्वप्न में परिणत होता है ॥ १७ ॥ मेरा यह माहात्म्य पूतनादि बालग्रहसे पीड़ित बालकोंकी रक्षा करता है एवं मनुष्योंमें परस्पर विवाद होने पर उसको शान्त करके मित्रता उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥ यह माहात्म्य दुर्वृत्तोंकी बलहानि करता है तथा पाठ मात्रसे ही राक्षस, भूत और पिशाच भाग जाते हैं ॥ १९ ॥ अधिक क्या कहा जाय, मेरे ये सब माहात्म्य पाठ करनेसे मेरा सान्निध्य तक प्राप्त होता है ॥ २० ॥ पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्राह्मण भोजन, होम, अभिषेकसामग्री और अन्यान्य भोज्य द्रव्यादि प्रदान पूर्वक एक वर्ष तक प्रति दिन पूजा करनेसे मैं जितना प्रसन्न होती हूं केवल एक वार यह चरित्र पाठ करने या सुननेसे मैं उतना ही प्रसन्न होती हूं ॥ २१-२२ ॥ मेरे जन्मविषयक उपाख्यान श्रवण करनेसे पाप विनाशको प्राप्त होता है, आरोग्य प्राप्त होता है, एवं सब हिंस्र प्राणियों-से रक्षा होती है ॥ २३ ॥ युद्धके समयका दुष्टदैत्योंके विनाशसम्बन्धीय जो मेरा चरित्र है, उसको श्रवण करनेसे शत्रुजनित भय कभी नहीं होता है ॥ २४ ॥ हे देवतागण ! तुम लोगोंने, ब्रह्मर्षियोंने एवं स्वयं ब्रह्माने जो मेरी स्तुति की है, उसको श्रवण करनेसे सद्बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥ अरण्यमें, प्रान्तरमें, डाकुओंके द्वारा घिरे जाने पर, शत्रुओंके द्वारा आक्रान्त होने पर, सिंह व्याघ्रके द्वारा आक्रान्त होने पर, क्रुद्ध राजाके द्वारा बांधनेकी आज्ञा देने पर या बन्ध जाने पर महासमुद्रमें नौका पर जाते हुए वायु द्वारा चालित होने पर, भयानक युद्धक्षेत्रमें, भीषण शस्त्र प्रहार होनेके समय या अन्यान्य सब कष्टोंके समय यदि मेरा यह चरित्र स्मरण करे, तो सब संकट दूर होते हैं ॥ २६-२९ ॥ मेरा यह

चरित्र स्मरण करनेसे मेरे प्रभाव द्वारा सिंहादि हिंस्र जन्तु, दस्यु एवं शत्रुगण दूरसे भाग जाते हैं ॥ ३० ॥ ऋषि बोले,—प्रचण्डपराक्रमा भगवती चण्डिका इस प्रकार कह कर देवताओंको देखते देखते वहीं अन्तर्हिता हो गई ॥ ३१–३२ ॥ तब देवतागण भी शत्रुरहित होकर निर्भय हो पूर्ववत् अपने अपने अधिकारमें अधिष्ठित हुए एवं अपना अपना यज्ञ भाग ग्रहण करने लगे ॥ ३३ ॥ अवशिष्ट दैत्यगण भी देवीके द्वारा देवताओंके शत्रु जगत्-विध्वंसी अतुलपराक्रमशाली शुम्भ निशुम्भके मारे जाने पर पातालमें चले गये ॥ ३४–३५ ॥ हे भूपते ! राजन् ! देवी भगवती नित्या सनातनी होने पर भी इस प्रकार बार बार अवतीर्ण होकर जगत्का पालन किया करती हैं ॥ ३६ ॥ उन्हीं देवीके द्वारा यह विश्वब्रह्माण्ड मोहित हो रहा है, वही जगत्की सृष्टि करती हैं; उन्हींके निकट प्रार्थना करने पर वे प्रसन्न हो ज्ञान एवं सम्पत्ति प्रदान किया करती हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन् ! इन्हीं महाकालीके द्वारा जगत् परिव्याप्त हो रहा है। प्रलयके समय वे ही महामारी रूपसे अवस्थान करके सबको अपनेमें मिला लेती हैं, पुनः सृष्टिके समय वे ही सबकी सृष्टि करती हैं, फिर वे ही स्थितिके समय सबका पालन करती हैं, वे नित्या, सनातनी हैं। वृद्धिके समय वृद्धि प्रदान करनेमें समर्थ लक्ष्मीरूपिणी हैं पुनः अभावके

टीका—श्रीसप्तशती गीतारूपी ब्रह्ममयी सर्वशक्तिमती भगवती जगदम्बाका अलौकिक चरित्र किस प्रकारसे मन्त्ररूप है और कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशाली है, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले कराया गया है। ऐसे मन्त्रोंसे श्रद्धावान् साधक सब कुछ लाभ कर सकता है। अतः ऊपर लिखित फलश्रुतियोंके विषयमें कुछ सन्देह ही नहीं है। केवल मन्त्रशुद्धि, क्रियाशुद्धि और द्रव्यशुद्धि सहित साधनकी अपेक्षा है और जिस सिद्धिका श्रद्धा मूलमन्त्र है ॥ १–३० ॥

टीका—आकर्षणरूपी रज और विकर्षणरूपी तमोगुणका जहां समन्वय होता है, वहीं जगत् धारक और रक्षक सत्त्वगुणका उदय होता है। वही स्थिति कारक भगवान् विष्णुका अधिष्ठानपद है। सत्त्वगुणकी प्रधानता ही धर्मका स्वरूप है। जब देवताओंकी शक्ति और असुरोंकी शक्तिका समन्वय होता है, अर्थात् दोनों ही अपने अपने स्थान और पद पर रहते हैं, तभी धर्मका अभ्युत्थान रहता है, जब असुरोंका प्राबल्य होकर यह सामञ्जस्य नष्ट होजाता है, तभी धर्मकी ग्लानि होजाती है। देवताओंके जय होनेसे धर्मविप्लवकारी आसुरी शक्ति नष्ट हुई, देवता और असुर अपने अपने लोकोंमें प्रतिष्ठित रहे, धर्मका अभ्युत्थान हुआ, तब देवताओंको यज्ञभाग मिलने लगा। धर्म और यज्ञ ये दोनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं। अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना, सृष्टिकी सामञ्जस्य रक्षा और धर्माधर्मरूपी कर्मकी सदसत्गतिकी सुरक्षा ही यज्ञभागका अध्यात्म स्वरूप है। मृत्युलोकमें पुरुषधर्म, नारीधर्म, प्रवृत्तिधर्म, निवृत्तिधर्म, साधारण धर्म, विशेषधर्म और वर्णाश्रमधर्म सदाचार आदिकी सुरक्षा होनेसे देवादिदेव भगवान् विष्णु प्रमुख सब देवता प्रसन्न और सम्वर्द्धित होते हैं। यही यज्ञभाग प्राप्तिका अधिदैव स्वरूप है और श्रौत–स्मार्त यज्ञकी सहायतासे देवताओंके मुखरूपी अग्निदेवके द्वारा यज्ञभागका देवलोकमें पहुंचना, यह यज्ञभागका अधिभूत स्वरूप है ॥३३॥

समय अलक्ष्मीरूपा होकर विनाश किया करती हैं ॥ ३८-४० ॥ पुष्प, धूप एवं गन्धादि द्वारा पूजा एवं स्तुति करनेसे वे धर्मबुद्धि, धन एवं पुत्रादि प्रदान करती हैं ॥ ४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका फलस्तुति नामक बानवे अध्याय समाप्त हुआ।

तिरानबेवां अध्याय।

ऋषिने कहा, हे भूप! ये सब देवी माहात्म्य मैंने तुमसे कहा। वे देवी ऐसी प्रभावशालिनी हैं, जिन्होंने इस जगत्को धारण कर रक्खा है ॥ १-२ ॥ उन विष्णुमाया देवीके प्रसन्न होनेसे ही स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ उन्होंने ही तुमको, इस वैश्यको, तथा अन्यान्य विवेकी, अविवेकी सबको मोहित किया था, अब भी कर रही हैं और भविष्यत्में भी करेंगी ॥ ४ ॥ हे महाराज! तुमलोग उन्हीं परमेश्वरीकी शरण लो, उनकी आराधना करनेसे वेही भोग, स्वर्ग, एवं अपवर्ग-मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय बोले,-राज्य हार जानेसे दुःखी नरपति सुरथ एवं अति मोहसे निर्विण्ण-मानस मेधस नामक वैश्य मुनिकी इस प्रकारकी बात सुनकर अति प्रभाव सम्पन्न, व्रतधारी उन ऋषिको प्रणाम करके तपस्या करने चले गये ॥ ६-८ ॥ और जगन्माताके दर्शनकी अभिलाषासे नदीके तीर पर देवीसूक्त जप करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ९ ॥ उन दोनोंने उस नदीके तीर पर देवीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर पुष्प, धूप एवं होमादि द्वारा पूजा करना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥ वे कभी निराहार रहकर, कभी फलमूलका आहार कर सब इन्द्रियोंका निग्रह करके मनको एकमात्र भगवतीमें लीन करके एवं अपने शरीरके रक्तका बलिदान

टीका—ब्रह्मशक्ति महामाया जो अघटनघटनापटीयसी हैं और सर्वशक्तिमयी हैं वे अविद्यारूप धारण करके जीवको मोहित करती हैं, एवं विद्यारूप धारण करके जीवका मोह दूर करती हैं। उसीसे एक ओर बन्धन, दूसरी ओर मुक्ति, एक ओर अज्ञान, दूसरी ओर ज्ञान, एक ओर अन्धकार दूसरी ओर प्रकाश, एक ओर आसुरी शक्ति दूसरी ओर दैवी शक्ति इत्यादि परस्पर विरोधी भाव सृष्टिमें दिखाई पड़ते हैं। सप्तशती गीताके प्रथम चरित्रमें एक ओर मधु-कैटभको मोहित करके उनके मुखसे वर दिलवा देना और दूसरी ओर भगवान् विष्णुके शरीरसे निकल कर उनको प्रकृतिस्थ कर देना महामायाके द्वन्द्व भावोंका परिचायक है ॥ २-४ ॥

टीका—वेद और शास्त्रोंमें सोलह दिव्यदेश माने गये हैं, मूर्ति अर्थात् प्रतिमा उन्हींमेंसे एक है। सर्वव्यापक जगत्पिता परमात्माकी चाहे पुरुषरूपसे उपासना करे, चाहे स्त्रीरूपसे उपासना करे, सनातनधर्मी उपासक इन्हीं जल, अग्नि, पट, मूर्ति, मण्डल, यन्त्र, हृदय, मूर्द्धा आदि सोलह दिव्य देशोंमें

करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥ इसी प्रकार तीन वर्ष तक संयतात्मा हो आराधना करने पर जगद्धात्री चण्डिका देवी प्रसन्न हो सामने आकर बोलीं ॥ १२ ॥ हे भूप ! हे कुलनन्दन वैश्य ! मैं प्रसन्न हूं तुम दोनोंके जो जो प्रार्थनीय हों, उन्हें मुझसे प्राप्त करो, मैं सबकुछ प्रदान करती हूँ ॥ १३–१४ ॥ मार्कण्डेयने कहा, तब राजा सुरथने जन्मान्तरमें भी अक्षुण्ण राजत्व एवं इस जगत्‌में शत्रुओंका विनाश करके राज्य पानेकी प्रार्थना की। अनन्तर समाधि नामक उस वैश्यने संसारके प्रति अत्यन्त विरक्त होनेसे पुत्र, कलत्र एवं देहादिमें आसक्तिके नाश करने वाले परमज्ञानके लिये प्रार्थना की ॥ १५–१७ ॥ देवी बोली, हे भूपते ! तुम शीघ्रही अपना राज्य प्राप्त करोगे, एवं शत्रुओंका नाश करके निर्विघ्न भावसे उसका भोग करोगे ॥ १८–२० ॥ पुनः शरीरान्तके बाद सूर्य्यदेवसे जन्मलाभ करके पृथिवीमें सावर्णि नामक मनुरूपसे प्रसिद्ध होगे ॥ २१–२२ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ ! तुमने मेरे निकट

से किसीको पीठ बनाकर उपासना किया करते हैं। वे मूर्तिकी उपासना नहीं करते हैं, मूर्तिमें पीठ बनाकर उपासना करते हैं। जैसे गौके सारे शरीरमें रसरूपसे दुग्ध रहने पर भी स्तन द्वारा ही वह क्षरित होता है, उसी प्रकार चिन्मयी ब्रह्मशक्ति सर्वव्यापक होने पर भी दिव्यदेशोंमें आविर्भूत होती हैं। यही मूर्तिपूजाका रहस्य है, यही मूर्तिपूजाकी परम उपकारिता और महत्त्व है। बलिके विषयमें भी शंका होसकती है। इसलिये समाधान किया जाता है। उपासनाके निमित्त त्यागविशेषको बलि कहते हैं। बलिका अध्यात्मरूप आत्मबलि, उसका अधिदैवस्वरूप सूक्ष्म और स्थूल सम्बन्धनीय त्याग तथा उसका अधिभूत रूप पशु बलि अथवा उसका अनुकल्प कूष्माण्डबलि आदि है। मनुष्य प्रवृत्तिके वश होकर मांस आदि भक्षणकी इच्छा रखता है। ऐसे अधिकारीके लिये पशुबलि विहित है। मध्यम अधिकारीके लिये अधिदैव बलि विहित है, जैसा कि इन दोनोंने किया था अथवा काम क्रोधादिकी बलि जो मानस पूजामें किया जाता है। उत्तम अधिकारीके लिये अध्यात्म बलि अर्थात् जैव अहंकारकी बलि देना शास्त्रसम्मत है ॥ १०–११ ॥

टीका—ऐशगतिका वर्णन पहले संक्षेपरूपसे आचुका है। मनुष्यलोकके उन्नत जीव जो कृष्णगतिके फंदेसे बच जाते हैं, दूसरी ओर उन्नत वासना रहनेसे उच्च देवपदके अधिकारी होते हैं, वे इस प्रकारसे मनुत्व, इन्द्रत्व आदि देवपदोंको प्राप्त करते हैं, और क्रमशः आगे बढ़ते बढ़ते ऐशगति द्वारा मुक्त होजाते हैं, जैसा कि, पहले कहा गया है। पुण्यात्मा मनुष्य साधारणतः पितृलोक, भुवर्लोक आदिमें जाकर स्वर्गसुखभोग करके पुनः आवागमनचक्रसे मृत्युलोकमें आजाते हैं। यह साधारण कृष्णगतिकी अवस्था है, परन्तु जो जीव उग्र तपस्याके बलसे उन्नत देवपदके अधिकारी बन जाते हैं, उन्हींकी गतिको ऐशगति कहते हैं और उनका पुनः मृत्युलोकमें लौटना प्रायः नहीं होता है। राजा सुरथको यही गति प्राप्त हुई है। वे मनुपद प्राप्त करेंगे और क्रमशः श्रीजगदम्बाकी कृपासे ऐशगतिके द्वारा अग्रसर होंगे। यह मनुष्यके लिये असाधारण गति है। बड़े शक्तिशाली तथा तपस्वी उपासक ही ऐसी श्रेष्ठगतिको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१–२२ ॥

टीका—समाधि नामक वैश्यका भविष्यत् भी बहुत प्रशंसनीय है। यद्यपि वैश्य जाति तृतीय श्रेणीमें है और वैश्यधर्म अर्थप्रधान होनेसे ये मुक्तिके अधिकारी नहीं होते हैं, परन्तु अपनी उग्र तपस्या

जिस वरकी प्रार्थनाकी है, सो मैंने प्रदान किया; तुमको आत्मज्ञान प्राप्त होगा ॥ २३-२४ ॥
मार्कण्डेय बोले,-इस प्रकारसे उन दोनोंको यथाभिलषित वर प्रदान करके एवं उनके द्वारा

तथा त्यागवृत्ति और उपासनाके बलसे एक जन्ममेंही समाधिने ऐसी उच्चगतिकी प्राप्त की, जो देवताओंको भी दुर्लभ है और वर्णगुरु ब्राह्मणके लिये भी सुलभ नहीं है, क्योंकि आत्मज्ञानका अधिकारी ब्राह्मण चतुर्थ आश्रम अवलम्बन करके अन्तमें मुक्त होता है। पूर्वजन्मार्जित जाति, आयु और भोगके प्राप्तिके द्वारा मनुष्य चाहे किसी वर्णमें जन्म ग्रहण करे, परन्तु कर्म और उपासना, तपस्या और ज्ञानार्जन आदिके द्वारा वह जन्मान्तरमें जैसा चाहे, वैसा ही उन्नत अधिकारोंको प्राप्त कर सकता है। विशेषतः भक्ति और उपासनाकी अलौकिक महाशक्तिका आश्रय लेनेसे किसीको भी निराश होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। यही वेद और शास्त्रका सिद्धान्त है। और यही वर्णाश्रम धर्मका सार्वभौम और उदार विज्ञान है। केवल शरीरके विचारसे उस मनुष्यजन्ममें वैश्यवर समाधिने वैश्यजातिमें जन्मग्रहण करनेपर भी उग्र तपस्या और उपासना द्वारा ऐसी गति प्राप्तकी, जो ब्राह्मणों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। उग्रकर्मा तपस्विगण सूर्यमण्डल भेदन करके जो शुक्ल गतिके द्वारा निर्वाणपदको प्राप्त करते हैं, वैश्यवर समाधिको उससे भी अधिकतर सुविधाकी अवस्था सहजगतिकी प्राप्ति हुई थी। इसी मृत्यु लोकमें गुरु कृपासे आत्मज्ञान प्राप्त करके जो जीवन्मुक्तदशा प्राप्त होती है, उसीको सहजगति कहते हैं। इस गतिको प्राप्तकर लेनेसे आत्माराम जीवन्मुक्तको पुनः स्थूल शरीरके पातके अनन्तर कहीं भी जाना नहीं पड़ता। जगज्जननी श्रीमहामयाकी कृपा ही इसका कारण है ॥ २३—२४ ॥

टीकाः--सप्तशती गीता कलियुगका सर्वोत्तम मन्त्र ग्रन्थ है। सर्वशक्तिप्रद और परमकल्याणदायी गीता ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक शब्दकी शक्ति और सत्यता अवश्यसम्भावी है। इस मन्त्रगीतामें बहुधा एक शंका विद्वज्जन किया करते हैं। इस गीताग्रन्थके प्रारम्भमें "सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः" और अन्तमें "सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः" इस प्रकार परस्परविरोधी वचन हैं। यह परस्पर विरोधी वचन आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकारके विद्वानोंको सर्वदा खटकते हैं। वैदिक सिद्धान्तको न माननेवाले आधिभौतिक दृष्टियुक्त पण्डितगण तो ऐसे वचनोंपर स्वतः ही शङ्का किया करते हैं, किन्तु वैदिक सिद्धान्तके माननेवाले आस्तिक विद्वानोंके चित्तमें भी ये परस्परविरोधी वचन-समूह बहुत ही सन्देह उत्पन्न किया करते हैं। ऐसा होना भी स्वाभाविक है। क्योंकि दैवीजगत्का स्वरूप, दैवी जगत्की श्रृंखला और दैवीजगत्के रहस्यको जाननेवाले तत्त्वदर्शी और आन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगिराजोंका अभाव सभी समयमें हुआ करता है। विशेषतः इस घोर कलियुगमें भूगोलके दो चार पन्ने पढ़ लेनेसे ही और पृथ्वीका नकशा देख लेनेसे ही विद्वज्जन अपनेको यथेष्ट ज्ञानी और सृष्टिका पारदर्शी मानने लगते हैं। इस टीका ग्रन्थमें बार बार दिखाया गया है कि, अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्डोदरी विश्वजननी महामायाके विराट् उदारमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भासमान रहनेपर भी हम केवल हमारे ब्रह्माण्डका ही बहुत थोड़ा अंश जान सकते हैं। हमारे ब्रह्माण्डमें केवल एक चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा यह मृत्युलोक है और बाकी सब हिस्सा देवलोक है। जिस देवलोकको हम अपने स्थूल नेत्रों द्वारा न देख सकते हैं और न हमारी स्थूल बुद्धि उनका अस्तित्व समझ सकती है। परन्तु इस ब्रह्माण्डके भूर्भुव आदि सात ऊर्द्ध्वलोक और अतल वितल आदि सात अधोलोक और उनके अवान्तर अनेकानेक सूक्ष्म दिव्य-लोकोंका रहना शास्त्रोंसे प्रमाणित है और दार्शनिक दिव्य दृष्टिसे देखने योग्य भी है। उन्हीं दिव्यलोकोंका

भक्तिपूर्वक स्तुता हो देवी तत्क्षणात् अन्तर्हित हो गईं ॥ २५-२७ ॥ इस प्रकार क्षत्रियोंमें

प्रभाव और उनके देवपदधारियोंका आधिपत्य हमारे स्थूल मृत्युलोक पर सदा पड़ा करता है। जिसको स्थूलदर्शी साधारण मानवगण अपनी आधिभौतिक दृष्टिसे कदापि अनुभव करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यही कारण है कि, इस आधिभौतिक युगमें सूक्ष्म दैवी राज्यपर विश्वास एकबार ही नहीं रहा है। इसका प्रधान कारण यथार्थ शिक्षाका अभाव है। पूज्यपाद महर्षियोंने शिक्षाके तीन प्रधान विभाग कहे हैं। एक शिल्प सम्बन्धी शिक्षा, दूसरी पदार्थ विद्या अर्थात् साइन्स सम्बन्धी शिक्षा और तीसरी दार्शनिक अथवा वैदिक शिक्षा। प्रकृतिके स्थूल साम्राज्यके अङ्गोंकी नकल करनेको शिल्प कहते हैं। प्राकृतिक शक्तिके अङ्गोंपर आधिपत्य करनेको पदार्थविद्या, साइन्स अथवा विज्ञान कहते हैं और अन्तरराज्य, दैवीसाम्राज्य और आत्मा-अनात्माकी गति तथा स्वरूपका स्वानुभव आदि अलौकिक योगदृष्टिसे ज्ञात करानेवाली दार्शनिक शिक्षा है। प्राचीन कालमें ये तीनों शिक्षाएँ भारतवर्षमें थीं। भेद इतना ही था कि, उस समय केवल जीवनयात्रा निर्वाहके लिये जितनी शिल्पशिक्षा या जितनी विज्ञानशिक्षाकी आवश्यकता थी, उतनी ही करके शेष पुरुषार्थ वे दार्शनिक शिक्षामें लगाते थे। इस समय वैदिक और दार्शनिक शिक्षा एकबार ही लुप्त हो गयी है और शेष दोनों शिक्षाओंपर ही सबकी दृष्टि आकृष्ट हो गयी है। इसी कारण आजकलके विद्वज्जन सूक्ष्म अन्तरराज्य और दैवीशृंखलाको एकबार ही भूल रहे हैं। यही कारण है कि, हमारे वेदों और पुराणोंके स्वरूप और शास्त्रोंके वचनोंकी सत्यतापर सर्वदा लोगोंको सन्देह हुआ करता है। इससे पहिले ही अच्छी तरह दिखाया गया है कि, हम सृष्टि और उसके देवपदोंकी आयुको कैसा मानते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें कैसे कैसे देवपदधारी बदल जाते हैं और कैसा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक परिवर्तन प्रत्येक मन्वन्तरमें हुआ करता है। जब एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरमें इतना परिवर्तन होता है, तो कल्पकल्पान्तरमें और भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी रात्रि और दिवसमें कितना परिवर्तन एक ब्रह्माण्डमें होना सम्भव है, इसका अनुमान मनुष्यकी साधारण बुद्धि कदापि नहीं कर सकती। पुराणोंमें जो गाथाएँ, जो चरित्र और जो ऐतिहासिक घटनाओंका वर्णन आता है, वह सब मन्वन्तर, मन्वन्तरान्तर और कल्पान्तरकी घटनाओंका यथासम्भव स्वरूप समाधिगम्य अलौकिक प्रत्यक्ष द्वारा अनुभव करके त्रिकालदर्शी महर्षिगण अथवा भगवान् व्यासजी लोककल्याणार्थ कहा करते हैं। इस विषयका हम बार बार इस टीकामें इंगित कर चुके हैं। इसी प्रकार पुराणोंमें वर्णित जो देवताओंकी गाथा, अवतारोंकी गाथा और देवपदोंकी गाथा पायी जाती है, वह भी सृष्टि सम्बन्धसे नित्यता रखती है। जैसे ब्रह्मपद आदि नित्य हैं, वैसे ही इन्द्रपद और मनुपद आदि भी नित्य हैं। इसी तरह इस मृत्युलोकमें प्रकट होनेवाले राम कृष्णादि अवतारोंके सामयिक पद और अन्तर्जगत्‌में गुरु दत्तात्रेय आदि अवतारपद भी नित्य हैं। इन्द्रादि नित्यपद नित्यरूपसे सर्वदा और रामकृष्णादि अवतारपद नैमित्तिक समयपर प्रकट होनेके विचारसे स्थायी पद हैं। अर्थात् इन्द्रादिपद तो सब समय स्थायी रहते हैं और जिस युगमें रामकृष्णादि अवतारोंके आविर्भावकी आवश्यकता होती है, उस समय उनका प्राकट्य होना भी निश्चित है। उसी अधिदैव कारणसे, और उसी दैवीशृङ्खलाकी मर्यादाके अनुसार चतुर्दश मनुका बार बार होना और यथासमय होना स्वाभाविक है; और उनके चरित्रोंका भी सादृश्य रहना विभिन्न विभिन्न कालधर्मके संस्कारोंके अनुसार निश्चित ही रहता है। इन सब पदोंमें आत्माओंका परिवर्तन अवश्य होता रहता है, परन्तु कालकी घटनप्रणालीके अनुसार और कालके समष्टि संस्कारके अनुसार उनके पदधारियोंकी आयु और उनके जीवनकी घटनावलीमें सामञ्जस्य रहता है। इसी कारण सप्तशती-

श्रेष्ठ राजा सुरथ देवीके द्वारा वर प्राप्त करके सूर्य्यसे जन्म लेकर सावर्णि नामक मनु होंगें ॥ २८–२९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका सुरथ तथा वैश्यको वर प्रदान नामक तिरानबेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

दूसरा खण्ड समाप्त ।

गीतामें दोनों प्रकारके वचनोंका उल्लेख होनेसे दूषण नहीं, भूषण ही है । अधिकन्तु दैवी जगत्का रहस्य-प्रकाशक है । इसी विज्ञानके अनुसार अष्टम मनु सावर्णिके विषयमें जो दो प्रकारसे कहा गया है, वह युक्तियुक्त ही है । अष्टम मनु प्रतिकल्पमें वैसे ही प्रकट होते हैं जैसे कि, चतुर्दश मनु अलग अलग प्रकट होते हैं । मनुपद एक बड़ा भारी देवपद है । उसमें प्रति कल्पमें अलग अलग चौदह उन्नत आत्माएँ ऐश कर्मके प्रभावसे उन्नति लाभकरती हुई जगज्जननी श्रीजगदम्बाकी कृपासे पहुँचा करती हैं । परन्तु वह पद नित्य है । केवल आत्माएँ उस पदपर प्रत्येक कल्पमें अलग अलग पहुँचती हैं । दूसरी ओर सृष्टिकी शृंखला जब नियमित है, तो ऐसे पदधारियोंकी जीवनयात्राभी कालके यथानियमसे नियमित हुआ करती है । यही कारण है कि, अष्टम मनु सावर्णिके लिये 'हुऐ हैं' और 'होंगे' इन दोनों शब्दोंका प्रयोग हो सकता है, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है । श्रीभगवान व्यासने जब एक अष्टम मनुका चरित्र समाधिद्वारा देख लिया था, तो सभी अष्टम मनुओंका देख लियाथा, ऐसा समझना उचित है । पुराणोंके और वेदोंके व्यक्तियोंकी चरितावलीको लौकिक चरितावली न मानकर ऐसी ही अलौकिक चरितावली जो मानेंगे, वे कदापि विमोहित नहीं होंगे । इसी सिद्धान्तके अनुसार मानवधर्म-शास्त्र प्रणेता मनुको जो मनुष्य लोकका राजा समझते हैं, वे भी भ्रममें पतित होते हैं । मानवधर्मशास्त्र कालके रक्षक और नियन्ता, देवलोकके एक विशिष्ट पदधारी देवताकी प्रेरणासे इस मृत्युलोकमें प्रकट हुआ था, यही शास्त्रका सिद्धान्त है । मन्वन्तर समूह और जगज्जननी महामायाकी अलौकिक दिव्य चरितावलीको प्रकाशित करके मार्कण्डेयपुराण धन्य हुआ है ॥ २५–२९ ॥

इस प्रकार सप्तशती गीताकी "मातृमहिमा प्रकाशिनी" टीका समाप्त हुई ।

सूर्योदय ।

अखिल भारतवर्षीय-संस्कृतविश्वविद्यालयकी ओरसे निकलनेवाला यह एकमात्र संस्कृत मासिक पत्र है । इसकी लेखप्रणालीसे संतुष्ट होकर कितनेही स्वाधीन राजा महाराजा इसके संरक्षक हुए हैं और भारतके सब प्रान्तोंके लोगोंने इसे अपनाया है । इसके पाठसे जो संस्कृतका अभ्यास करना चाहते हैं उन्हें सहायता मिलेगी और इसमें प्रकाशित होनेवाले अपूर्व संस्कृत ग्रन्थोंसे उनके यहां एक पुस्तकालय बन जायगा । वार्षिक मूल्य ३)

मैनेजर, "सूर्योदय"

बनारस केण्ट ।

भारतधर्म ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बियोंकी एकमात्र विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्म महामण्डलका यह द्वैभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) मासिक मुखपत्र है । धार्मिक जगतमें सनातनधर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला यही एक पुराना पत्र है । वार्षिक मूल्य ३) श्रीमहामण्डल के सभ्योंके लिये २) इसके ग्राहक समाजहितकारी कोषसे भरपूर आर्थिक लाभ उठा सकेंगे । इसके साथ एक अपूर्व हिन्दी ग्रन्थमाला भी निकलती है ।

मैनेजर "भारतधर्म"

महामण्डल भवन, बनारस केण्ट ।

अपने स्वजातीय "भारतधर्म प्रेस" में ही सुन्दरताके साथ काम छपाना हिन्दूमात्रका कर्त्तव्य है—पता :—

मैनेजर भारतधर्म प्रेस, स्टेशन रोड, बनारस (सिटी)

आर्यमहिला ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बिनी आर्यमहिलाओंकी एकमात्र प्रतिनिधिभूत-महासभा श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की यह सर्वाङ्गसुन्दर सचित्र मासिक मुखपत्रिका है । प्रत्येक गृहस्थ और गृहिणीको इसे अपनाना चाहिये । वार्षिक मूल्य ५) सार्वजनिक संस्थाओं, विधवाओं और विद्यार्थियोंके लिये ४)

मैनेजर "आर्यमहिला"

बनारस (छाउनी)

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सभ्य बनना सनातनधर्मावलम्बी मात्रका धर्म है—पता:—

सैक्रेटरी श्रीभारतधर्म महामण्डल, जगत्गञ्ज, बनारस (छावनी)

निगमागम बुकडिपो ।

सब प्रकारकी धार्मिक, दार्शनिक, वैदिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक, शास्त्रीय आदि पुस्तकें मिल सकें, ऐसा यही एक मात्र बुकडिपो है । उक्त सब प्रकारकी पुस्तकोंके अतिरिक्त निगमागमग्रन्थमाला, वाणीपुस्तकमाला, आर्यमहिलापुस्तकमाला आदि मालाओंकी पुस्तकें भी इस डिपोमें मिलती हैं । विशेषता यह है कि, स्थायी ग्राहकोंको सब पुस्तकें पौने मूल्यमें दी जाती है । बड़ा सूचीपत्र मंगाइये । और उसके स्थायी ग्राहक बनिये ।

मैनेजर "निगमागम बुकडिपो",

भारतधर्म सिण्डिकेट, बनारस ।

समाजहितकारी कोष ।

जिनकी पर्याप्त आय नहीं है, ऐसे हिन्दु गृहस्थोंके कन्या पुत्रोंके विवाह कार्य तथा आत्मीयोंकी गमीके अवसरपर आर्थिक सहायता पहुंचानेके अभिप्रायसे यह कोष खोलागया है । इसके मेंबर होनेवालोंको बहुत सुगमतासे उक्त अवसरोंपर १०००) तककी सहायता मिल सकती है और वे स्वाभाविक रूपसे ही श्रीभारतधर्ममहामण्डलके मेंबर होजाते हैं । विस्तृत नियमावली मंगाकर देखिये ।

सेक्रेटरी "समाजहितकारी कोष"

महामण्डल भवन, बनारस केण्ट ।